सर्वोदय

गांधीजी

सम्पादक

भारतन् कुमारप्पा



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद – १४

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति ३०००, १९५५
पुनर्मुद्रण ५०००, १९५८
पुनर्मुद्रण ७०००

रु० २.००

अप्रैल, १९६३

सम्पादकका निवेदन

लोगोकी तरफसे जोरदार माग होनेके कारण नवजीवन प्रकाशन मदिरने १९५१ मे 'सर्वोदय उसके सिद्धान्त और कार्यक्रम' नामक एक छोटीसी पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसका मुख्य उद्देश्य कुछ ही पृष्ठोमे सर्वोदय समाजके सिद्धान्तो और कार्यक्रमके बारेमे जानकारी देना था। गाधीजीके निधनके पश्चात् उनके अनुयायियोने यह भ्रातृमडल वर्धामे शुरू किया था। वर्तमान पुस्तकमे सर्वोदय अथवा सबके कल्याणकी चर्चा की गई है और यह बताया गया है कि वह कैसे सिद्ध किया जा सकता है।

गाधीजीके मतानुसार सर्वोदयका अर्थ आदर्श समाज-व्यवस्था है। इसका आधार सर्वव्यापी प्रेम है। इसलिए इसमे निरपवाद रूपसे राजा और रक, हिन्दू और मुसलमान, छूत और अछूत, काले और गोरे, सन्त और पापी सबके लिए स्थान है। किसी भी व्यक्ति या समूहका दमन, शोषण या विनाश नही किया जायगा। इस समाज-व्यवस्थामे सब बराबरके सदस्य होगे, सबको उनकी मेहनतकी पैदावारमे हिस्सा मिलेगा, बलवान दुर्बलोकी रक्षा करेगे और उनके ट्रस्टीका काम करेगे तथा प्रत्येक सदस्य सबके कल्याणका ध्यान रखेगा।

चूकि प्रेमका एक मुख्य लक्षण प्रेमपात्रके खातिर आत्म-समर्पण करना सर्वस्व दे देना या मर मिटना है, इसलिए सर्वोदयकी सिद्धिके लिए सयम और कष्ट-सहन एक मुख्य शर्त है। भारतमे सदियोसे त्याग और कठोर आत्म-सयमकी परपरा चली आई है, इसलिए वह सर्वोदयके लिए सबसे अनुकूल भूमि है। इसके ठीक विपरीत पाश्चात्य देशोमे आराम, आवश्यकताओकी वृद्धि और भोग-विलासका मोह है।

गाधीजीने पश्चिमी सभ्यताके इस प्रवाहका प्रबल विरोध केवल इसी-लिए किया कि वे जानते थे कि यह हमे सर्वोदय अथवा सामाजिक न्यायकी दिशामे नही ले जायगा, यह सिर्फ लोभ, सघर्ष और बलवानो द्वारा निर्बलोके दमन और शोषणको ही जन्म देगा, चाहे व्यवस्था पूजीवादी हो या साम्यवादी।

इस प्रकारके सर्वव्यापी और त्यागमय प्रेमके तत्त्वज्ञानके लिए गहरे आध्यात्मिक आधारोकी जरूरत होती है। इसका अर्थ यह है कि उस सर्वव्यापी शक्तिमे हमारी सजीव श्रद्धा होनी चाहिये। इसके लिए कडे सयम, तालीम और आत्मबलके विकासकी भी जरूरत है। अपने इस बुनियादी आध्यात्मिक आधारके कारण ही यह साम्यवादसे बिलकुल उलटी चीज है, क्योकि साम्यवाद निश्चित ही भौतिकवादी है, यद्यपि लक्ष्य सर्वोदय और साम्यवादका एकसा ही है।

सर्वोदयका आधार आध्यात्मिक होनेके कारण उसकी सिद्धिके साधन भी आध्यात्मिक है। साम्यवाद यह आशा दिलाता है कि आदर्श समाज-व्यवस्था तभी स्थापित की जा सकती है, जब शोषकका पशुबलसे नाश कर दिया जाय। इसके लिए वह अपनी रचना वर्ग-द्वेषके आधार पर करता है और समय समय पर निष्कासन (पर्ज) और युद्धका आश्रय लेता है। इसके विपरीत, गाधीजीको यह तरीका बिलकुल निरर्थक मालूम हुआ, क्योकि द्वेष और हिंसा देर-सबेर लौटकर अपने जन्मदाताओ पर वार किये बिना नही रहते, वे और ज्यादा द्वेष तथा हिंसाको जन्म देते है। इसलिए उनका विश्वास था कि अन्यायको मिटानेवाला सच्चा तरीका यह है कि अपने कष्ट-सहन और उच्च चरित्र द्वारा अत्याचारीकी अन्त-रात्मा और बुद्धिको प्रभावित करके उसके विचार बदले जाय और उसे स्वेच्छापूर्वक नई समाज-व्यवस्थाका सहायक बनाया जाय। इस कामके लिए उन्होने जिस कार्य-पद्धतिका विकास किया, वह सत्याग्रहकी अर्थात् स्वय अवर्णनीय कष्ट उठाकर और मृत्युका भी आलिगन करके सत्य और

अहिसा पर अटल रहनेकी पद्धति है। यह गाधीजीकी विशिष्ट देनोमे से एक है और उनकी शिक्षाका केन्द्रबिन्दु है।

गाधीजी आदर्श समाज-व्यवस्थाके निरर्थक चित्र खीचनेमे विश्वास नही रखते थे। इस आदर्शको वे जीवनके ध्रुवतारेसे अधिक नही मानते थे, जिसकी सहायतासे मानव-जीवनके तूफानोमे से खेकर जीवन-नैयाको पार लगाया जा सकता है। दूरके दृश्य उन्हे लुभाते नही थे। इसलिए उन्होने हमे आदर्श समाज-व्यवस्थाका विस्तृत चित्र देनेका प्रयास नही किया। उन्हे साधनोकी अर्थात् इस बातकी ज्यादा चिन्ता थी कि आदर्शको ध्यानमे रखते हुए वर्तमानका निर्माण कैसे किया जाय। उन्हे विश्वास था कि अगर हम अपने तात्कालिक वर्तमान कालको दृष्टिमे रखकर अपने आदर्श पर अमल कर सके, तो हमारा उद्देश्य अवश्य सिद्ध होगा। तदनुसार वे रोजमर्रा सामने आनेवाली समस्याओको सर्वोदयके दृष्टिकोणसे हल करनेका प्रयत्न करते थे। उदाहरणके लिए, वे समस्याए उद्योगवाद, पूजी और श्रम, जमीदार और किसान वगैराकी थी, जिनका इस पुस्तकमे विवेचन किया गया है।

गाधीजीके इस प्रकारके मूलत यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोणसे आश्चर्यजनक लाभ हुआ है, क्योकि उनके अवसानके बाद उनके अनुयायियोने राष्ट्रके सामने आनेवाली तात्कालिक समस्याओ पर उनके सत्य और अहिसाके महान सिद्धान्त लागू करनेका काम हाथमे ले लिया है। इनमे सबसे बडी समस्या बेशक लोगोको दरिद्रता और अभावसे मुक्त करनेकी आर्थिक समस्या है। स्वय गाधीजीने ग्रामोद्योगोको पुनर्जीवित करके इसे हल करनेकी कोशिश की थी। हाथ-कताई इन उद्योगोका प्रतीक थी, जिसका गाधीजीके आर्थिक कार्यक्रममे प्रथम स्थान था। गाधीजी खेतीका महत्त्व न समझते हो ऐसी बात नही थी। परतु वे जानते थे कि विदेशी सरकारके हाथमे सत्ता रहते हुए किसानकी हालत सुधारनेकी दिशामे अधिक काम नही हो सकता, क्योकि वह काश्तकारी कानूनो और हृदयहीन लगान-व्यवस्था तथा ग्राम-शासनके

भारसे बुरी तरह दबा हुआ है। परतु स्वाधीनताके आते ही गाधीजीके अनुयायियोने भूमिकी समस्याको हाथमे लिया। भूमिकी समस्या किसानोके लिए जीवन-मरणका सवाल है, जो हमारे राष्ट्रकी रीढ है।

सर्वोदयमे निहित प्रेमके सिद्धान्तका यह तकाजा है कि वह आदमी, जो खेतीका काम करता है, उत्पादनके साधन भूमिसे वचित नही रखा जाना चाहिये। किसानको जमीन देनेसे इनकार करना उसे आजीविकाका साधन देनेसे इनकार करना है और उसे ऐसी लाचारीकी हालतमे फसा देना है जिसके कारण वह शोषण और गुलामीका शिकार बन जाता है। परतु उस जमीदारको मिटाये बिना, जो मुफ्तखोर बनकर भूमिहीन मजदूरोके श्रम पर जिन्दा रहता है, भूमिहीनोको भूमि कैसे दिलाई जाय ?

इसी समस्याको हल करनेका काम श्री विनोबा भावेने, जो १९१६ से गाधीजीके निकटके साथी और शिष्य रहे है, अप्रैल १९५१ मे भारतके एक हिसाग्रस्त और साम्यवादी प्रदेश (तेलगाना) मे हाथमे लिया। उनका हल गाधीजीकी शिक्षाके अनुसार है। उन्होने भूस्वामियोकी उदात्त भावनाओको अपील करके भूदान प्राप्त किया। इस प्रकार उनके महान और पवित्र भूदान-आन्दोलनका आरभ हुआ, जिसने अपनी विलक्षण सफलतासे ससारको चकित कर दिया है। अभी तक लगभग २० लाख एकड भूमि इस उपायसे भूमिहीनोके लिए प्राप्त की जा चुकी है और यह आशा की जाती है कि १९५७ तक ५ करोड एकड जमीन भारतके ५ करोड भूमिहीन श्रमिकोके लिए जुटानेका लक्ष्य पूरा कर लिया जायगा, ताकि उस वर्ष तक भारतमे कोई बेजमीन मजदूर न रह जाय। यह एक ऐसी रक्तहीन क्रान्ति है, जिसकी संसारके इतिहासमे कोई मिसाल नही है। इस अहिसक क्रान्तिके जरिये शोषककी हत्या करने और उसकी सगठन-शक्ति और व्यवस्था-शक्तिसे अपनेको वचित करनेके बदले उसका हृदय-परिवर्तन करके और उसकी योग्यताका समाजके

कल्याणके लिए उपयोग करके सर्वोदयकी दिशामे कदम उठाया जाता है।

चूकि यह और इसके बाद शुरू हुआ विनोबाका सपत्तिदान आन्दोलन गाधीजीके सर्वोदय आन्दोलनसे पैदा होनेवाली एक महत्त्वपूर्ण घटना है, इसलिए नवजीवन ट्रस्टने हाल ही मे एक अलग पुस्तक प्रकाशित की है, जिसका नाम 'भूदान-यज्ञ'* रखा गया है। इसमें भूदान और सपत्तिदानके विषय पर विनोबाके लेखो और भाषणोका सग्रह है। इसलिए हमने उस विषयको यहा सम्मिलित नही किया है, यद्यपि वह सर्वोदय आन्दोलनका आवश्यक अग है।

भूदान और सपत्तिदानसे सतोष न करके विनोबाने हालमे ही श्रमदान भी सुझाया है। इससे सब लोग — न केवल भूस्वामी और रुपयेवाले ही, बल्कि वे भी जिनके पास देनेको केवल श्रम है — असहायो और गरीबोके कल्याणके लिए किये जानेवाले सेवा और त्यागके इस आन्दोलनमे भाग ले सकेगे।

इस व्यावहारिक विकासके सिवा विनोबा और गाधीजीके कुछ और निकटके साथियोने गाधीजीके सर्वोदय-सबधी विचारोको, खास तौर पर आर्थिक समता, शरीर-श्रम, अपरिग्रह और योजना-कार्यके बारेमे कुछ और आगे बढाया है। उनमे से कुछ चुने हुए विचार इस ग्रथके दूसरे भागमे यह दिखानेको दिये गये है कि सर्वोदय-सबधी गाधीजीके विचारोका विकास कैसे हो रहा है। इस भागमे वह कार्यक्रम भी शामिल कर दिया गया है, जिसकी गाधीजीकी मृत्युके बाद सर्वोदयी कार्यकर्ताओके लिए हिमायत की जा रही है। इस कार्यक्रममे हमने भूदानको शामिल नही किया है, यद्यपि आजकल सर्वोदयी कार्यकर्ताओका सबसे ज्यादा ध्यान इसी एक कार्यमे लगा हुआ है। इसका एकमात्र

---

* यह पुस्तक हिन्दीमे भी इसी नामसे नवजीवनसे प्रकाशित हुई है।

कारण यह है कि वह भ्‌दानके विषय पर प्रकाशित उपरोक्त पुस्तिकामे आ जाता है।

पाठकोकी सुविधाके लिए हमने गाधीजीके तीस सालसे अधिक समयके लेखो और भाषणोमे से सिर्फ वे ही अश चुने है, जिनसे सर्वोदय-सबधी उनकी शिक्षाके खास खास पहलुओ पर रोशनी पडती है। प्रस्तुत ग्रथके पहले या बडे भागमे इन्हीका सग्रह किया गया है। जो पाठक गाधीजीके विचारोको और भी विस्तारसे जाननेके लिए उत्सुक हो, उन्हे गाधीजीकी दूसरी पुस्तके जैसे 'अहिसक समाजवादकी ओर', 'हमारे गावोका पुर्नानर्माण', 'रचनात्मक कार्यक्रम', 'बुनियादी शिक्षा', 'स्त्रिया और उनकी समस्याये', 'शान्तिवादियोके लिए', 'साम्प्रदायिक एकता', 'शराब, मादक द्रव्य और जुआ' आदि पढनी चाहिये।

गाधीजीके 'यग इडिया' और 'हरिजन' साप्ताहिकोसे जो अश यहा उद्धृत किये गये है, उनके नीचे तारीखे दी गई है। गाधीजीकी पुस्तकोके उद्धरणोके बारेमे यह जानना दिलचस्पीकी बात होगी कि 'हिन्द स्वराज्य' १९०९ मे लिखी गई थी, 'मगल-प्रभात' १९३० मे, 'सर्वोदय' पहले-पहल गुजरातीमे १९०८ मे और अग्रेजीमे 'अन्टु दिस लास्ट ए पैराफ्रेज' के नामसे १९५१ मे तथा 'आत्मकथा' १९२७ मे और १९२९ मे। 'गाधीजीज़ राइटिग्स एण्ड स्पीचेज़' का पहला सस्करण १९१७ मे और चौथा १९३३ मे मद्रासकी नटेसन एण्ड कपनीने प्रकाशित किया था।

सामाजिक तत्त्वज्ञानमे सर्वोदयको भारतकी विशेष देन माना जा सकता है। इसकी जडे तो लगभग ३००० वर्ष पहले पड चुकी थी, जब बुद्ध और महावीरने प्रेम या अहिसाका उपदेश देनेके लिए भ्रमण किया था और प्राचीन ऋषियोने सदियो तक तप और सयमकी शिक्षा दी थी, उनका आचरण किया था तथा सम्मिलित परिवार, वर्ण और ग्राम-सगठन द्वारा व्यक्तियोमे इन गुणोके सस्कार डाले थे। परिवार, वर्ण और ग्राम-समाजके जीवनमे व्यक्ति अपने समूहके खातिर खुद

अपनी इच्छाओका दमन करना, अपनी पैदावारमे दूसरोको हिस्सा देना, उनके साथ सहयोग करना, समूहके प्रति बफादारी महसूस करना और उसके अनुशासनको स्वीकार करना सीखता था। वह आर्थिक सुरक्षितताका उपभोग करता था, क्योकि समूहकी ओरसे उसे काम और अल्पतम आवश्यकताओकी पूर्तिका विश्वास दिलाया जाता था। परिवारकी तरह उसके और उसके समूहके दूसरे आदमियोके बीच आत्मीयता और समानताकी भावना रहती थी। वह साम्यवादकी हिसासे रहित ग्राम-साम्यवाद था। इन्ही स्रोतोसे गाधीजीने सर्वोदय अथवा आदर्श समाज-व्यवस्थाकी प्रेरणा ली थी, हालाकि तात्कालिक रूपमे यह प्रेरणा उन्हे रस्किनके 'अन्टु दिस लास्ट' को पढनेसे मिली थी। गाधीजीका पक्का विश्वास था कि अगर व्यक्ति और समाजके जीवनका आधार इस प्रकार प्रेम और ऊचे नैतिक तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तो पर नही होगा तो कितना ही उपदेश दीजिये, शान्तिके लिए कितने ही विश्व-सगठन बनाइये और लडाईका कितना ही विरोध कीजिये उससे कोई लाभ नही होगा। क्योकि शाति आखिरमे हमारे दैनिक जीवनका ही परिणाम है। इसलिए उन्होने यह दिखानेकी जी-तोड कोशिश की, जैसी कि हमारे पूर्वजोने भूतकालमे की थी, कि अगर हमे आदर्श समाज-व्यवस्थाकी ओर प्रगति करनी है, तो व्यक्ति और समाजका कायापलट कैसे किया जाय।

मानव-जातिके सामने आज प्रश्न यह है कि हम सबके लिए शाति और स्वतत्रता कैसे प्राप्त कर सकते है। क्या हम भोग-विलासके और ससारकी साधन-सामग्री तथा बाजारोकी लालचवाले आक्रमणकारी उद्योगवादके मार्ग पर अग्रसर रहकर और अपने स्वार्थके लिए दूसरोको वशमे रखनेके खातिर सैनिक बलके जरिये भीमकाय सगठन बनाकर इन्हे प्राप्त कर सकेगे, या इन्हे प्राप्त करनेके लिए हमे गाधीजीके सादगी और आर्थिक स्वयपूर्णतावाले छोटे सामाजिक सगठनके उस मार्ग पर चलना चाहिये, जिसमे व्यक्ति सेवा और त्यागके द्वारा सबके लिए जियेगा? दोनो मार्ग हमे एक-दूसरेसे बिलकुल उलटी दिशाओमे ले जाते है। इसमे समझकी कोई भूल नही है। एक मार्ग अनिवार्य रूपमे

द्वेष, युद्ध और विनाशकी ओर ले जाता है और दूसरा प्रेम, शान्ति और सबके समान कल्याणकी तरफ ले जानेवाला है। इन दो मार्गोमे से किसी एकको चुनने पर मनुष्यका भविष्य निर्भर करता है। समय आ गया है कि भारतवासी और दूसरे देशोके लोग ठहर कर इन बातो पर गभीर विचार करे। इसी उद्देश्यसे यह पुस्तक सकलित की गई है। इसका लक्ष्य ससारके सामने गाधीजीका मार्ग या दूसरे शब्दोमे गाधीजीका शान्ति और स्वतत्रताका सदेश पेश करना है — उस ससारके सामने जो आपसी सघर्षसे छिन्नभिन्न हो रहा है और जिस पर आत्म-घाती युद्ध और सत्ताके अत्यधिक केन्द्रीकरणका भूत दिनोदिन अधिक सवार होता जा रहा है।

मूल अग्रेजी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद श्री रामनारायण चौधरीने किया है।

भारतन् कुमारप्पा

अनुक्रमणिका

पहला भाग — गाधीजी

पहला विभाग : सर्वोदयका अर्थ

दूसरा विभाग : इसका आध्यात्मिक आधार

क — प्रास्ताविक

ख — आवश्यक सद्‌गुण

तीसरा विभाग : आर्थिक व्यवस्था

क — अहिंसक अर्थ-व्यवस्था

ख — उद्योगवाद

ग — पूजी और श्रम

घ — जमीदार और किसान

चौथा विभाग : समाज-व्यवस्था

क — मर्यादित समाज : मनुष्य

ख — विशाल समाज : पशु

पांचवां विभाग : राजनीतिक व्यवस्था

क — सर्वोदयी राज्य

ख — उसके वैदेशिक सम्बन्ध

छठा विभाग : बुराईका विरोध

क — सत्याग्रहकी पद्धति

ख — आर्थिक असमानता

ग — सामाजिक अव्यवस्था

घ — राजनीतिक बुराइया

सातवां विभाग : कार्यकर्ता और कार्यक्रम

क — कार्यकर्ता

ख — कार्यक्रम

दूसरा भाग — विनोबा भावे और अन्य लोग

आठवां विभाग : नई क्रान्ति

नवां विभाग : आर्थिक समानता

दसवां विभाग : आधार रुपया नहीं, श्रम

ग्यारहवां विभाग : ग्राम-सर्वोदयकी दिशामें

बारहवां विभाग : कार्यक्रम

सर्वोदय

पहला भाग

गांधीजी

पहला विभाग : सर्वोदयका अर्थ

१

प्रास्ताविक

विद्यार्थी-जीवनमे पाठ्यपुस्तकोके अलावा मेरा वाचन नहीके बराबर समझना चाहिये। और कर्मभूमिमे प्रवेश करनेके बाद तो समय ही बहुत कम रहता है। इस कारण आज तक भी मेरा पुस्तक-ज्ञान बहुत थोडा है। मै मानता हू कि इस अनायासके या जबरदस्तीके सयमसे मुझे कुछ भी नुकसान नही पहुचा है। पर हा, मै यह कह सकता हू कि जो भी थोड़ी पुस्तके मैने पढी है, उन्हे ठीक तौर पर हजम करनेकी कोशिश अलबत्ता मैने की है। और मेरे जीवनमे यदि किसी पुस्तकने तत्काल महत्त्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला है, तो वह रस्किनकी 'अन्टु दिस लास्ट' पुस्तक ही है। बादमे मैने इसका गुजरातीमे अनुवाद किया था और वह 'सर्वोदय' के नामसे प्रकाशित भी हुआ है। मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अतरतरमे बसी हुई थी, उसका स्पष्ट प्रतिबिब मैने रस्किनके इस ग्रथरत्नमे देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमा लिया और अपने विचारोके अनुसार मुझसे आचरण करवाया। हमारी अत स्थ सुप्त भावनाओको जाग्रत करनेका सामर्थ्य जिसमे होता है वह कवि है। सब कवियोका प्रभाव सब पर एकसा नही होता, क्योकि सब लोगोमे सभी अच्छी भावनाए समान मात्रामे नही होती।

'सर्वोदय' के सिद्धान्तको मै इस प्रकार समझा हू

१ सबके भलेमे अपना भला है।

२ वकील और नाई दोनोके कामकी कीमत एकसी होनी चाहिये, क्योकि आजीविका पानेका हक दोनोको एकसा है।

३ सादा मजदूरका और किसानका जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली बात तो मै जानता था। दूसरीका मुझे आभास हुआ करता था। पर तीसरी तो मेरे विचार-क्षेत्रमे आई तक न थी। पहली बातमे पिछली दोनो बाते समाविष्ट है, यह बात 'सर्वोदय' से मुझे सूर्य-प्रकाशकी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। सुबह होते ही मै उसके अनुसार अपने जीवनको बनानेकी चिन्तामे लगा।

आत्मकथा, भाग ४, अध्याय १८

२

सर्वभूतहिताय

बात यह है कि अहिंसाका पुजारी उपयोगितावाद (बडीसे बडी सख्याका ज्यादासे ज्यादा हित) का समर्थन नही कर सकता। वह तो 'सर्वभूतहिताय' यानी सबके अधिकतम लाभके लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्शकी प्राप्तिमे मर जायगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा कि दूसरे जी सके। दूसरोके साथ-साथ वह अपनी सेवा भी आप मर कर करेगा। सबके अधिकतम सुखके भीतर अधिकाशका अधिकतम सुख भी मिला हुआ है। और इसलिए अहिसावादी और उपयोगितावादी अपने रास्ते पर कई बार मिलेगे, किन्तु अन्तमे ऐसा भी अवसर आयेगा जब उन्हे अलग-अलग रास्ते पकडने होगे और किसी-किसी दशामे एक-दूसरेका विरोध भी करना होगा। तर्कसगत बने रहनेके लिए उपयोगितावादी अपनेको कभी बलि नही कर सकता। अहिंसावादी हमेशा मिट जानेको तैयार रहेगा।

हिन्दी-नवजीवन, ९-१२-'२६

३

सर्वोदयकी रूपरेखा

यदि हम चाहते है कि हमारा सर्वोदय* अर्थात् सच्चे लोकतन्त्रका सपना सच्चा साबित हो, तो हम छोटेसे छोटे भारतवासीको भारतका उतना ही शासक समझेगे जितना देशके बडेसे बडे आदमीको। इसके लिए शर्त यह है कि सब शुद्ध हो, या न हुए हो तो शुद्ध हो जाय। और शुद्धताके साथ-साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिये। तब कोई भी अपने दिलमे जाति-जाति और सवर्ण-अवर्णके बीच भेदभाव नही रखेगा। हरएक सबको अपनी बराबरीका समझेगा और उन्हे प्रेमके रेशमी जालमे बाध रखेगा। कोई किसीको अछूत नही मानेगा। हम मेहनत करनेवाले मजदूर और धनी पूजीपतिको समान समझेगे। सबको अपने पसीनेकी कमाईसे ईमानदारीकी रोजी कमाना आता होगा और वे मानसिक और शारीरिक श्रममे कोई फर्क नही करेगे। यह आदर्श स्थिति जल्दी लानेके लिए हम अपने-आपको स्वेच्छासे भगी बना लेगे। जिस किसीमे भी बुद्धि होगी वह कभी अफीम, शराब या किसी नशीली चीजको नही छुएगा। प्रत्येक पुरुष स्वदेशीका पालन जीवन-व्रतके रूपमें करेगा और हरएक स्त्रीको, जो अपनी पत्नी नही है, उसकी उम्रके हिसाबसे अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और अपने हृदयमे उसके प्रति कभी काम-वासना नही रखेगा। जब जरूरत पडेगी वह अपने प्राण देनेको तैयार होगा मगर दूसरेकी जान लेनेकी कभी इच्छा नही करेगा।

हरिजन, १८–१–'४८

---

* यहा पचायत राज्य शब्द काममे लिया गया है, जिसका अर्थ गाधीजीकी दृष्टिमे वही था जो सर्वोदयका है। —सं०

दूसरा विभाग : इसका आध्यात्मिक आधार

क — प्रास्ताविक

१

साधनोंका सबसे बड़ा महत्त्व

ध्येयकी सबसे स्पष्ट व्याख्या और उसकी कद्रदानीसे भी हम उस ध्येय तक नही पहुच सकेंगे, अगर हमे उसे प्राप्त करनेके साधन मालूम नही होगे और हम उनका उपयोग नही करेगे। इसलिए मुझे तो मुख्य चिन्ता साधनोकी रक्षाकी और उनके अधिकाधिक उपयोगकी है। मै जानता हू कि अगर हम साधनोकी चिन्ता रख सके, तो ध्येयकी प्राप्ति निश्चित है। मै यह भी अनुभव करता हू कि ध्येयकी ओर हमारी प्रगति ठीक उतनी ही होगी, जितने हमारे साधन शुद्ध होगे।

यह तरीका लम्बा, शायद हदसे ज्यादा लम्बा दिखाई दे, परन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि यह सबसे छोटा है।

अमृतबाजार पत्रिका, १७–९–'३३

२

अधिकार नहीं कर्तव्य

अगर सब लोग केवल अधिकारोका आग्रह रखे और कर्तव्यो पर जोर न दे, तो चारो तरफ बडी गडबडी और अव्यवस्था फैल जायगी। यदि अधिकारोके आग्रहके बजाय हरएक अपना कर्तव्य पालन करे, तो मानव-जातिमे तुरत व्यवस्थाका राज्य स्थापित हो जाय। यदि आप यह सादा और सार्वत्रिक नियम मालिको और मजदूरो, जमीदारो और किसानो, राजाओ और उनके प्रजाजनो या हिन्दुओ और मुसलमानो पर लागू करे, तो आप देखेगे कि भारत और ससारके दूसरे भागोमे जीवन और व्यवसायमे आज जैसी पाई जाती है वैसी अशान्ति और अस्तव्यस्तता पैदा किये बिना जीवनके तमाम क्षेत्रोमे अत्यत सुखद सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है। जिसे मै सत्याग्रहका कानून कहता हू, वह कर्तव्योको पूरी तरह समझने और उनसे पैदा होनेवाले अधिकारोसे उत्पन्न होगा।

उदाहरणार्थ, एक हिन्दूका अपने मुसलमान पडोसीके प्रति क्या फर्ज है? उसका फर्ज इन्सानके नाते उससे दोस्ती करना, उसके सुख-दु खमे शरीक होना और सकटमे उसकी सहायता करना है। तब उसे अपने मुसलमान पडोसीसे वैसे ही बरतावकी आशा रखनेका हक होगा, और बहुत करके उसकी तरफसे आशानुसार ही उत्तर मिलेगा। मगर मान लीजिये कि बहुतसे हिन्दुओके ठीक बरतावका थोडेसे मुसलमान वैसा ही बदला न दे और हर काममे लडाईका ही रुख दिखाये, तो यह उनकी गैर-इन्सानियतकी निशानी होगी। तब बहुसख्यक हिन्दुओका क्या धर्म होगा? अवश्य ही बहुतोके पशुबलसे उन्हे दबा देना हिन्दुओका धर्म नही होगा। यह तो बिना कमाये अधिकारको हडप लेना होगा। उनका फर्ज होगा कि वे मुसलमानोके गैर-इन्सानियतके व्यवहारको उसी तरह रोके, जिस तरह वे अपने सगे भाइयोके ऐसे व्यवहारको रोकेगे।

हरिजन, ६–७–'४७

३

नैतिक साधन अत्यावश्यक

पश्चिममे लोगोकी आम राय यह है कि मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य अधिकाश मानव-जातिकी सुखवृद्धि करना है, और सुखका अर्थ केवल शारीरिक सुख और आर्थिक उन्नति माना जाता है। यदि इस सुखकी प्राप्तिमे नैतिकताके कानून भग किये जाते है, तो उसकी बहुत परवाह नही की जाती। इस विचारधाराके परिणाम यूरोपके चेहरे पर स्पष्ट अकित है।

शारीरिक और आर्थिक लाभकी यह एकागी खोज, जो नैतिकताका कुछ भी खयाल रखे बिना की जाती है, ईश्वरी कानूनके विरुद्ध है, जैसा कि पश्चिमके कुछ बुद्धिमान मनुष्योने बता दिया है। इनमे से एक जॉन रस्किन था। उसने अपनी 'अन्टु दिस लास्ट' नामक पुस्तकमे दावा किया है कि मनुष्य तभी सुखी हो सकते है, जब वे नैतिक कानूनका पालन करें।

दुनियाके सभी धर्मोमे सदाचार एक आवश्यक अग माना गया है, परन्तु धर्मोके अलावा हमारी साधारण समझ भी नैतिक नियमोके पालनकी आवश्यकता बताती है। उनका पालन करके ही हम सुखी होनेकी आशा कर सकते है।

(रस्किन-कृत 'अन्टु दिस लास्ट' के गाधीजीके अनुवादकी भूमिकासे, १९५१, पृ० ९–११)

ख — आवश्यक सद्‌गुण

१

सत्य

हमारी सारी प्रवृत्तियोका केन्द्र सत्य होना चाहिये। सत्य हमारे जीवनका प्राण होना चाहिये। धर्मयात्रीकी प्रगतिमे जब एक बार यह मजिल आ जाती है, तब सही जीवनके और सब नियम अनायास आ जाते है और उनका पालन स्वाभाविक बन जाता है। परन्तु सत्यके बिना जीवनमे किसी भी सिद्धान्त या नियमका पालन असभव है।

सत्य ईश्वरका सही नाम है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञानके अनुसार सत्यका पालन करे, तो उसमे कुछ भी बेजा नही है। बेशक, वैसा करना उसका कर्तव्य है। फिर अगर इस प्रकार सत्य-पालनमे किसीसे कोई भूल हो जाती है, तो वह अपने-आप ठीक हो जायगी। क्योकि सत्यकी खोजमे तप — स्वय कष्ट सहनेकी जरूरत होती है, कभी कभी उसके पीछे मर मिटना होता है। इसमे स्वार्थके लिए किंचित् भी गुजाइश नही हो सकती। सत्यकी ऐसी नि स्वार्थ खोजमे कोई बहुत समय तक पथभ्रष्ट नही हो सकता। ज्यो ही वह गलत रास्ते जाता है, त्यो ही ठोकर खाकर गिरता है और इस प्रकार फिर सही मार्ग पर लग जाता है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० २–३

२

अहिसा या प्रेम

अहिसा ऐसी स्थूल चीज नही है जैसी बताई गई है। बेशक, किसी प्राणीको चोट न पहुचाना अहिसाका एक अग है। परन्तु वह तो उसका छोटेसे छोटा चिह्न है। अहिसाके सिद्धान्तका भग हर बुरे विचारसे, अनुचित जल्दबाजीसे, झूठ बोलनेसे, घृणासे और किसीका बुरा चाहनेसे भी होता है। दुनियाके लिए जो वस्तु जरूरी है, उस पर अधिकार जमानेसे भी इस सिद्धान्तका भग होता है।

अहिसाके बिना सत्यकी खोज और प्राप्ति असभव है। अहिसा और सत्य आपसमे इतने ओतप्रोत है कि उन्हे एक-दूसरेसे अलग करना लगभग असभव है। वे सिक्के या इससे भी बेहतर किसी चिकनी चकतीके दो पहलुओकी तरह है। कौन कह सकता है कि उनमे कौनसा पहलू उलटा और कौनसा सीधा है? फिर भी अहिसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन तभी साधन है जब वे हमारी पहुचके भीतर हो, और इसलिए अहिसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है। यदि हम साधनोकी सावधानी रखे तो आगे-पीछे हमारी साध्य सिद्धि होकर रहेगी। जब एक बार हमने इस मुद्देको अच्छी तरह समझ लिया, तो अन्तिम विजय असदिग्ध है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ७–९

जब अहिसाको हम जीवनका सिद्धान्त मान लेते है, तो वह हमारे सारे जीवनमे व्याप्त हो जानी चाहिये, केवल विशेष मौको पर ही उसका उपयोग नही होना चाहिये। यह मानना गहरी भूल है कि अहिसा केवल व्यक्तियोके लिए ही अच्छी है, और जनसमूहके लिए नही।

हरिजन, ५–९–'३६

यदि हम लिखित इतिहासके आदिकालसे लेकर हमारे अपने समय तकके क्रम पर नजर डाले, तो हमें पता चलेगा कि मनुष्य अहिसाकी

तरफ बराबर बढता चला आ रहा है। हमारे प्राचीन पुरखे मानव-भक्षी थे। फिर एक समय ऐसा आया जब लोग मानव-भक्षणसे ऊब गये और शिकार पर गुजर करने लगे। आगे चलकर मनुष्यको आवारा शिकारीका जीवन व्यतीत करनेमे भी शर्म आने लगी। इसलिए वह खेती करने लगा और अपने भोजनके लिए मुख्यत वह धरती माता पर निर्भर हो गया। इस प्रकार एक खानाबदोशकी जिन्दगीको छोडकर उसने सभ्य और स्थिर जीवन अपनाया, गाव और शहर बसाये और एक परिवारके सदस्यसे वह समाज और राष्ट्रका सदस्य बन गया। ये सब उत्तरोत्तर बढती हुई अहिंसा और घटती हुई हिंसाके चिह्न है। इससे उलटा होता तो जैसे बहुतसे निचली श्रेणीके प्राणियोकी जातिया लुप्त हो गयी, वैसे ही मानव-जाति भी लुप्त हो गई होती।

पैगम्बरो और अवतारोने भी थोडा-बहुत अहिंसाका ही पाठ पढाया है। उनमे से एकने भी हिंसाकी शिक्षा देनेका दावा नही किया। और करे भी कैसे? हिंसा सिखानी नही पडती। पशुके नाते मनुष्य हिंसक है और आत्माके रूपमे अहिंसक है। जब मनुष्यको आत्माका भान हो जाता है, तब वह हिंसक रह ही नही सकता। या तो वह अहिंसाकी ओर बढता है या अपने विनाशकी ओर दौडता है। यही कारण है कि पैगम्बरो और अवतारोने सत्य, मेलजोल, भाईचारा और न्याय आदिके पाठ पढाये है। ये सब अहिंसाके गुण है।

यदि हमारा यह विश्वास हो कि मानव-जातिने अहिंसाकी दिशामे बराबर प्रगति की है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे उस तरफ और भी ज्यादा बढना है। इस ससारमे स्थिर कुछ भी नही है, सब कुछ गतिशील है। यदि आगे बढना नही होगा, तो अनिवार्य रूपमे पीछे हटना होगा।

हरिजन, ११–८–'४०

३

ब्रह्मचर्य

अब ब्रह्मचर्यकी व्याख्याको — उसके अर्थको ले। उसका धात्वर्थ यो किया जा सकता है वह आचरण जिससे ईश्वरके साथ सम्पर्क स्थापित होता हो।

यह आचरण है सब इन्द्रियो पर सपूर्ण नियत्रण। इस शब्दका यही सच्चा और ठीक अर्थ है।

आम तौर पर इमका अर्थ जननेन्द्रिय पर केवल शारीरिक नियत्रण किया जाता है। इस सकुचित अर्थसे ब्रह्मचर्यकी अधोगति हुई है और उसका पालन लगभग असभव बन गया है। सारी इन्द्रियो पर ठीक काबू हुए बिना जननेन्द्रिय पर काबू पाना असभव है। वे सब एक-दूसरे पर निर्भर है। निम्न स्तर पर मन भी इन्द्रियोमे शामिल है। मन पर काबू पाये बिना निरा शारीरिक नियत्रण थोडी देरके लिए हो भी सकता हो, तो उसका बहुत थोडा या कुछ भी उपयोग नही है।

हरिजन १३–६–'३६

अस्वाद-व्रतका ब्रह्मचर्य पालनके साथ बडा गहरा सबध है। मैने अनुभवसे पाया है कि यदि स्वाद पर काबू पा लिया जाय, तो ब्रह्मचर्यका पालन बहुत आसान हो जाता है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० १५

अगर कोई पुरुष एक स्त्रीको या कोई स्त्री एक पुरुषको अपना प्रेम प्रदान कर देती है, तो फिर बाहरकी दुनियाके लिए और रह ही क्या जाता है? इसका सीधा-सा अर्थ यह है, "हम दो पहले और दूसरे सब बादमे।" चूकि पतिव्रता पत्नीको अपने पतिके लिए सर्वस्व बलिदान करनेको तैयार रहना ही चाहिये और एकपत्नीव्रती पतिको अपनी पत्नीके खातिर सब कुछ त्याग करनेको तैयार रहना ही चाहिये, इसलिए

स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति विश्वप्रेमकी ऊचाई तक नही पहुच सकते या समस्त मानव-जातिको अपना परिवार नही समझ सकते। क्योकि वे अपने प्रेमके चारो ओर एक दीवार खडी कर देते है। उनका परिवार जितना बडा होगा उतने ही वे विश्वप्रेमसे दूर रहेगे। इसलिए जिसे अहिसा-धर्मका पालन करना है, वह विवाह नही कर सकता। फिर विवाह-बधनके बाहर विषय-भोगकी बात तो कर ही कैसे सकता है?

तो फिर जो विवाह कर चुके है उनका क्या हो? क्या वे सत्यके दर्शन कभी नही कर सकेगे? क्या वे मानवताकी बेदी पर कभी सर्वस्वका बलिदान नही कर सकते? उनके लिए भी एक मार्ग है। वे ऐसा व्यवहार करे मानो उनका विवाह हुआ ही नही। जिन लोगोने यह सुखद अवस्था भोगी है, वे इसकी गवाही दे सकेगे। मेरी जानकारीमे अनेकोने सफलतापूर्वक यह प्रयोग किया है। यदि दम्पती एक-दूसरेको भाई-बहन समझ ले, तो वे विश्वसेवाके लिए मुक्त हो जाते है। ससारकी सारी स्त्रिया मेरी बहने, माताए या पुत्रिया है —— यह विचार ही मनुष्यको तुरत उदात्त बनाकर उसके बधन तोड डालेगा। इसमे पति-पत्नी कुछ भी नही खोते, इससे उनकी पूजी और उनका परिवार बढता ही है। उनका प्रेम वासनाकी अपवित्रतासे मुक्त होकर और भी प्रबल बन जाता है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० १०–११

४

अभय

अन्य उच्च गुणोके विकासके लिए अभय अनिवार्य है। निर्भयताके बगैर कोई सत्यकी खोज कैसे कर सकता है? या प्रेम कैसे कर सकता है? जैसे प्रीतम कहता है, 'हरिका मार्ग वीरोका मार्ग है, कायरोका नही।' हरिका अर्थ यहा सत्य है और वीर वे है जिनके पास निर्भयताका शस्त्र है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० २७

५

अस्तेय

यह असभव है कि कोई मनुष्य चोरी भी करे और साथ साथ सत्यको जानने या प्रेमधर्मको पालनेका दावा भी करे। फिर भी हम सब जाने या अनजाने थोडे-बहुत चोरीके अपराधी है। यह समझकर कोई चीज ले लेना कि वह किसीकी सपत्ति नही है चोरी है। सडक पर पडी हुई वस्तुए राजाकी है या स्थानीय सत्ताकी।

दूसरेसे कोई चीज उसकी इजाजतसे लेना भी चोरी है, अगर हमे दरअसल उसकी जरूरत न हो। इस प्रकारकी चोरीका विषय आम तौर पर खुराक होता है। किसी फलकी मुझे जरूरत न हो तो उसका खाना या आवश्यकतासे अधिक मात्रामे खाना मेरे लिए चोरी है। हमे सदा अपनी वास्तविक जरूरतोका पता नही होता और हममे से अधिकाश अपनी जरूरते बेजा तौर पर बढा लेते है और इस प्रकारसे अज्ञात रूपमे चोर बन जाते है। अगर हम इस विषय पर कुछ विचार करे, तो हमे पता चलेगा कि हम अपनी बहुतसी जरूरते कम कर सकते है। अस्तेय-व्रतका पालन करनेवाला धीरे-धीरे अपनी आवश्यकताए घटा लेगा। इस ससारका अधिकाश दु खदायी दारिद्रय अस्तेय-सिद्धान्तके भगसे पैदा हुआ है।

जो अस्तेय-सिद्धान्तका पालन करता है, वह भविष्यमे प्राप्त की जाने-वाली वस्तुओकी चिन्ता नही करेगा। बहुतसी चोरियोकी जडमे भविष्यकी यह दुश्चिन्ता ही पाई जायगी। आज हमे किसी वस्तुकी केवल प्राप्तिकी इच्छा होती है, कल हम उसकी प्राप्तिके लिए सभव हो तो अच्छे और आवश्यक हो तो बुरे उपाय भी काममे लेने लगते है।

भौतिक पदार्थोकी तरह ही विचार भी चुराये जा सकते है। जो अहकारपूर्वक किसी अच्छे विचारका प्रवर्तक होनेका दावा करता है,

लेकिन असलमे उस विचारको जन्म देनेवाला नही होता, वह विचारोकी चोरीका दोषी है।

इसलिए जो अस्तेय-व्रत धारण करता है, उसे नम्र, विचारशील, जागरूक और सादी आदतोवाला बनना चाहिये।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० १९–२२

६

अपरिग्रह

अपरिग्रहका अस्तेयके साथ चोली-दामनका सबध है। कोई चीज वास्तवमे चुराई न गई हो तो भी अगर हम आवश्यकताके बिना उसका सग्रह करते है, तो वह चोरीका माल समझा जाना चाहिये। परिग्रहका अर्थ है भविष्यके लिए सग्रह करना। सत्य-शोधक, प्रेमधर्मका पालन करनेवाला कलके लिए कोई चीज सग्रह करके नही रख सकता। ईश्वर परिग्रह नही करता। वह जिस समय जितनी चीजकी जरूरत है, उससे अधिक कभी उत्पन्न नही करता। इसलिए यदि हमे उसकी दया पर भरोसा है, तो हमे निश्चिन्त रहना चाहिये कि वह नित्य हमे खानेको देगा अर्थात् हमारी सब जरूरते पूरी करेगा। सन्तो और भक्तोकी, जिन्होने ऐसा श्रद्धापूर्ण जीवन बिताया है, यह श्रद्धा सदा उनके अनुभवसे सही साबित हुई है। जिस ईश्वरीय कानूनसे मनुष्यको नित्य आजीविका प्राप्त होती है, लेकिन उससे अधिक कुछ नही मिलता, उसके अज्ञान या उपेक्षाके कारण दुनियामे असमानताए और उनके साथ लगी हुई तमाम विपत्तिया उत्पन्न हुई है। धनवानोके पास तो जिन चीजोकी उन्हे जरूरत नही है उनका फालतू भडार भरा होता है। इस कारण उनकी परवाह नही की जाती और वे बरबाद होती है। दूसरी तरफ लाखो लोग जीविकाके अभावमे भूखसे मर जाते है। यदि हरएक अपनी जरूरतकी चीजे ही रखे, तो किसीको कमी नही रहेगी और सब सतोषपूर्वक जीवन बिता सकेगे। वर्तमान स्थितिमें

तो अमीर-गरीब सभी समान रूपसे असतुष्ट है। गरीब आदमी लखपति बनना चाहता है और लखपति करोडपति। सर्वत्र सतोषकी भावना फैलनेकी दृष्टिसे अमीरोको परिग्रह छोडनेमे पहल करनी चाहिये। यदि वे अपनी निजी सपत्तिको साधारण मर्यादामे रखे, तो भूखोको आसानीसे खानेको मिल जाय और वे धनवानोके साथ-साथ सतोषका पाठ सीख जाय।

शुद्ध सत्यकी दृष्टिसे शरीर भी एक परिग्रह है। इस प्रकार हम सपूर्ण त्यागके आदर्श तक पहुच जाते है और जब तक शरीर है तब तक उसे सेवाके लिए ही काममे लेना सीखते है — यहा तक कि रोटी नही, बल्कि सेवा ही हमारे जीवनकी सच्ची खुराक बन जाती है। इस प्रकारकी मनोवृत्ति हमे सच्चा सुख प्रदान करती है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० २३–२५

हमारी रोजमर्राकी जरूरतके लिए प्रकृति काफी उत्पन्न करती है, और यदि प्रत्येक मनुष्य अपने लिए आवश्यकतासे ज्यादा न ले, तो इस ससारमे न तो दारिद्रय रहे और न कोई भूखसे मरे। लेकिन जब तक हममे यह असमानता है, तब तक हम चोरी ही करते है। मै समाजवादी नही हू और जिनके पास सपत्ति है उनसे मै सपत्ति छीनना नही चाहता। परतु मै यह जरूर कहता हू कि हममे से जो लोग व्यक्तिगत रूपमे अधकारमे से प्रकाशकी ओर जाना चाहते है, उन्हे यह नियम पालना पडेगा। मै किसीकी सपत्ति छीनना नही चाहता। ऐसा करू तो मै अहिसाके नियमसे विचलित हो जाऊगा। यदि किसीके पास मुझसे अधिक परिग्रह है तो भले रहे। परतु जहा तक मेरी अपनी जिन्दगीको नियमित बनानेका सवाल है, मै जरूर कहता हू कि जिस चीजकी मुझे जरूरत नही है उसे रखनेका मुझे साहस नही होगा। भारतवर्षमे हमारे यहा तीस लाख आदमी ऐसे है, जिन्हे एक जून खाकर सन्तोष करना पडता है और उस खानेमे सिर्फ एक सूखी रोटी और चिमटी भर नमक ही होता है। आपको और मुझे वास्तवमे अपने पासकी किसी वस्तुको रखनेका तब तक अधिकार नही है, जब तक इन तीस लाख व्यक्तियोको अधिक अच्छा अन्न-वस्त्र न मिलने लगे। आपको और मुझे, जिन्हे अधिक ज्ञान

है, अपनी जरूरते नियमित करनी चाहिये और स्वेच्छापूर्वक भूखे भी रहना चाहिये, ताकि इन लोगोकी सेवा-शुश्रूषा, भोजन और वस्त्रकी व्यवस्था हो सके।

स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गाधी, चतुर्थ सस्करण, पृ० ३८४

७

खानपानमे संयम

नशीले पदार्थो और सभी प्रकारके खाद्यो, विशेषत मासका सेवन न करनेसे बेशक आत्माके विकासमे बडी सहायता मिलती है। परन्तु यह स्वय कोई साध्य नही है। बहुतसे लोग, जो मासका सेवन करते है और सबके साथ खाते-पीते है, परन्तु ईश्वरसे डर कर रहते है, उस मनुष्यकी अपेक्षा अपने मोक्षके ज्यादा निकट है जो मास और कई दूसरी चीजोका धर्मभावसे परहेज तो रखता है, परन्तु अपने प्रत्येक कर्म द्वारा ईश्वरका तिरस्कार करता है।

यग इडिया, ६–१०–'२१

मै यह जरूर महसूस करता हू कि किसी मजिल पर आध्यात्मिक प्रगतिका यह तकाजा अवश्य होता है कि हम अपनी शारीरिक आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए अपने साथ रहनेवाले प्राणियोकी हत्या बन्द कर दे। जब मै आपसे अपनी शाकाहारी सनकका जिक्र करता हू, तो मुझे गोल्डस्मिथकी सुन्दर पक्तिया याद आती है, जिनका भावार्थ है

'जो पशुसमूह घाटीमे स्वतत्र विचरण करते है, उन्हे मै हत्याका दड नही देता, क्योकि जो सत्ता मुझ पर दया करती है, उससे शिक्षा लेकर मै इन पर दया करता हू।'

इडियाज़ केस फॉर स्वराज, १९३२, पृ० ४०२

अनुभव यह सिखाता है कि मासाहार उन लोगोके लिए अनुकूल नही है, जो अपने विचारोका दमन करना चाहते है। परन्तु चरित्र-निर्माण

या इन्द्रिय-जयमे भोजनको अत्यधिक महत्त्व देना भी भूल है। आहार एक ऐसा प्रबल तत्त्व है, जिसकी उपेक्षा नही की जानी चाहिये। परन्तु सारे धर्मका निचोड भोजनमे ही मान बैठना, जैसा भारतमे अकसर किया जाता है, उतना ही गलत है जितना भोजन-सम्बन्धी सारे सयमकी उपेक्षा करना और मनभाता खाना-पीना है।

यग इडिया, ७–१०–'२६

अहिसा केवल खाद्याखाद्यका ही विषय नही, यह उससे परे है। मनुष्य क्या खाता-पीता है, इसका बहुत थोडा महत्त्व है। महत्त्व उसके पीछे रहनेवाले आत्मत्याग और आत्म-सयमका है। खाद्य पदार्थोंके चुनावमे जितना भी सयम रखना हो जरूर रखे। यह सयम प्रशसनीय है, जरूरी भी है। परतु इसमे अहिसा नाममात्रकी है। मनुष्य भोजनके मामलेमे काफी छूट रखकर भी अहिसाकी जीती-जागती मूर्ति हो सकता है और हमारे आदरका पात्र बन सकता है, यदि उसका हृदय प्रेमसे उमडता हो, दूसरेके दु खसे द्रवित होता हो और रागद्वेषादि विकारोसे मुक्त हो गया हो। इसके विपरीत, वह मनुष्य खानपानमे जरूरतसे ज्यादा सावधान रहते हुए भी अहिसासे सर्वथा अपरिचित है और दयनीय प्राणी है, जो स्वार्थ और विकारोका दास है और कठोर-हृदय है।

यग इडिया, ६–९–'२८

यद्यपि गाधीजीका यह आग्रह है कि ग्रामसेवक ग्रामीणोके भोजन पर गुजर करे और उसका तीन आने रोजसे ज्यादा खर्च न हो, पर उनका यह आग्रह कदापि नही है कि ग्रामसेवक भूखो मरे या अपनी देहका व्यर्थ दमन करे। एक कार्यकर्ताने दिनमे केवल एक बार खानेका कठोर व्रत ले लिया है। उसके भोजनमे १५ तोला उबले हुए चावल, आमटी और छाछ रहती है और उसका खर्च केवल एक आना रोज पडता है। गाधीजीने उसे लिखा

"तुम्हारा खाना बहुत कम है। यह भूखो मारनेवाला भोजन है। मेरी रायमे तुम शरीररूपी यत्रका, जो ईश्वरने तुम्हारे सुपुर्द किया है, पूरा उपयोग नही कर रहे हो। क्या तुम्हे बाइबलकी सिक्कोवाली

कहानी मालूम है, जिसमे उस मनुष्यसे सिक्के वापस ले लिये गये थे, जो उनका उपयोग नही जानता था, या जानते हुए भी उन्हे काममे नही लेता था? देहका दमन तब आवश्यक है जब वह हमारी आत्माके विरुद्ध विद्रोह करे। किन्तु जब वह हमारे वशमे आ जाय और सेवाके साधनके रूपमे उसका उपयोग किया जा सके तब उसका दमन करना पाप है। दूसरे शब्दोमे कहे तो देह-दमनमे स्वय कोई नैसर्गिक गुण नही है।"

हरिजन २–११–'३५

८

वैराग्य और आत्मत्याग

वैराग्यका यह अर्थ नही कि ससारको छोडकर जगलमे रहने लग जाय। वैराग्यकी भावना जीवनकी समस्त प्रवृत्तियोमे व्याप्त होनी चाहिये। कोई गृहस्थ यदि जीवनको भोग न समझकर कर्तव्य समझता है, तो वह गृहस्थ मिट नही जाता। जो व्यापारी अपना काम त्यागकी भावनासे करता है, उसके हाथोसे भले ही करोडो रुपयेका लेनदेन होता हो, फिर भी वह यदि अपने धर्मका पालन करता हो, तो अपनी योग्यताका उपयोग सेवाके लिए करेगा। इसलिए वह किसीको धोखा नही देगा, सट्टा नही करेगा, सादा जीवन व्यतीत करेगा, किसी प्राणीको दु ख नही पहुचायेगा और लाखो रुपये खो देगा मगर किसीको हानि नही पहुचायेगा।

त्यागमय जीवन कलाका उत्तम प्रतीक और सच्चे आनन्दसे परिपूर्ण होता है। जो सेवा करना चाहता है, वह अपने आरामका विचार करनेमे एक क्षण भी व्यर्थ खर्च नही करेगा। क्योकि उसे वह प्रभुकी इच्छा पर छोड देता है। इसलिए वह जो कुछ हाथ लग जाय उसीको बटोर कर अपना बोझ नही बढायेगा, सिर्फ उतना ही लेगा जितनेकी उसे सख्त जरूरत है, और बाकी छोड देगा। असुविधा होने पर भी वह मनमे

शान्त, क्रोधरहित और अविचलित रहेगा। सद्गुणकी भाति उसकी सेवा ही उसका पुरस्कार होगा और वह उसीसे सतुष्ट रहेगा।

दूसरोकी स्वेच्छापूर्वक सेवामे हमारी शक्तिया लगनी चाहिये और उसे अपनी सेवासे तरजीह मिलनी चाहिये। असलमे शुद्ध भक्त अपने लिए कुछ भी न रखकर अपनेको मानव-सेवामे सर्मपित कर देता है।

मगल-प्रभात १९४५, पृ० ५७–६०

अपने त्याग पर हमे कोई दुख अनुभव नही होना चाहिये। जिस त्यागसे पीडा होती है, उसकी पवित्रता नष्ट हो जाती है और अधिक जोर पडने पर वह खतम हो जाता है। मनुष्य उन वस्तुओका त्याग करता है, जिन्हे वह हानिकारक मानता है, इसलिए त्याग करनेसे उसे सुख होना चाहिये।

यग इडिया, १५–७–'२६

९

शरीर-श्रम

शरीर-श्रम मनुष्यमात्रके लिए अनिवार्य है, यह बात पहले-पहल टॉल्स्टॉयके एक निबन्धसे मेरे गले उतरी। इतने स्पष्ट रूपसे इस बातको जाननेसे पहले रस्किनका 'अन्टु दिस लास्ट' पढकर मै फौरन ही उस पर अमल करने लगा था। शरीर-श्रम अग्रेजी शब्द 'ब्रेड लेबर' का अनुवाद है। 'ब्रेड लेबर' का शब्दश अनुवाद है 'रोटी (के लिए) श्रम'। रोटीके लिए हर आदमीको श्रम करना, हाथ-पैर हिलाना चाहिये, यह ईश्वरीय नियम है। यह मूल खोज टॉल्स्टॉयकी नही, पर उसकी अपेक्षा बहुत कम परिचित रूसी लेखक बोन्दरेव्हकी है। टॉल्स्टॉयने इसे प्रसिद्धि दी और अपनाया। इसकी झलक मुझे भगवद्गीताके तीसरे अध्यायमे देखनेको मिलती है। यज्ञ किये बिना खानेवाला चोरीका अन्न खाता है, यह कठोर शाप अयज्ञके लिए दिया गया है। यहा यज्ञका अर्थ शरीर-श्रम या रोटी-श्रम ही अच्छा लगता है, और मेरी रायमे निकल भी

सकता है। जो भी हो, हमारे इस व्रतकी यह उत्पत्ति है। बुद्धि भी इस वस्तुकी ओर हमे ले जाती है। शरीर-श्रम न करनेवालेको खानेका क्या अधिकार हो सकता है? बाइबल कहती है, "अपनी रोटी तू अपना पसीना बहाकर कमाना और खाना।" करोडपति भी अपने पलग पर लोटता रहे और मुहमे किसीके खाना डाल देने पर खाये, तो वह बहुत दिनो तक न खा सकेगा। उसमे उसके लिए आनन्द भी न रह जायगा। इसलिए वह कसरत वगैरा करके भूख उत्पन्न करता है और खाता तो है अपने ही हाथ-मुह हिलाकर। तो फिर यह प्रश्न स्वभावत उठता है कि यदि इस तरह राजा-रक सभीको किसी न किसी रूपमे व्यायाम करना ही पडता है, तो रोटी पैदा करनेकी ही कसरत सब लोग क्यो न करे? किसानसे हवा खाने या कसरत करनेको कोई नही कहता। और ससारके ९० प्रतिशतसे भी अधिक मनुष्योका निर्वाह खेतीसे होता है। शेप १० प्रतिशत मनुष्य इनका अनुकरण करे, तो ससारमे सुख, शान्ति और आरोग्य कितना बढ जाय? यदि खेतीके साथ बुद्धिका मेल हो जाय, तो खेतीके काममे आनेवाली अनेक कठिनाइया सहजमे दूर हो जाय। इसके सिवा शरीर-श्रमके इस निरपवाद नियमको सभी यदि मानने लगे, तो ऊच-नीचका भेद दूर हो जाय। इस समय तो जहा ऊच-नीचकी गध भी न थी, वहा भी अर्थात् वर्ण-व्यवस्थामे भी वह घुस गई है। मालिक-मजदूरका भेद सर्वव्यापक हो गया है और गरीब अमीरसे ईर्षा करने लग गया है। यदि सब अपनी रोटीके लिए मेहनत करे, तो ऊच-नीचका भेद दूर हो जाय। और फिर जो धनी वर्ग रह जायगा, वह अपनेको मालिक न मानकर उस धनका केवल रक्षक या ट्रस्टी मानेगा और उसका उपयोग मुख्यत लोकसेवाके लिए करेगा। जिसे अहिसाका पालन करना है, सत्यकी आराधना करनी है, ब्रह्मचर्य-पालनको स्वाभाविक बनाना है, उसके लिए तो शरीर-श्रम रामबाणरूप हो जाता है। यह श्रम वास्तवमे देखा जाय तो खेतीसे ही सबध रखता है। पर आजकी जो स्थिति है उसमे सब उसे नही कर सकते। इसलिए खेतीका आदर्श ध्यानमे रखकर आदमी बदलेमे दूसरा श्रम जैसे कताई, बुनाई, बढई-गिरी, लुहारी इत्यादि कर सकता है। सबको अपना अपना भगी तो

होना ही चाहिये। जो खाता है उसे मलत्याग करना पडता है। मलत्याग करनेवाला ही अपने मलको गाडे, यह इस विषयमे सबसे अच्छी बात है। यह न हो सके तो समस्त परिवार मिलकर इस विषयमे अपना कर्तव्य पालन करे। मुझे तो वर्षोसे ऐसा मालूम होता रहा है कि जहा भगीका अलग धन्धा माना गया है, वहा कोई महादोष घुस गया है। इसका इतिहास हमारे पास नही है कि इस आरोग्यवर्धक कार्यको किसने पहले नीचसे नीच ठहराया। ठहरानेवालेने हम पर उपकार तो नही ही किया। हम सब भगी है, यह भावना हमारे दिलमे बचपनसे दृढ हो जानी चाहिये और इसे करनेका सहजसे सहज उपाय यह है कि जो समझे हो वे शरीर-श्रमका आरभ पाखाना-सफाईसे करे। जो ज्ञानपूर्वक ऐसा करेगा वह उसी क्षणसे धर्मको आजसे भिन्न और सच्चे रूपमे समझने लगेगा। बालक, वृद्ध और रोगसे अपग बने हुए यदि परिश्रम न करे, तो उसे कोई अपवाद न माने। बालकका समावेश मातामे हो जाता है। यदि प्राकृतिक नियमका भग न हो, तो बूढे अपग न होगे और रोग तो भला हो ही कैसे सकता है?

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ३५–३७

यज्ञ कई प्रकारके हो सकते है। उनमे से एक शरीर-श्रम भी हो सकता है। यदि सब अपने ही श्रमकी रोटी खाये, तो सबके लिए पर्याप्त भोजन और पर्याप्त अवकाश उपलब्ध हो जायगा। तब न तो अत्यधिक आबादीकी चिल्लाहट मचेगी, न कोई रोग फैलेगा और न हम आज चारो ओर देखते है वैसी कोई विपत्ति सतावेगी। ऐसा श्रम ऊचेसे ऊचे प्रकारका यज्ञ होगा। बेशक, लोग अपने शरीरसे या बुद्धिसे अन्य बहुतसी बाते करेगे, परन्तु वह सारा परिश्रम लोक-कल्याणके प्रेमसे करेगे। तब कोई अमीर-गरीब नही होगा, कोई ऊच-नीच नही होगा और कोई छूत-अछूत नही रहेगा।

यह आदर्श अप्राप्य हो सकता है। परन्तु इस कारण हमे इसके लिए अपनी कोशिश छोड देनेकी जरूरत नही। यदि यज्ञके सपूर्ण नियमका अर्थात् हमारे जीवन-नियमका पालन किये बिना हम अपनी जीविकाके

लिए भी काफी शरीर-श्रम कर ले, तो हम उस आदर्शकी दिशामे बहुत आगे बढ जायेगे।

यदि हम ऐसा करेगे तो हमारी आवश्यकताए कमसे कम रह जायगी और हमारा भोजन सादा होगा। तब हम जीनेके लिए खायेगे, खानेके लिए नही जियेगे। इस कथनके ठीक होनेमे जिस किसीको सन्देह हो, वह अपनी रोटीके लिए पसीना बहाकर देख ले, उसे अपनी मेहनतसे पैदा की हुई रोटीमे कुछ और ही मजा आयेगा, उसका स्वास्थ्य सुधर जायगा और उसे पता लग जायगा कि जो बहुतसी विलासकी चीजे उसने अपने पर लाद रखी थी वे बिलकुल बेकार थी।

क्या मनुष्य अपने बौद्धिक श्रमसे अपनी आजीविका नही कमा सकते? नही। शरीरकी आवश्यकताए शरीर द्वारा ही पूरी होनी चाहिये।

केवल मानसिक और बौद्धिक श्रम आत्माके लिए और स्वय अपने ही सतोषके लिए है। उसका पुरस्कार कभी नही मागा जाना चाहिये। आदर्श राज्यमे डॉक्टर, वकील और ऐसे ही दूसरे लोग केवल समाजके लाभके लिए काम करेगे, अपने लिए नही। शारीरिक श्रमके धर्मका पालन करनेसे समाजकी रचनामे एक शान्त क्रान्ति हो जायगी। मनुष्यकी विजय इसमे होगी कि उसने जीवन-सग्रामके बजाय परस्पर सेवाके सग्रामकी स्थापना कर दी। पशुधर्मके स्थान पर मानव-धर्म कायम हो जायगा।

देहातमे लौट जानेका अर्थ यह है कि शरीर-श्रमके धर्मको उसके तमाम अगोके साथ हम निश्चित रूपमे स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करते है। परन्तु आलोचक कहते है, 'भारतकी करोडो सताने आज भी देहातमे रहती है, फिर भी उन्हे पेटभर भोजन नसीब नही होता।' अफसोसके साथ कहना पडता है कि यह बिलकुल सच बात है। सौभाग्यमे हम जानते है कि उनका शरीर-श्रमके धर्मका पालन स्वेच्छापूर्ण नही है। उनका बस चले तो वे शरीर-श्रम कभी नही करे और नजदीकके शहरमे कोई व्यवस्था हो जाय तो वहा दौड कर चले जाय। मजबूर होकर किसी मालिककी आज्ञा पालना गुलामीकी स्थिति है, स्वेच्छासे अपने पिताकी आज्ञा मानना पुत्रका गौरव है। इसी प्रकार शरीर-श्रमके नियमका विवश होकर पालन करनेसे दरिद्रता, रोग और असतोष उत्पन्न

होते हैं। यह दासत्वकी दशा है। शरीर-श्रमके नियमका स्वेच्छापूर्वक पालन करनेमे सतोप और स्वास्थ्य मिलता है। और तदुरुस्ती ही असली दौलत हैं न कि सोने-चादीके टुकडे। ग्रामोद्योग-सघ स्वेच्छापूर्ण शरीर-श्रमका ही एक प्रयोग है।

हरिजन २९–६–'३५

प्र० — हमारा यह आग्रह क्यो होना चाहिये कि कोई रवीन्द्रनाथ या रमण शरीर-श्रम द्वारा ही अपनी रोटी कमाये? क्या यह उनकी बौद्धिक शक्तिकी निरी बरबादी नही है? दिमागी काम करनेवालोको शरीर-श्रम करनेवालोके बराबर ही क्यो न समझा जाय, जब दोनो ही समाजका उपयोगी काम करते है?

उ० — बौद्धिक कार्य महत्त्वपूर्ण है और जीवनकी योजनामे उसका निश्चित स्थान है। परन्तु मेरा आग्रह शरीर-श्रमकी आवश्यकता पर है। मेरा दावा है कि किसी भी मनुष्यको इस दायित्वसे मुक्त नही होना चाहिये। इससे उसके बौद्धिक कार्यकी श्रेष्ठता बढ जायगी।

हरिजन, २३–२–'४७

१०

स्वदेशी

स्वदेशीका उपासक अपने निकटके पडोसियोकी सेवाको प्रथम कर्तव्य मानकर उसमे अपनेको सर्मापित कर देगा। इसमे बाकीके लोगोके हितोको छोडने या कुर्बान करनेकी भी नौबत आ सकती है, परन्तु यह छोडने या कुर्बानी करनेकी बात केवल आभासमात्र होगी। अपने पडोसियोकी शुद्ध सेवा चीज ही ऐसी है कि उससे दूरवालोकी कुसेवा हरगिज नही हो सकती, बल्कि सेवा ही होती है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' एक अचूक सिद्धान्त है, जिसे हमे हृदय पर अकित कर लेना चाहिये। इसके विपरीत, जो मनुष्य दूरके लोगोकी सेवाके लालचमे फसकर पृथ्वीके उस छोर तक सेवाके लिए दौडता है, वह न केवल

अपनी महत्त्वाकाक्षामे विफल होता है, परन्तु पडोसियोके प्रति अपने कर्तव्यमे भी चूकता है। एक प्रत्यक्ष उदाहरण लीजिये। जिस विशेष स्थानमे मै रहता हू वहा कुछ लोग मेरे पडोसी, कुछ रिश्तेदार और कुछ आश्रित हैं। उनका यह महसूस करना, और यह उनका हक है, स्वाभाविक है कि उनका मुझ पर कोई अधिकार है, और वे सहायता व सहारेके लिए मेरी ओर देखते है। अब मान लीजिये कि मै उन्हे अचानक छोड कर किसी दूरकी जगहके लोगोकी सेवाके लिए चला जाता हू। मेरे निश्चयसे पडोसियो और आश्रितोकी मेरी छोटीसी दुनिया अस्तव्यस्त हो जायगी ओर बहुत सभव है कि मेरे इस दूरकी सेवाके मोहसे नये स्थानका वातावरण अशान्त हो जाय। इस प्रकार अपने पासके पडोसियोकी दोषपूर्ण उपेक्षा और जिनकी सेवा मै करना चाहता हू उनकी अनचाही कुसेवा स्वदेशीके सिद्धान्तके मेरे भगके पहले परिणाम होगे। इसीसे 'स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह' वचन कहा गया है। इसका अर्थ जरूर ऐसा किया जा सकता है 'स्वदेशीका पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाय तो अच्छा है, परदेशी तो भयानक है ही।' यहा स्वधर्मका अर्थ है स्वदेशी।

हानि तभी होती है जब स्वदेशीके सिद्धान्तका गलत अर्थ समझ लिया जाता है। मसलन्, यह स्वदेशीके सिद्धान्तका विपर्यास होगा कि मै अपने परिवारका मोह रखकर उसका लाड लडानेके लिए भले-बुरे सभी उपायोसे रुपया बटोरनेमे लग जाऊ। स्वदेशी धर्मका तकाजा है कि मै न्यायपूर्ण साधनो द्वारा अपने परिवारके प्रति केवल अपने उचित फर्ज अदा करू। इससे मुझे सर्वव्यापक धर्मका पता लग जायगा। स्वदेशीके अमलसे कभी किसीकी हानि नही हो सकती, और अगर होती है तो मेरा माना हुआ धर्म स्वधर्म नही बल्कि अहकार है। इसलिए वह त्याज्य है।

ऐसे अवसर आ सकते है जब स्वदेशीके भक्तको सबकी सेवाके लिए अपने परिवारका बलिदान करनेकी जरूरत हो जाय। उस समय स्वेच्छासे किये जानेवाले आत्मोत्सर्गका यह कार्य परिवारकी उच्चतम सेवा होगी। यह हो सकता है कि जिस तरह हम अपनेको खोकर अपनी रक्षा

कर सकते है, उसी तरह कुटुम्बको खोकर कुटुम्बकी रक्षा कर सके। दूसरा दृष्टान्त ले। मान लीजिये कि मेरे गावमे प्लेग फैल जाता है और इस महामारीके शिकारोको बचानेके प्रयत्नमे मै, मेरी पत्नी, बच्चे और घरके और सब लोग फना हो जाते है, तब ऐसा नही कहा जायगा कि अपने प्रियतम और निकटतम लोगोको अपने साथ आनेके लिए राजी करके मैने अपने परिवारके नाशकका काम किया, बल्कि यह कहा जायगा कि मैने उसके सच्चे हितैषीका काम किया। स्वदेशीमे स्वार्थकी गुजाइश नही है, और यदि उसमे कोई स्वार्थ हो तो वह सर्वोच्च प्रकारका है, जो उच्चतम परोपकारसे भिन्न नही है। स्वदेशी अपने शुद्धतम रूपमे परमार्थकी पराकाष्ठा है।

इस तर्कप्रणाली पर चलनेसे ही मुझे यह सूझा कि स्वदेशीके सिद्धान्तको समाज पर लागू करनेका आवश्यक और सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम खादी है। मैने अपने मनसे पूछा कि 'वह कौनसी सेवा है जिसकी इस समय भारतके करोडो लोगोको जरूरत है, जिसे सब लोग आसानीसे समझकर उसकी कद्र कर सकते है, जो आसानीसे की जा सकती है और जो हमारे करोडो अधभूखे देशवासियोको जिन्दा रख सकती है?' उत्तर मिला. केवल खादी या चरखेको सर्वव्यापी बनानेसे ये शर्ते पूरी की जा सकती है।

कोई यह न समझ ले कि खादी द्वारा स्वदेशीके पालनसे विदेशी या भारतीय मिल-मालिकोको नुकसान पहुचेगा। किसी चोरसे उसकी चोरी छुडवा दी जाय या चुराया हुआ माल वापस करवा दिया जाय, तो इससे उसको हानि नही बल्कि लाभ होता है। इसी प्रकार यदि ससारके सारे अफीमचियो और शराबियोको अपनी बुरी लत छोड देनी पडे, तो अफीम या शराबके दुकानदार घाटेमे नही रहेगे। सच्चे अर्थमे वे फायदेमे ही रहेगे। पापकी कमाई उठ जानेसे सबधित व्यक्ति या समाजको कभी नुकसान नही होता, वह तो शुद्ध लाभ है।

यह मान लेना सबसे बडा भ्रम है कि केवल थोडासा सूत कात लेने या उसकी बनी हुई खादी पहन लेनेसे स्वदेशी धर्मका पूरा पालन हो जाता है। समाजके प्रति स्वदेशी धर्मके पालनमे खादी पहला अनिवार्य

कदम है। परन्तु हमे अकसर ऐसे लोग मिलते है जो खादी पहनते है, मगर और सब बातोमे विलायती मालका छूटसे उपयोग करते है। ऐसे आदमियोके लिए यह नही कहा जा सकता कि वे स्वदेशीका पालन करते है। वे केवल फैशनके पीछे चलते है। स्वदेशीका उपासक अपने चारो ओरकी परिस्थितिका सावधानीसे अध्ययन करेगा और स्थानीय माल दूसरी जगहकी बनी हुई वस्तुओसे घटिया या महगा होगा तो भी उसे तरजीह देकर, जहा कही सभव होगा, अपने पडोसियोकी सहायता करनेका प्रयत्न करेगा। वह स्थानीय चीजोके दोष दूर करनेकी कोशिश करेगा, परन्तु दोषोके कारण उन्हे छोडकर विदेशी वस्तुओको नही अपनायेगा।

परन्तु अन्य अच्छी चीजोकी भाति स्वदेशीका भी बिना सोचे-विचारे पालन किया जाय तो उससे नुकसान हो सकता है। इस खतरेसे बचना चाहिये। विदेशी मालको सिर्फ विदेशी होनेके कारण अस्वीकार करना और अपने देशमे ऐसी चीजे तैयार करनेमे राष्ट्रका समय और धन बरबाद करना, जिनके लिए वहा अनुकूलता नही है, बहुत बडी मूर्खता और स्वदेशीकी भावनाका भग है। स्वदेशीका सच्चा उपासक कभी विदेशियोके प्रति अपने मनमे दुर्भाव नही रखेगा। वह ससारमे किसीके प्रति भी वैरभाव नही रखेगा। स्वदेशी धर्म घृणाका धर्म नही है। वह नि स्वार्थ सेवाका सिद्धान्त है, जिसकी जड शुद्धतम अहिसा अर्थात् प्रेममे है।

(स्वदेशी पर ये विचार १९३० मे यरवडा जेलमे नही लिखे गये थे, परन्तु गाधीजीकी १९३१ मे हुई रिहाईके बाद बाहर आकर लिखे गये थे।)

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ६३–६७

स्वदेशीकी व्यापक व्याख्या यह है कि विदेशी वस्तुओको छोडकर सारी वस्तुए देशकी बनी हुई इस्तेमाल की जाय। देशी वस्तुओका उपयोग देशके उद्योगोकी रक्षाके लिए जरूरी है, खास तौर पर उन उद्योगोकी रक्षाके लिए, जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायगा। इसलिए मेरी रायमे जो स्वदेशी धर्म प्रत्येक विदेशी वस्तुका, भले ही वह कितनी

ही उपकारक क्यो न हो और किसीको दरिद्र भी क्यो न बनाती हो, बहिष्कार करता है वह सकुचित स्वदेशी धर्म है।

यग इडिया, १७–६–'२६

११

सब धर्मोके लिए आदर

दुनियाके विभिन्न धर्म एक ही स्थान पर पहुचनेके अलग-अलग रास्ते है। जहा तक हम एक ही उद्दिष्ट स्थान पर पहुचते है, हमारे भिन्न-भिन्न मार्ग अपनानेमे क्या हर्ज है? वास्तवमे जितने व्यक्ति है उतने ही धर्म है।

हिन्द स्वराज्य, १९४६, पृ० ३५–३६

अहिसा हमे सिखाती है कि हम दूसरोके धर्मोका वैसा ही आदर करे जैसा हम अपने धर्मका करते है। इस प्रकार हम अपने धर्मकी अपूर्णताको स्वीकार करते है। कोई भी सत्यशोधक, जो प्रेमके कानूनका अनुसरण करता है, तुरन्त यह स्वीकार कर लेगा। यदि हमे सत्यका सपूर्ण दर्शन हो जाता, तो हम निरे शोधक न रहकर ईश्वरके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते, क्योकि सत्य ईश्वर है। परन्तु केवल शोधक होनेके कारण हम अपनी खोज जारी रखते है और अपनी अपूर्णताका हमे भान रहता हे। और अगर हम खुद अपूर्ण है, तो हमारी कल्पनाका धर्म भी अवश्य अपूर्ण होना चाहिये। जैसे हमने ईश्वरका साक्षात्कार नही किया है, वैसे ही धर्मका सपूर्ण रूपमे साक्षात्कार नही किया है। इस प्रकार हमारी कल्पनाका धर्म अपूर्ण होनेके कारण उसका सदा विकास होता रहता है और उसके अर्थमे परिवर्तन होता रहता है। सत्यकी दिशामे, ईश्वरकी दिशामे, प्रगति ऐसे विकासके कारण ही सभव है। और जब मनुष्य-कल्पित सभी धर्म अपूर्ण है, तो उनके बीच तुलनात्मक गुण-दोषोका प्रश्न ही नही उठता। सभी धर्मोमे सत्यका दर्शन होता है, परन्तु सब अपूर्ण

है और सबमे भूले हो सकती है। दूसरे धर्मोका आदर करनेमे उनके दोषोके प्रति आखे मूदनेकी जरूरत नही। हमे स्वय अपने धर्मके दोषोके प्रति खूब जागरूक रहना चाहिये। लेकिन इस कारण उसे छोड नही देना चाहिये, बल्कि उन दोषोको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। सब धर्मोके प्रति समभाव रखते हुए हम दूसरे धर्मोकी लेने जैसी हर वस्तुको अपने धर्ममे लेनेमे न केवल सकोच नही करेगे, बल्कि उसे लेना अपना फर्ज समझेगे।

जैसे हर वृक्षका एक ही तना होते हुए भी बहुतसी डालिया और पत्तिया होती है, उसी प्रकार सच्चा और सपूर्ण धर्म एक ही है। परन्तु जब वह मानवीय माध्यमसे होकर गुजरता है, तब उसके अनेक रूप बन जाते है। वह सपूर्ण धर्म वाणीसे परे है। अपूर्ण मनुष्य अपनी-अपनी भाषामे उसे रखते है और उनके शब्दोका अर्थ दूसरे उतने ही अपूर्ण मनुष्य करते है। तब किसका अर्थ सही माना जाय? प्रत्येक मनुष्य अपने ही दृष्टि-कोणसे सही है, परन्तु यह असभव नही कि सभी गलत हो। इसलिए सहिष्णुता और समभावकी आवश्यकता है। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि हम अपने धर्मके प्रति उदासीन हो, बल्कि उसके लिए अधिक ज्ञानपूर्ण और अधिक शुद्ध प्रेम रखे। सहिष्णुतासे हमे आध्यात्मिक प्रकाश मिलता है, जो धर्मान्धतासे उतना ही दूर है जितना दक्षिणी ध्रुवसे उत्तरी ध्रुव। धर्मका सच्चा ज्ञान भिन्न-भिन्न धर्मोके बीचकी दीवारे तोड डालता है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ३८–४०

परन्तु सब महान धर्मोका अध्ययन करते समय एक नियम हमेशा ध्यानमे रखना चाहिये। वह यह कि सबधित धर्मोके प्रसिद्ध अनुयायियोकी रचनाओ द्वारा ही उनका अध्ययन करना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि कोई भागवतका अध्ययन करना चाहे, तो उसे किसी विरोधी आलोचकके किये हुए अनुवादसे नही करना चाहिये। परन्तु किसी भागवत-प्रेमीके अनुवादसे करना चाहिये। बाइबलका अध्ययन हमे धर्मनिष्ठ ईसाइयोकी टीकाओ द्वारा करना चाहिये। अपने धर्मके सिवा दूसरे धर्मोके इस अध्ययनसे हमे सब धर्मोकी मूलभूत एकताका

ज्ञान हो जायगा और उस सर्वव्यापी तथा शुद्ध सत्यकी झाकी भी मिल जायगी, जो सम्प्रदायो और धर्मोके दायरेसे परे है।

कोई क्षणभरके लिए भी यह डर न रखे कि दूसरे धर्मोके आदरपूर्ण अध्ययनसे स्वय अपने धर्मके प्रति हमारी श्रद्धा कमजोर हो जायगी। हिन्दू दर्शनशास्त्र मानता है कि सब धर्मोमे सत्यके तत्त्व मौजूद है और उन सबके प्रति वह आदर और पूजाका भाव रखनेका आदेश देता है। इसमे यह चीज तो मान ही ली गई है कि हमारा अपने धर्मके प्रति आदर हो। दूसरे धर्मोके अध्ययन और उनकी कद्रदानीसे यह आदर घटना नही चाहिये। बल्कि इस आदरके फलस्वरूप दूसरे धर्मोके प्रति हममे आदरका भाव पैदा होना चाहिये।

यग इडिया, ६–१२–'२८

मै यह नही मानता कि लोग दूसरोको, खास तौर पर धर्म-परिवर्तनकी दृष्टिसे, अपने धर्मोके बारेमे कहे। धर्ममे कहनेकी गुजाइश नही होती। उसे जीवनमे उतारना होता है। तब वह अपना प्रचार स्वय कर लेता है।

यग इडिया, २०–१०–'२७

धर्म अत्यत व्यक्तिगत वस्तु है। हमे अपने ज्ञानके अनुसार जीवन व्यतीत करके एक-दूसरेकी उत्तम बाते ग्रहण करनी चाहिये और इस प्रकार ईश्वरको प्राप्त करनेके मानव-प्रयत्नोके कुल योगमे वृद्धि करनी चाहिये।

हरिजन, २८–११–'३६

१२
अस्पृश्यता-निवारण

कोई भी जन्मसे अछूत नही हो सकता, क्योकि सभी उस एक आगकी चिनगारिया है। कुछ मनुष्योको जन्मसे ही अस्पृश्य समझना गलत है।

यह व्रत केवल 'अछूतो' से मित्रता करके ही पूरा नही हो जाता, इसमे सभी प्राणियोको आत्मवत् प्रेम करनेका समावेश होता है। अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ सारे ससारके लिए प्रेम और उसकी सेवा है और इस प्रकार वह अहिंसामे समा जाता है। अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ है मनुष्य-मनुष्यके बीचकी और भिन्न-भिन्न श्रेणीके प्राणियोके बीचकी दीवारे तोड डालना। हम देखते है कि ससारमे सर्वत्र ऐसी दीवारे खडी कर दी गई है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ३१, ३३, ३४

तीसरा विभाग : आर्थिक व्यवस्था

क — अहिंसक अर्थ-व्यवस्था

१
अहिंसात्मक आधार

नये दृष्टिकोणके अनुसार हम न केवल जो मिल सके उसे पानेका विचार छोड देंगे, परन्तु जो सबको न मिल सके उसे लेनेसे इनकार कर देंगे। मेरा खयाल है कि अर्थशास्त्रकी भाषामे हमारे लिए आम लोगोसे सफलतापूर्वक अपील करना कठिन नही होना चाहिये। और यह प्रयोग खासा सफल हो जाय, तो इससे बहुत बडे और अज्ञात आध्यात्मिक परिणाम निकलेंगे। मेरी यह मान्यता नही कि आध्यात्मिक कानून केवल अपने ही क्षेत्रमे काम करता है। इसके विपरीत, वह जीवनकी साधारण प्रवृत्तियोके द्वारा ही अपनेको प्रकट करता है। इस प्रकार वह आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रो पर भी अपना प्रभाव डालता है।

यग इडिया, ३–९–'२५

२

आर्थिक क्षमताके लिए मानव-तत्त्व अत्यावश्यक

मनुष्य एक इजन है और उसको गति देनेवाली शक्ति आत्मा है। यह अजीब इजन अधिकसे अधिक काम वेतनके लिए या दबावसे नही करेगा। यह तभी सभव होगा जब गति देनेवाली शक्ति अर्थात् प्राणीकी इच्छाशक्ति या आत्मामे उसीके सही ईधन प्रेम द्वारा अधिकसे अधिक बलका सचार किया जायगा। इस मामलेमे सार्वत्रिक नियम यह है कि मालिक और नौकरमे शक्ति और बुद्धि एक निश्चित मात्रामे विद्यमान मान ली जाय, तो उनसे अधिकतम भौतिक परिणाम आपसके वैरभाव द्वारा प्राप्त नही होगा, बल्कि एक-दूसरेके प्रति प्रेमसे प्राप्त होगा। नि स्वार्थ व्यवहारसे अत्यत कारगर नतीजा निकलेगा। अगर आप नौकरसे मेहरबानीका बरताव उसकी कृतज्ञतासे लाभ उठानेके विचारसे करेगे, तो आपको बदलेमे न कृतज्ञता मिलेगी और न अपनी मेहरबानीकी कोई कीमत। क्योकि आप इसीके पात्र है। इसके विपरीत, आप कोई आर्थिक हेतु रखे बिना नौकरके साथ कृपापूर्ण व्यवहार करेगे, तो आपके सारे आर्थिक हेतु पूरे हो जायगे। यहा भी और जगहकी भाति जो अपनी जान बचायेगा वह खोयेगा और जो खोयेगा वह पायेगा।

मान लीजिये कोई फौजी अफसर यह चाहता है कि वह अपनेको कुछ भी कष्ट न देकर केवल अनुशासनके नियम लागू करके अपनी टुकडीको अत्यत कारगर बना ले, तो वह किन्ही भी नियमोसे इस स्वार्थपूर्ण सिद्धान्तके आधार पर अपने मातहतोकी पूरी शक्तिका विकास नही कर सकेगा। परन्तु यदि अपने आदमियोके साथ वह गहरे सबध कायम करता है, उनके हितोका अधिकसे अधिक ध्यान रखता है और उनके प्राणोकी अधिकसे अधिक कीमत करता है, तो वह अपने प्रति उनके स्नेह और अपने चरित्रमे उनके विश्वासके द्वारा उनकी कारगर शक्तिको इतनी मात्रामे बढा देगा जितनी और किसी उपायसे नही बढा सकता।

अपने आफिसके कर्मचारियोके शासककी हैसियतसे किसी व्यापारीको पिताका अधिकार और जिम्मेदारी प्राप्त होती है। अधिकाश मामलोमे

किसी व्यापारिक पेढीमे प्रवेश करनेवाला युवक घरके वातावरणसे बिलकुल अलग हो जाता है। उसके मालिकको उसका पिता बन जाना चाहिये। अन्यथा घरमे हमेशा मिलनेवाली व्यावहारिक सलाह-सूचना और सहायताके लिए वह पिताका अभाव महसूस करता है। इसलिए मालिकके पास अपने नौकरोके साथ न्याय करनेका एकमात्र साधन यह कठोर आत्म-निरीक्षण ही है कि 'मै अपने मातहतोके साथ वैसा ही बरताव करता हू या नही, जैसा मै अपने लडकेके साथ सयोगवश उसके इसी तरहकी स्थितिमे पड जाने पर करता।'

मान लीजिये किसी जहाजके कप्तानको मजबूर होकर अपने ही पुत्रको एक साधारण नाविककी स्थितिमे रखना पडता है। उस समय जो बरताव वह अपने लडकेके साथ करेगा, वही अपने मातहत काम करनेवाले हर आदमीके साथ करना उसका धर्म है। इसी तरह फर्ज कीजिये कि किसी कारखानेके मालिकको अपने ही लडकेको मामूली मजदूरकी स्थितिमे रखनेको विवश होना पडे। तब अपने प्रत्येक मजदूरके साथ हमेशा वैसा ही व्यवहार करना उसका धर्म है, जैसा वह अपने पुत्रके साथ करेगा। अर्थ-शास्त्रका यही एकमात्र कारगर, सही या व्यावहारिक नियम हो सकता है।

और जैसे किसी जहाजके टकराकर टूट जाने पर कप्तानका यह धर्म हो जाता है कि वह सबके बाद जहाजसे हटे और अकाल पडने पर अपने मल्लाहोको खिलाकर अतिम कौर स्वय खाये, उसी प्रकार किसी व्यापारिक सकटमे उद्योगपतिका यह धर्म है कि वह अपने आदमियोके कष्ट-सहनमे न सिर्फ शरीक हो, बल्कि अपने आदमियोको जितना कष्ट महसूस होने दे उससे अधिक कष्ट खुद उठा ले। वह ऐसा ही करे जैसे कोई पिता अकालके समय, जहाजके टूट जाने पर या युद्धमे अपने पुत्रके लिए खुदको बलिदान कर देता है।

ये सब बाते बहुत अजीब मालूम होती है। फिर भी इस मामलेमे कोई सच्ची विचित्रता है तो वह यही कि ये बाते ऐसी लगती है, क्योकि वे शाश्वत और व्यावहारिक दृष्टिसे सब सच है।

गाधीजीज पैराफ्रेज ऑफ 'अन्टु दिस लास्ट', १९५१, पृ० ८–११, २१–२३

३

मनुष्य ही संपत्ति है, सोना-चांदी नहीं

असलमे धनके नामसे जो चीज चाही जाती है वह है मनुष्यो पर सत्ता। सीधे-सादे शब्दोमे उसका अर्थ है, वह सत्ता जिससे हमे अपने लाभके लिए नौकर, व्यापारी और कलाकारका श्रम मिल जाय। इसलिए साधारण अर्थमे धनवान बननेकी कला सिर्फ अपने लिए बहुतसी दौलत इकट्ठी करनेकी ही कला नही है, बल्कि ऐसी युक्ति आजमानेकी कला है जिससे हमारे पडोसियोके पास हमसे कम दौलत रहे। ठीक शब्दोमे कहा जाय तो यह 'अपने पक्षमे अधिकसे अधिक असमानता कायम करनेकी कला' है।

चूकि सपत्तिका सार मनुष्यो पर सत्ता कायम करना है, इसलिए क्या यही निष्कर्ष नही निकलता कि जिन मनुष्यो पर उसकी सत्ता है वे जितने ऊचे और सख्यामे अधिक होगे, उतनी ही सम्पत्ति अधिक होगी? शायद थोडे विचारके बाद यह भी मालूम हो सकता है कि वे मनुष्य स्वय ही सपत्ति है, न कि सोना-चादी। सपत्तिकी वास्तविक धमनिया नीली है और वे पत्थरोमे नही परन्तु मासमे है। सपत्तिमात्रकी अतिम सिद्धि यही है कि अधिकसे अधिक सशक्त, तेजस्वी आखोवाले और प्रसन्न-हृदय मनुष्य पैदा किये जाय। ऐसा समय भी आ सकता है जब इग्लैड गोलकुण्डाके हीरोसे गुलामोको सजाकर अपनी दौलतका प्रदर्शन करनेके बजाय ग्रीसके एक नामाकित पुरुषके कहे अनुसार अपने नीतिमान महापुरुषोको दिखाकर यह कह सके कि

'ये है मेरे रत्न!'

गाधीजीज पैराफ्रेज ऑफ 'अन्टु दिस लास्ट', १९५१, पृ० २८, २९, ४१, ४२

इसलिए जीवन ही सम्पत्ति है। वह देश सबसे ज्यादा समृद्ध है, जो अधिकसे अधिक सख्यामे सज्जन और सुखी मानवोका भरण-पोषण करता है। वह आदमी सबसे ज्यादा समृद्ध है, जिसने अपने जीवनके

कार्योको अधिकसे अधिक पूर्ण बनाया है और जिसका दूसरोके जीवन पर व्यक्तिगत रूपमे और अपनी सम्पत्तिके जरिये अधिकसे अधिक व्यापक प्रभाव है।

गाधीजीज पैराफ्रेज ऑफ 'अन्टु दिस लास्ट', १९५१, पृ० ५७

४

न्यायपूर्ण मजदूरी

यदि मै अपने आदमीको उचित मजदूरी देता हू, तो मै अनावश्यक धन जमा नही कर सकूगा, भोग-विलास पर रुपया बरबाद नही कर सकूगा और ससारमे दरिद्रताकी मात्राको नही बढा सकूगा। जिस मजदूरको मुझसे उचित मजदूरी मिलती है, वह अपने मातहतोके साथ न्यायका व्यवहार करेगा। इस प्रकार न्यायकी धारा सूख नही जायगी परन्तु जैसे-जैसे आगे बढेगी वैसे-वैसे बल-सचय करेगी। और जिस राष्ट्रमे ऐसी न्याय-भावना होगी, वह सुखी और खुशहाल होगा।

इस प्रकार हम देखते है कि अर्थशास्त्री यह सोचनेमे भूल करते है कि किसी राष्ट्रके लिए स्पर्धा या होड अच्छी है। स्पर्धासे सिर्फ खरीदारको मजदूरकी मजदूरी अन्यायपूर्ण ढगसे सस्ती मिल जाती है। नतीजा यह होता है कि धनवान अधिक धनी और निर्धन अधिक गरीब बनते है। अन्तमे इसका परिणाम राष्ट्रके लिए विनाशकारी ही हो सकता है। मजदूरको अपनी योग्यताके अनुसार न्यायपूर्ण मजदूरी मिलनी चाहिये। तब भी एक प्रकारकी स्पर्धा तो होगी ही, परन्तु लोग सुखी और कुशल होगे, क्योकि उन्हे मजदूरी पानेके लिए एक-दूसरेसे कमसे कम दर पर काम नही करना पडेगा, बल्कि उन्हे रोजगार हासिल करनेके लिए नये-नये कौशल प्राप्त करने होगे। सरकारी नौकरियोके आकर्षक होनेका यही रहस्य है, क्योकि उनमे वेतन ऊचे-नीचे पदोके अनुसार तय होता है। उनके लिए एक उम्मीदवार दूसरेसे कम तनख्वाह

लेनेका प्रस्ताव नही करता, परन्तु यही दावा करता है कि वह अपने प्रतिस्पर्धियोसे अधिक योग्य है। जल और स्थल सेनामे भी यही हाल है, जहा बहुत थोडा भ्रष्टाचार है। परन्तु व्यवसाय और उद्योगमे हद दर्जेकी प्रतिस्पर्धा है और उसका परिणाम धोखेबाजी, धूर्तता और चोरीमे आता है। रद्दी माल तैयार किया जाता है। उद्योगपति, मजदूर और खरीदार सब अपने-अपने स्वार्थका ध्यान रखते है। इससे सारा मानव-व्यवहार विषैला हो जाता है। मजदूर भूखो मरते है और हडताल कर देते है। कारखानेदार मक्कार बन जाते है और ग्राहक भी अपने आचरणके नैतिक पहलूकी उपेक्षा करते है। एक अन्यायसे दूसरे अनेक अन्याय पैदा होते है और अन्तमे मालिक मजदूर और ग्राहक सब दुखी होकर बरबाद हो जाते है। लोगोका धन ही उनमे अभिशापका काम करता है।

सच्चा अर्थशास्त्र न्यायका अर्थशास्त्र है। लोग जितने न्याय करना और सदाचारी बनना सीखेंगे उतने ही सुखी होंगे। अन्य सब बाते न केवल व्यर्थ है, बल्कि सीधी विनाशकी ओर ले जानेवाली है। येन केन प्रकारेण लोगोको धनवान बनना सिखाना उनकी महान कुसेवा करना है।

गाधीजीज पैराफ्रेज ऑफ 'अन्टु दिस लास्ट,' १९५१, पृ० ५०–५३

जो अर्थशास्त्र धनकी पूजा करना सिखाता है और कमजोरोको हानि पहुचाकर सबलोको दौलत जमा करने देता है, वह झूठा और भयानक अर्थशास्त्र है। वह मृत्युका दूत है। इसके विपरीत सच्चा अर्थ-शास्त्र सामाजिक न्यायकी हिमायत करता है, वह सबकी — जिनमे दुर्बलसे दुर्बल भी शामिल है — समान रूपसे भलाई चाहता है और सभ्य जीवनके लिए अनिवार्य है।

हरिजन, ९–१०–'३७

५

आर्थिक समानता

समाजकी मेरी कल्पना यह है कि जहा हम सब समान पैदा हुए है — अर्थात् हमे समान अवसर प्राप्त करनेका हक है, वहा सबकी योग्यता एकसी नही है। यह कुदरती तौर पर असभव है। उदाहरणार्थ सबकी ऊचाई, रग या बुद्धिकी मात्रा वगैरा एकसी नही हो सकती, इसलिए कुदरतकी रचना ही ऐसी है कि कुछ लोगोमे अधिक कमानेकी और दूसरोमे उनसे कम कमानेकी योग्यता होगी। बुद्धिशाली लोग अधिक कमायेगे और वे इस कामके लिए अपनी बुद्धिका उपयोग करेगे। यदि वे अपनी बुद्धिका उपयोग दयाभावसे करे, तो वे राज्यका ही काम करेगे। ऐसे लोग सरक्षक बनकर जीते है, और किसी तरह नही। मै बुद्धिशाली मनुष्यको अधिक कमाने दूगा और उसकी बुद्धिको कुठित नही करूगा। परन्तु जैसे पिताके तमाम कमाऊ बेटोकी कमाई परिवारके सम्मिलित कोषमे जाती है, ठीक वैसे ही उसकी अधिकाश कमाई राज्यकी भलाईमे काम आनी चाहिये।

यग इडिया, २६–११–'३१

आर्थिक समानताका सच्चा अर्थ है जगतके सब मनुष्योके पास एक समान सपत्तिका होना यानी सबके पास इतनी सपत्ति होना, जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताए पूरी कर सके। कुदरतने ही एक आदमीका हाजमा अगर नाजुक बनाया हो और वह केवल पाच ही तोला अन्न खा सके और दूसरेको बीस तोला अन्न खानेकी आवश्यकता हो, तो दोनोको अपनी-अपनी पाचन-शक्तिके अनुसार अन्न मिलना चाहिये। सारे समाजकी रचना इस आदर्शके आधार पर होनी चाहिये। अहिसक समाजको दूसरा आदर्श नही रखना चाहिये। पूर्ण आदर्श तक हम शायद नही पहुच सकते, मगर उसे नजरमे रखकर विधान बनाये और व्यवस्था करे। जिस हद तक इस आदर्शके पास हम पहुच सकेगे, उसी हद तक सुख

और सतोष प्राप्त करेगे और उसी हद तक सामाजिक अहिसा सिद्ध हुई कही जा सकेगी।

हरिजन, २५–८–'४०

६

आयकी समानता

अपनी बुद्धिको रुपये-आने-पाईमे बदलनेके बदले देशकी सेवामे लगाइये। यदि आप डॉक्टर है तो भारतमे इतनी बीमारिया है कि आपके सारे चिकित्सा-कौशलकी उसमे जरूरत है। अगर आप वकील है तो हिन्दुस्तानमे काफी मतभेद और झगडे-टटे है। अधिक झगडे खडे करनेके बजाय आप उन झगडोको निपटाइये और मुकदमेबाजी बन्द कीजिये। यदि आप इजीनियर है तो हमारे गरीब लोगोकी हैसियत और जरूरतके अनुसार और फिर भी स्वास्थ्यप्रद और शुद्ध हवावाले नमूनेदार मकान बनाइये। आपकी सीखी हुई कोई भी चीज ऐसी नही है, जिसका उपयोग न किया जा सके। (जिस भाईने गाधीजीसे यह प्रश्न पूछा था, वह एक चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट था। गाधीजीने आगे उससे कहा था) सब जगह काग्रेस और उससे सबधित सस्थाओके हिसाब जाचनेके लिए हिसाब-परीक्षकोकी सख्त जरूरत है। आप भारत आ जाइये — मै आपको काफी काम दूगा और ४ आने रोज पारिश्रमिक भी दूगा, जो भारतके लाखो लोगोकी आमदनीसे अवश्य ही बहुत ज्यादा है।

यग इडिया, ५–११–'३१

वकालतका पेशा करनेका यह मतलब नही होना चाहिये कि एक देहाती बढईकी मजदूरीसे ज्यादा पैसा लिया जाय।

हरिजन १३–७–'४०

मेरे स्वप्नोका स्वराज्य गरीब आदमीका स्वराज्य है। जीवनकी आवश्यक वस्तुए आपको भी वैसे ही उपलब्ध होनी चाहिये, जैसे राजाओ

और धनिकोको है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि आपके भी उनके जैसे महल हो। सुखके लिए महल जरूरी नही है। आप या मै तो उनमे खो ही जायेगे। परन्तु आपको जीवनकी वे तमाम साधारण सुविधाए मिलनी चाहिये जो अमीरोको प्राप्त है। मुझे जरा भी शक नही कि जब तक स्वराज्यमे आपके लिए ये सुख-सुविधाए निश्चित नही बनाई जाती, तब तक वह पूर्ण स्वराज्य नही है।*

यग इडिया, २६–३–'३१

एक प्रश्नके उत्तरमे गाधीजीने कहा कि अगर भारतको स्वाधीनताका ऐसा आदर्श जीवन व्यतीत करना है जिससे ससार ईर्ष्या करे, तो तमाम भगियो, डॉक्टरो, वकीलो, शिक्षको, व्यापारियो और दूसरे लोगोको दिन भरके प्रामाणिक कामकी एकसी मजदूरी मिलेगी। सभव है भारतीय समाजको यह ध्येय कभी प्राप्त न हो। परन्तु यदि भारतवर्षको सुखी देश बनना है, तो प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है कि वह इस लक्ष्यकी ओर बढनेका प्रयत्न करे।

हरिजन, १६–३–'४७

७

विकेन्द्रीकरण

मेरा कहना है कि भारतको अगर अहिंसक ढगसे अपना विकास करना है, तो उसे बहुतसी चीजोको विकेन्द्रित करना होगा। काफी सेना रखे बिना न तो एक जगह सारी सत्ता केन्द्रित की जा सकती, न उसकी रक्षा की जा सकती है। सीधे-सादे घरोमे ले जाने जैसी कोई चीज नही होती, इसलिए उनके लिए पुलिस रखनेकी जरूरत नही होती। अमीरोके महलोको डाकेसे बचानेके लिए मजबूत पहरोकी आवश्यकता होती है। इसी तरह बडे-बडे कारखानोको भी उनकी आवश्यकता होती है।

---

* अहमदाबादके मजदूर-सघमे दिये गये भाषणसे।


ग्रामीण ढंगसे संगठित भारतको शहरी रचनावाले तथा जल, स्थल और वायु-सेनासे सुसज्जित भारतकी अपेक्षा विदेशी आक्रमणका कम खतरा रहेगा।

हरिजन, ३०–१२–'३९

आप कारखानोकी सभ्यता पर अहिंसाका निर्माण नही कर सकते, लेकिन वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी ग्रामोके आधार पर निर्माण की जा सकती है। मेरी कल्पनाकी ग्रामीण अर्थ-रचना शोषणका सर्वथा त्याग करती है और शोषण हिंसाका सार है। इसलिए अहिंसक होनेके पहले आपको ग्रामीण मानसवाले बनना होगा, और ग्रामीण मानसवाले बननेके लिए आपको चरखेमे श्रद्धा रखनी होगी।

हरिजन, ४–११–'३९

साधना इस लक्ष्यकी होनी चाहिये कि मानव सुखी हो और उसके साथ-साथ उसका पूरा मानसिक और नैतिक विकास हो। नैतिक विशेषणका प्रयोग मैं आध्यात्मिकके अर्थमे कर रहा हू। यह ध्येय विकेन्द्रीकरणमे प्राप्त हो सकता है। केन्द्रीकरणका पद्धतिके रूपमे समाजकी अहिंसक रचनाके साथ मेल नही बैठता।

हरिजन, १८–१–'४२

८

अहिंसक धंधे

सच पूछा जाय तो कोई प्रवृत्ति और कोई भी उद्योग, चाहे कितना ही छोटा हो, थोडी-बहुत हिंसाके बिना संभव नही। कुछ न कुछ हिंसाके बिना जिन्दा रहना भी असंभव है। हमे करना यही है कि हम उसे यथासंभव ज्यादासे ज्यादा घटाये। वास्तवमे अहिंसा शब्दका, जो नकारात्मक है, अर्थ ही यह है कि जीवनमे जो हिंसा अनिवार्य है उसे छोड देनेका वह प्रयत्न है। इसलिए जो कोई अहिंसामे विश्वास रखता है, वह ऐसे धंधोमे लगेगा जिनमे कमसे कम हिंसा हो। इस

प्रकार, उदाहरणके लिए, यह कल्पना नही की जा सकती कि अहिसामे विश्वास रखनेवाला कोई आदमी कसाईका धधा करेगा। यह बात नही है कि मासाहारी अहिसक नही हो सकता। परतु अहिसामे विश्वास रखनेवाला मासाहारी भी शिकार नही करेगा और न वह युद्ध या युद्धकी तैयारिया करेगा। इस प्रकार अनेक प्रवृत्तिया और धधे ऐसे है, जिनमे हिसा अवश्य होती है और जिनसे अहिसक मनुष्यको बचना चाहिये। परन्तु खेती ऐसी है जिसके बिना जीवन असभव है, और उसमे कुछ न कुछ हिसा होती ही है। इसलिए निर्णायक तत्त्व यह है क्या धधेकी बुनियाद हिसा पर है? परन्तु चूकि प्रवृत्तिमात्रमे कुछ न कुछ हिसा होती ही है, इसलिए हमारा काम इतना ही है कि उसमे होनेवाली हिसाको हम कमसे कम करनेका प्रयत्न करे। अहिसामे हार्दिक विश्वास हुए बिना यह सभव नही। मान लीजिये एक ऐसा मनुष्य है जो प्रत्यक्ष हिसा नही करता, और अपनी रोजीके लिए श्रम करता है, परन्तु दूसरोके धन या वैभव पर सदा ईर्ष्यासे जलता रहता है। वह अहिसक नही हे। इस प्रकार अहिसक धधा वह धधा है, जो बुनियादी तौर पर हिसासे मुक्त हो और जिसमे दूसरोका शोपण या ईर्ष्या नही हो।

मेरे पास इसका ऐतिहासिक सबूत तो नही है, परन्तु मेरा विश्वास है कि भारतवर्षमे एक समय ऐसा था, जब ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाका सगठन इस तरहके अहिसक धधोके आधार पर, मनुष्यके अधिकारोके आधार पर नही परन्तु मनुष्यके कर्तव्योके आधार पर होता था। जो इन धधोमे लगते थे वे अपनी रोजी बेशक कमाते थे, परन्तु उनके श्रमसे समाजकी भलाई होती थी। उदाहरणार्थ, एक बढई गावके किसानकी जरूरते पूरी करता था। उसे कोई नकद मजदूरी नही मिलती थी, परन्तु गाववाले उसे अपनी पैदावारमे से हिस्सा देते थे। इस व्यवस्थामे भी अन्याय हो सकता है, परन्तु वह अत्यत कम किया जा सकता है। मै साठ वर्षसे भी पहलेके काठियावाडी जीवनकी निजी जानकारीसे कह रहा हू। उस समय लोगोकी आखोमे आजकी अपेक्षा अधिक तेज था, उनके हाथ-पैर आजसे ज्यादा मजबूत थे। उस जीवनका आधार अहिसा थी, हालाकि इसका लोगोको भान नही था।

शरीर-श्रम इन धधो और उद्योगोकी जान था और बडे पैमाने पर कोई कल-कारखाने नही थे। कारण, जब मनुष्य उतनी ही जमीन रखकर सतोष मान लेता है जिसे वह खुद मेहनत करके जोत सकता है, तब वह दूसरोका शोषण नही कर सकता। दस्तकारियोमे शोषण और गुलामीकी गुजाइश नही होती। बडे पैमाने पर चलनेवाले कारखाने एक आदमीके हाथोमे धन इकटठा कर देते है और वह बाकी लोगो पर, जो उसके लिए गुलामो जैसे काम करते है, प्रभुत्व जमा लेता है। सभव है वह अपने मजदूरोके लिए आदर्श स्थिति उत्पन्न करनेका प्रयन्न कर रहा हो, परन्तु फिर भी वह शोपण ही है, और शोषण हिसाका एक रूप है।

हरिजन, १–९–'४०

९

प्राचीन भारतमे सर्वोदय

सदाचारका पालन करनेका अर्थ है अपने मन और विकारो पर प्रभुत्व पाना। हम देखते है कि मन एक चचल पक्षी है। उसे जितना मिलता है उतनी ही उसकी भूख बढती है और फिर भी उसे सतोष नही होता। हम अपने विकारोका जितना पोषण करते है, उतने ही निरकुश वे बनते है। इसलिए हमारे पूर्वजोने हमारे भोगकी मर्यादा बना दी थी। उन्होने देखा कि सुख बहुत हद तक मानसिक स्थिति है। यह जरूरी नही कि कोई मनुष्य धनवान होनेके कारण सुखी हो और निर्धन होनेके कारण दु खी हो। धनवान अकसर दु खी और गरीब अकसर सुखी पाये जाते है। करोडो लोग सदा निर्धन ही रहेगे। यह सब देखकर हमारे पुरखोने हमे भोग-विलाससे और ऐश-आरामसे दूर रहनेका उपदेश दिया। हमने हजारो वर्ष पहलेके हलसे ही काम चलाया है। हमारी झोपडिया अब भी उसी किस्मकी है जैसी पुराने जमानेमे थी, और हमारी देशी शिक्षा अब भी वैसी ही है जैसी पहले थी। हमारे यहा जीवन-नाशक

स्पर्धाकी प्रणाली नही रही। हरएक अपना-अपना धधा या व्यवसाय करता था और नियमित मजदूरी लेता था। यह बात नही कि हमे यत्रोका आविष्कार करना नही आता था। परन्तु हमारे बापदादा जानते थे कि अगर हमने इन चीजोमे अपना दिल लगाया, तो हम गुलाम बन जायेगे और अपनी नैतिक शक्ति खो बैठेगे। इसलिए उन्होने काफी विचार करनेके बाद निश्चय किया कि हमे केवल वही करना चाहिये जो हम अपने हाथ-पैरोसे कर सकते है। उन्होने देखा कि हमारा सच्चा सुख और स्वास्थ्य अपने हाथ-पैरोको ठीक तरह काममे लेनेमे है। उन्होने यह भी कहा कि बडे-बडे शहर एक फदा और व्यर्थका भार है और लोग उनमे सुखी नही रहेगे, वहा चोर-डाकुओकी टोलिया लोगोको सतायेगी, व्यभिचार व बदीका बाजार गर्म रहेगा और गरीब लोग अमीरो द्वारा लूटे जायेगे। इसलिए वे छोटे-छोटे गावोमे सतुष्ट थे। उन्होने देखा कि राजा और उनकी तलवारे नीतिकी तलवारसे घटिया है और इसलिए वे पृथ्वीके सम्राटोको ऋषियो और फकीरोसे नीचा मानते थे। इस प्रकारके विधानवाला राष्ट्र दूसरोसे सीखनेके बजाय उन्हे सिखानेके लिए अधिक योग्य है। इस राष्ट्रके पास अदालते, वकील और डॉक्टर थे, परन्तु वे सब मर्यादाओके भीतर रहते थे। हरएक जानता था कि ये पेशे खास तौर पर श्रेष्ठ नही है, साथ ही, वे वकील और वैद्य लोगोको लूटते नही थे। वे लोगोके आश्रित माने जाते थे न कि उनके मालिक। न्याय काफी निष्पक्ष था। साधारण नियम तो अदालतोसे दूर ही रहनेका था। लोगोको फुसलाकर अदालतोमे ले जानेवाले कोई दलाल नही थे। यह बुराई भी राजधानियोके भीतर और उनके आसपास ही दिखाई देती थी। साधारण लोग स्वतत्र जीवन व्यतीत करते और अपना खेतीका धधा करते थे। वे सच्चे स्वराज्यका उपभोग करते थे।

हिन्द स्वराज्य, १९०९, अध्याय १३

ख— उद्योगवाद

१

उद्योगवाद : एक अभिशाप

मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव-जातिके लिए अभिशाप बन जानेवाला है। उद्योगवाद सर्वथा इस बात पर निर्भर है कि आपमे शोषण करनेकी कितनी शक्ति है, विदेशी मडिया आपके लिए कहा तक खुली है और प्रतिस्पर्धियोका कितना अभाव है। चूकि इग्लैडके लिए ये बाते दिनोदिन कम हो रही है, इसलिए उसके यहा बेकारोकी सख्या रोज बढ रही है। भारतीय बहिष्कार तो केवल मामूली-सी बात है। और जब इग्लैण्डकी यह हालत है तो भारत जैसे विशाल देशको तो उद्योगीकरणसे लाभ होनेकी आशा ही नही की जा सकती। सच तो यह है कि भारत जब दूसरे राष्ट्रोका शोषण करने लगेगा — और उसके यहा उद्योगीकरण हो गया तो वह जरूर शोषण करेगा — तब वह अन्य राष्ट्रोके लिए शाप और ससारके लिए खतरा बन जायगा। तब दूसरे राष्ट्रोका शोषण करनेके लिए भारतमे कल-कारखाने बढानेका मै क्यो विचार करू? क्या आप यह करुण स्थिति नही देख रहे कि हम अपने ३० करोड बेकारोके लिए काम जुटा सकते है, परन्तु इग्लैण्ड अपने ३० लाखके लिए कोई काम मुहैया नही कर सकता, और उसके सामने ऐसी समस्या खडी है, जिसके आगे इग्लैण्डके बडेसे बडे बुद्धिमान चक्कर खा रहे है? उद्योग-वादका भविष्य अधकारमय है। अमरीका, जापान, फ्रास और जर्मनी इग्लैण्डके सफल प्रतिस्पर्धी है। भारतकी मुट्ठीभर मिले भी उसकी प्रति-द्वद्वी है। और जैसे भारतमे जागृति हो गई है, वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामे भी जागृति होगी। और वहा तो प्राकृतिक, खनिज और मानवीय साधन भी कही अधिक विपुल है। अफ्रीकाकी बलवान जातियोके सामने जबरदस्त

अग्रेज बिलकुल पिद्दी दिखाई देते है। आप कहेगे कि अन्तमे तो वे भले जगली ही है। वे भले जरूर है परन्तु जगली नही, और शायद कुछ ही सालमे पश्चिमी राष्ट्रोको अफ्रीकामे अपने मालका सस्ता बाजार मिलना बन्द हो सकता है। और यदि उद्योगवादका भविष्य पश्चिमके लिए अधकारमय है, तो क्या भारतके लिए वह और भी अधकारमय नही होगा ?

यग इडिया, १२–११–'३१

वर्तमान कष्ट नि सन्देह असहनीय है। दरिद्रताका नाश होना ही चाहिये। परन्तु उद्योगवाद इसका सही इलाज नही है।

यग इडिया, ७–१०–'२६

२

मशीनें

मशीनोका अपना स्थान है, अपनी उन्होने जड जमा ली है। परन्तु उन्हे जरूरी मानव-श्रमका स्थान नही लेने देना चाहिये। सुधरा हुआ हल अच्छी चीज है। परन्तु यदि सयोगसे कोई एक आदमी अपने किसी यात्रिक आविष्कार द्वारा भारतकी सारी भूमि जोत सके और खेतीकी तमाम पैदावार पर नियत्रण कर ले और यदि करोडो लोगोके पास कोई और धधा न हो, तो वे भूखो मरेंगे और निकम्मे हो जानेके कारण जड बन जायेगे, जैसे कि आज भी बहुत लोग बन गये है। हर क्षण यह डर रहता है कि और भी अनेक लोगोकी वैसी ही दुर्दशा हो जायगी।

मै गृह-उद्योगोकी मशीनोमे हर प्रकारके सुधारका स्वागत करूगा। परन्तु मै जानता हू कि विद्युत-शक्तिसे चलनेवाले तकुए जारी करके हाथसे कातनेवाले लोगोको हटा देना जुर्म है, यदि इसके साथ करोडो किसानोको उनके घरोमे कोई धधा मुहैया करनेकी हमारी तैयारी न हो।

यग इडिया, ५–११–'२५

यन्त्रोका वही उपयोग उचित है, जो सबकी भलाईके लिए हो।

यग इडिया, १५–४–'२६

मै अधिकसे अधिक विकसित यन्त्रोके उपयोगका भी समर्थन करूगा यदि उससे भारतकी दरिद्रता और उससे पैदा होनेवाला आलस्य मिट सके। मैंने सुझाया है कि हाथ-कताई ही दरिद्रताको भगानेका तथा काम और धनके अभावको असभव बनानेका एकमात्र सुलभ उपाय है। चरखा स्वय एक कीमती मशीन है और मैंने अपने नम्र ढगसे भारतकी विशेष परि-स्थितिके अनुसार उसमें सुधार करनेका प्रयत्न किया है।

यग इडिया, ३–११–'२१

'क्या आप यन्त्रमात्रके विरुद्ध है?'

मेरा जोरदार उत्तर 'नही' है। परन्तु मै उनकी विवेकहीन वृद्धिके खिलाफ हू। मै यन्त्रोकी ऊपरी विजयसे प्रभावित होनेसे इनकार करता हू। मै तमाम नाशकारी यन्त्रोका कट्टर विरोधी हू। परतु सीधे-सादे औजारो और ऐसे यन्त्रोका, जिनसे व्यक्तियोका परिश्रम बचता हो और लाखो झोपडियोका भार हलका होता हो, मै स्वागत करूगा।

यग इडिया, १७–६–'२६

मुझे आपत्ति स्वय मशीनो पर नही, बल्कि उनके लिए पागल बनने पर है। यह पागलपन श्रम बचानेवाले यन्त्रोके लिए है। लोग श्रम बचानेमे लगे रहते है, यहा तक कि हजारो लोगोको बेकार करके भूखसे मरनेके लिए छोड दिया जाता है। मै भी समय और श्रम बचाना चाहता हू, मगर मानव-समाजके एक अशके लिए नही, बल्कि सबके लिए। मै भी धन इकट्ठा करना चाहता हू, मगर थोडेसे आदमियोके हाथोमे नही, बल्कि सबके हाथोमे। आज तो मशीने मुट्ठीभर लोगोको करोडोकी पीठ पर सवार होनेमें ही मदद करती है। इस सबके पीछे प्रेरक शक्ति श्रम बचानेकी उदात्त भावना नही, बल्कि लोभ है। मै इसी प्रकारकी व्यवस्थाके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगाकर लड रहा हू।

'तो आप यन्त्रोके विरुद्ध नही लड रहे है, परन्तु उनकी जो बुराइया आज इतनी अधिक प्रकट हो रही है, उनके विरुद्ध लड रहे है?'

मै नि सकोच कहूगा कि 'हा', परन्तु मै इतना और कहूगा कि सबसे पहले वैज्ञानिक सत्यो और आविष्कारोको निरे लोभके साधन नही रहना चाहिये। तब मजदूरोको हदसे ज्यादा काम नही करना पडेगा और मशीने बाधक बननेके बजाय सहायक होगी। मेरा उद्देश्य यत्रोका सर्वथा नाश नही, परन्तु उनकी सीमा बाधना है।

'क्या इस विषयके अन्त तक जाने पर यह न कहना पडेगा कि बिजलीसे चलनेवाले सारे पेचीदा यत्र खतम हो जाने चाहिये?'

यह सभव है। मगर मै एक बात साफ कर देता हू। मुख्य विचार मनुष्यका है। हमे यह देखना होगा कि मशीन मनुष्यको बिलकुल पगु न बना दे। उदाहरणार्थ, मै समझदारीके साथ कुछ अपवाद रखूगा। सिगरकी सीनेकी मशीनको ही लीजिये। जो थोडीसी उपयोगी चीजे आविष्कृत हुई है, उनमे से एक यह भी है और उसकी योजनाके बारेमे एक प्रेमकथा है। सिगरने अपनी पत्नीको हाथोसे सीने और बखिया लगानेकी नीरस क्रिया पर परिश्रम करते देखा और केवल उसके प्रति अपने प्रेमके कारण सीनेकी मशीनका आविष्कार किया, ताकि वह अनावश्यक परिश्रमसे बच जाय। परन्तु उसने न केवल उसीका परिश्रम बचाया, बल्कि ऐसे प्रत्येक व्यक्तिका परिश्रम बचा दिया जो सीनेकी मशीन खरीद सकता है।

'परतु उस हालतमे इन सिगर मशीनोको बनानेके लिए कारखाना खडा करना होगा। और उसमे साधारण ढगकी बिजलीसे चलनेवाली मशीनरी रखनी होगी।'

हा, परन्तु मै यह कहने जितना समाजवादी जरूर हू कि ऐसे कारखाने राष्ट्रकी सपत्ति या राज्यके नियत्रणमे होने चाहिये। उनका काम अत्यन्त आकर्षक और आदर्श परिस्थितियोमे होना चाहिये। वह मुनाफेके लिए नही, परन्तु मानव-जातिके फायदेके लिए होना चाहिये और उसका हेतु लोभके स्थान पर प्रेम होना चाहिये। मै केवल मजदूरोकी काम करनेकी हालतोमे तबदीली चाहता हू। यह धनकी पागल दौडधूप बन्द होनी चाहिये और मजदूरको न सिर्फ जीवन-वेतनका ही, बल्कि ऐसे दैनिक कामका भी, जो केवल नीरस बेगार न हो, आश्वासन मिलना

चाहिये। ऐसी परिस्थितिमे यत्र उस पर काम करनेवाले मनुष्यके लिए उतना ही सहायक होगा, जितना राज्यके लिए और अपने मालिकके लिए होगा। वर्तमान पागल दौडधूप बन्द हो जायगी और, जैसा मैंने कहा है, मजदूर आकर्षक और आदर्श स्थितियोमे काम करेगा। मेरे ध्यानमे जो अपवाद है, उनमे से यह केवल एक है। सीनेकी मशीनके पीछे प्रेम था। व्यक्तिका खयाल सबसे ज्यादा रखा जाना चाहिये। व्यक्तिके परिश्रमकी बचत मशीनका लक्ष्य होना चाहिये और प्रामाणिक मानव-कल्याणका विचार, न कि लोभ, उसका हेतु होना चाहिये। लोभके स्थान पर प्रेमको विठा दीजिये, फिर सब ठीक हो जायगा।

यग इडिया, १३–११–'२४

'मै समझा, आप इस यत्रयुगके विरुद्ध है।'

यह कहना मेरे विचारोको तोड-मरोडकर रखना है। मै यत्रमात्रके विरुद्ध नही हू, परन्तु जो यत्र हमारा स्वामी बन जाय, उसका मैं सख्त विरोधी हू।

'आप भारतमे उद्योगीकरण नही करेगे ?'

मै अपने अर्थमे करूगा। ग्राम-समाजोको पुनर्जीवित करना चाहिये। भारतके देहात भारतीय शहरो और कस्बोको उनकी जरूरतकी तमाम चीजे पैदा करके देते थे। हमारे शहर जब विदेशी मडिया बन गये और विदेशोसे ला-लाकर सस्ता और भद्दा माल यहा भरकर देहातका धन चूसने लगे, तब भारत निर्धन हो गया।

'तो आप फिरसे प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था कायम करना चाहेगे ?'

हा। परन्तु मैं देहातका उद्योगीकरण दूसरे ही ढगसे कर रहा हू।

हरिजन, २७–२–'३७

यह दावा किया जा सकता है कि देशका महान मिल-उद्योग एक भारतीय उद्योग है। परन्तु जापान और लकाशायरका मुकाबला कर सकनेके बावजूद वह एक ऐसा उद्योग है, जो आम लोगोका ठीक उतनी ही मात्रामे शोषण करता है और उनकी दरिद्रताको बढाता है,

जितना वह खादी पर विजयी होता है। सपूर्ण उद्योगीकरणके आधुनिक पागलपनमे मेरे दृष्टिकोणकी उपेक्षा नही तो उस पर आपत्ति जरूर की जाती है। यह दलील दी जाती है कि उद्योगीकरणकी प्रकृतिके कारण जनसाधारणकी दरिद्रता बढना अनिवार्य है और इसलिए उसे सहन कर लेना चाहिये। मै इस बुराईको अनिवार्य नही समझता, उसे सहन करनेकी तो बात ही क्या? चरखा-सघने सफलतापूर्वक दिखा दिया है कि देहातोमे भारतकी सारी जरूरतका कपडा तैयार किया जा सकता है और इसके लिए केवल राष्ट्रका अवकाशका ही समय कताई और उसके बादकी क्रियाओमे लगाना पडेगा।

हरिजन, २३–१०–'३७

मै खुद तो बडी बडी कपनियोके और लम्बी-चौडी मशीनरीके जरिये उद्योगोके केन्द्रीकरणके विरुद्ध हू। यदि भारत खद्दर और उसके सारे अर्थोको अपना ले, तो मै यह आशा नही छोडूगा कि भारत केवल उतने ही आधुनिक यत्रोको दाखिल करेगा, जो जीवनकी सुख-सुविधाओके लिए और श्रम बचानेके लिए जरूरी समझे जायेगे।

यग इडिया, २४–७–'२४

देहातोका पुनरुद्धार तभी सभव है जब उनका आगे शोषण न किया जाय। बडे पैमाने पर उद्योगीकरणका आवश्यक परिणाम देहातियोका निष्क्रिय अथवा सक्रिय शोषण होगा, क्योकि उससे होड और बाजार तलाश करनेकी समस्याए बीचमे खडी होगी। इसलिए हमे इस बात पर सारी शक्ति केन्द्रित करनी होगी कि गाव स्वाश्रयी बने और माल मुख्यत अपने उपयोगके लिए ही तैयार करे। अगर ग्रामोद्योगका यह स्वरूप कायम रखा जाय, तो ग्रामीणोके ऐसे आधुनिक यत्रो और औजारोको काममे लेनेके बारेमे मेरा कोई एतराज न होगा, जिन्हे वे बना सकते है और जिनका उपयोग करनेकी उनकी शक्ति हो। शर्त इतनी ही है कि वे दूसरोके शोषणका साधन न बनाये जाय।

हरिजन, २९–८–'३६

मै साफ शब्दोमे अपना यह विश्वास जाहिर कर देना चाहता हू कि बडे पैमाने पर माल तैयार करनेका पागलपन ही आजके विश्व-सकटके लिए जिम्मेदार है। क्षणभरके लिए मान लीजिये कि यत्रोसे मानव-जातिकी सारी जरूरते पूरी हो सकती है, फिर भी उनके कारण विशेष प्रदेशोमे उत्पादन केन्द्रित हो जायगा। और फिर आपको वितरणका नियमन करनेके लिए द्राविडी प्राणायाम करना होगा। इसके विपरीत, यदि उत्पादन और वितरण दोनो उन्ही क्षेत्रोमे हो जहा उन चीजोकी जरूरत है, तो नियमन अपने-आप हो जाता है, उसमें धोखेबाजीको कम मौका मिलता है, और सट्टेको तो बिलकुल नही मिलता।

आप देखते है कि ये राष्ट्र (यूरोप और अमरीका) ससारकी तथाकथित कमजोर या असगठित जातियोका शोषण करनेमे समर्थ है। एक बार इन जातियोको प्रारभिक ज्ञान हो गया और उन्होने यह निश्चय कर लिया कि अब हम अपना शोषण नही होने देगे, तो वे जो कुछ स्वय जुटा सकेगी उसीसे सतुष्ट रहेगी। तब कमसे कम जहा तक जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओका सबध है, थोक उत्पादन खतम हो जायगा।

जब उत्पादन और खपत दोनो स्थानीय बन जाते है, तब अनिश्चित मात्रामे और किसी भी मूल्य पर उत्पादनकी गति बढाना बन्द हो जाता है। तब हमारी वर्तमान आर्थिक व्यवस्थासे उपस्थित होनेवाली तमाम बेशुमार कठिनाइया और समस्याए खतम हो जायगी।

थोडेसे लोगोकी जेबोमे पूजी इकट्ठी नही होने पायेगी और न शेष लोगोके लिए विपुलताके बीच अभाव रह पायेगा।

'तो आप भविष्यके आदर्श भारतमे थोक उत्पादनकी कल्पना नही करते?'

थोक उत्पादनकी कल्पना मै जरूर करता हू, मगर उसका आधार बल नही होगा। आखिर चरखेका सदेश तो यही है। वह थोक उत्पादन ही है, परन्तु लोगोके अपने घरोमे है। यदि आप व्यक्तिगत उत्पादनको लाखो गुना बढा दे, तो क्या वह विशाल पैमाने पर थोक उत्पादन नही हो जायगा? परतु मै अच्छी तरह समझता हू कि आपका

'थोक उत्पादन' एक पारिभाषिक शब्द है, जिसके अनुसार कमसे कम सख्यामे मनुष्य अत्यत पेचीदा यत्रोकी सहायतासे उत्पादन करते है। मै मानता हू कि यह गलत है। मेरे यत्र अत्यत प्रारभिक ढगके ही होगे, जो लाखो घरोमे रखे जा सकेंगे।

'तो आप यत्रोके विरुद्ध इसीलिए और तभी हैं, जब वे मुट्ठीभर लोगोके हाथोमे उत्पादन और वितरणका काम केन्द्रित कर देते है?'

आप ठीक कहते है। मुझे विशेषाधिकार और एकाधिकारसे घृणा है। मेरे लिए वह चीज निषिद्ध है, जिसमे सबका हिस्सा न हो। यही मेरी बातका सार है।

हरिजन, २-११-'३४

ग — पूजी और श्रम

१

पंजी और श्रम

हम यह मानने लगे है कि पृथ्वी पर पूजी ही सब-कुछ है। परन्तु क्षणभरके विचारसे प्रगट हो जायेगा कि श्रमके पास वह पूजी है, जो पूजीपतिके पास कभी नही हो सकती। रस्किनने अपने जमानेमे यह शिक्षा दी कि श्रमके लिए अद्वितीय अवसर होते है। परन्तु उसकी बात किसीकी समझमे नही आई। इस समय सर डेनियल हेमिल्टन नामक एक अंग्रेज है, जो वास्तवमे यह प्रयोग कर रहा है। वह अर्थशास्त्री है और पूजीपति भी है, परन्तु अपनी आर्थिक खोजो और प्रयोगो द्वारा वह उन्ही परिणामों पर पहुचा है, जिन पर रस्किन अन्त प्रेरणासे पहुचा है। और वह श्रमके लिए एक अत्यत महत्त्वपूर्ण सदेश लाया है। वह कहता है कि यह खयाल करना गलत है कि धातुका टुकडा पूजी है। वह कहता है कि यह सोचना भी गलत है कि उत्पादनकी अमुक मात्रा पूजी

है, परन्तु वह यह भी कहता है कि यदि जडमे पहुचे तो श्रम ही पूजी है, और वह जीवित पूजी अखूट है।

इडियाज़ केस फॉर स्वराज, १९३२, पृ० ३९३

मै पूजी और श्रम आदिके बीच सही सबधोकी स्थापनाके पक्षमे हू। मै किसी एकका दूसरे पर प्रभुत्व नही चाहता। मै नही मानता कि दोनोमे कोई जन्मजात वैर है।

यग इडिया, ८–१–'२५

अगर पूजी ताकत है, तो श्रम भी ताकत है। दोनो ही ताकतोका विनाश या निर्माणके लिए उपयोग किया जा सकता है। दोनो एक-दूसरे पर निर्भर है। ज्यो ही मजदूर अपने बलको अनुभव कर लेता है, उसकी स्थिति पूजीपतिका गुलाम रहनेके बजाय उसका साझीदार बन जानेकी हो जाती हे। अगर उसका उद्देश्य अकेले ही उद्योगका मालिक बन जानेका हो, तो वह बहुत करके सोनेका अडा देनेवाली मुर्गीको मार डालनेका काम करेगा।

यग इडिया, २६–३–'३१

२

कोई नैतिक अधिकार नहीं

प्र० — मनुष्य भौतिक धन इकट्ठा करे या नैतिक, वह समाजके दूसरे सदस्योकी सहायता या सहयोगसे ही ऐसा करता है। तब क्या उसे यह नैतिक अधिकार है कि वह उसका कोई हिस्सा मुख्यत॰ व्यक्तिगत लाभके लिए काममे ले?

उ० — नही, उसे कोई नैतिक अधिकार नही।

हरिजन, १६–२–'४७

३

ट्रस्टीशिप

प्र० — आपने धनवानोसे सरक्षक (ट्रस्टी) बननेको कहा है। क्या इसका यह अर्थ है कि वे अपनी सम्पत्तिका व्यक्तिगत स्वामित्व छोडकर उसका ऐसा ट्रस्ट बना दे, जो कानूनकी नजरमे जायज हो और लोकतात्रिक ढगसे सचालित हो? वर्तमान ट्रस्टीके मरने पर उसका उत्तराधिकारी कैसे निश्चित किया जायगा?

उ० — बरसो पहले मेरा जो विश्वास था वही आज भी है कि सब-कुछ ईश्वरका है, उसीने उसे बनाया है। इसलिए वह उसकी सारी प्रजाके लिए है, किसी खास व्यक्तिके लिए नही। जब किसीके पास अपने उचित हिस्सेसे ज्यादा हो, तो वह ईश्वरकी प्रजाके लिए उस हिस्सेका सरक्षक बन जाता है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान है, इसलिए उसे सग्रह करके रखनेकी आवश्यकता नही। वह रोज पैदा करता है। इसलिए मनुष्यका भी सिद्धान्त होना चाहिये कि वह उतना ही अपने पास रखे, जिससे आजका काम चल जाय, कलके लिए वह चीजे जमा करके न रखे। अगर आम तौर पर लोग इस सत्यको जीवनमे उतार ले, तो वह कानून-सम्मत बन जायगा और सरक्षकता एक वैध सस्था हो जायगी। मै चाहता हू कि यह भारतकी ससारको एक देन बन जाय। फिर न तो कोई शोषण रहेगा और न आस्ट्रेलिया और दूसरे मुल्कोमे गोरो और उनकी सतानोके लिए कोई सुरक्षित स्थान और जमीन-जायदादका सवाल रहेगा। इन भेदभावोंमे पिछले दो महायुद्धोसे भी अधिक जहरीली लडाईके बीज है। रही बात उत्तराधिकारीकी, सो पदासीन ट्रस्टीको कानूनके मातहत अपना उत्तराधिकारी चुननेका अधिकार होगा।

हरिजन, २३–२–'४७

मेरा सरक्षकताका सिद्धान्त कोई क्षणिक वस्तु नही है, धोखाधडी तो हरगिज नही है। मुझे भरोसा है कि वह और सब सिद्धान्तोके बाद भी जिन्दा रहेगा। इसके पीछे दर्शन और धर्मका बल है। धनवानोने इस सिद्धान्त पर अमल नही किया है, इसमे यह सिद्धान्त झूठा साबित नही हो जाता, इसमे धनवानोकी कमजोरी साबित होती है। अहिसाके साथ और किसी सिद्धान्तका मेल नही बैठता।

हरिजन, १६–१२–’३९

प्र० — किसी सरक्षकका उत्तराधिकारी कैसे तय किया जायगा? क्या उमे केवल नाम प्रस्तावित करनेका अधिकार होगा और अतिम निर्णयका अधिकार राज्यको रहेगा?

उ० — जैसा कि मैने कल कहा था, उत्तराधिकारीका चुनाव उस मूल मालिकके हाथमे रहना चाहिये, जो पहले-पहल सरक्षक (ट्रस्टी) बना। परन्तु अतिम चुनाव राज्य द्वारा किया जाना चाहिये। इस व्यवस्थासे राज्य और व्यक्ति दोनो पर अकुश रहता है।

प्र० — जब सरक्षकताके सिद्धान्तके अमलमे आनेसे व्यक्तिगत सपत्ति सार्वजनिक सपत्ति बन जाती है, तब स्वामित्व राज्यका होगा — जो हिसाका एक साधन है — या ग्राम-पचायतो और नगरपालिकाओ जैसी स्वेच्छासे खडी की गई सस्थाओका होगा, जिन्हे अतिम सत्ता राज्य-निर्मित कानूनोसे प्राप्त होती है?

उ० — इस प्रश्नमे विचारकी कुछ गडबड है। बदली हुई सामाजिक स्थितिमे कानूनी स्वामित्व ट्रस्टीके पास होगा, न कि राज्यके पास। राज्य सपत्तिको जब्त न करे और समाजकी सेवाके लिए पूजी या जायदादके मूल स्वामीकी योग्यता हककी रूमे समाजके हितार्थ काममे आवे, इसलिए ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त काममे लाया जाता है।

मेरी यह राय भी नही है कि राज्यका आधार सदा हिसा पर ही होना चाहिये। सिद्धान्त रूपसे ऐसा भले ही हो, मगर व्यवहारमे इस सिद्धान्तका तकाजा है कि राज्यकी बुनियाद अधिकतर अहिसा पर हो।

हरिजन, १६–२–’४७

४

गांधीजीका ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त

जेलसे छूटने पर हम लोगोने इस प्रश्नको आगाखा महलकी नजरबन्द-छावनीमे जहा छोडा था वहासे फिर हाथमे लिया। किशोरलालभाई और नरहरिभाई भी सरक्षकताका एक सीधा-सादा और व्यावहारिक फार्मूला तैयार करनेमे शरीक हो गये। वह बापूके सामने रखा गया। उन्होने उसमे थोडेसे फेरबदल किये। अन्तिम मसौदा इस प्रकार है

१ सरक्षकता (ट्रस्टीशिप) ऐसा साधन प्रदान करती है, जिससे समाजकी मौजूदा पूजीवादी व्यवस्था समतावादी व्यवस्थामे बदल जाती है। इसमे पूजीवादकी तो गुजाइश नही है, मगर यह वर्तमान पूजीपति-वर्गको अपना सुधार करनेका मौका देती है। इसका आधार यह श्रद्धा है कि मानव-स्वभाव ऐसा नही है, जिसका कभी उद्धार न हो सके।

२ वह सपत्तिके व्यक्तिगत स्वामित्वका कोई हक मजूर नही करती, हा, उसमे समाज स्वय अपनी भलाईके लिए किसी हद तक इसकी इजाजत दे सकता है।

३ उसमे धनके स्वामित्व और उपयोगके कानूनी नियमनकी मनाही नही है।

४ इस प्रकार राज्य द्वारा नियत्रित सरक्षकतामे कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए या समाजके हितके विरुद्ध सपत्ति पर अधिकार रखने या उसका उपयोग करनेके लिए स्वतत्र नही होगा।

५ जैसे उचित न्यूनतम जीवन-वेतन स्थिर करनेकी बात कही गई है, ठीक उसी तरह यह भी तय कर दिया जाना चाहिये कि समाजमे किसी भी व्यक्तिकी ज्यादासे ज्यादा कितनी आमदनी हो। न्यूनतम और अधिकतम आमदनियोके बीचका फर्क

उचित, न्यायपूर्ण और समय समय पर इस प्रकार बदलता रहने-वाला होना चाहिये कि उसका झुकाव उस फर्कको मिटानेकी तरफ हो।

६ गाधीवादी अर्थ-व्यवस्थामे उत्पादनका स्वरूप समाजकी जरूरतसे निश्चित होगा, न कि व्यक्तिकी सनक या लालचसे।

हरिजन, २५–१०–'५२ प्यारेलाल

घ — जमींदार और किसान

१

एक आदर्श जमींदार

एक आदर्श जमीदार रैयत जो भार सह रही है उसमे से बहुतसा तुरन्त घटा देगा। वह किसानोके गाढ सपर्कमे आकर उनकी जरूरते जान लेगा और जो निराशा आज उनकी जीवन-शक्तिको नष्ट कर रही है, उसके स्थान पर उनमे आशाका सचार करेगा। उसे किसानोके सफाई और तदुरस्ती सबधी नियमोके अज्ञानसे सतोष नही होगा। वह इस गरजसे कि किसानोके जीवनकी आवश्यकताए पूरी हो, अपने आपको दरिद्र बना लेगा। वह अपनी देखभालमे रहनेवाले किसानोकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन करेगा और ऐसी पाठशालाए कायम करेगा, जिनमे किसानोके बच्चोके साथ साथ वह अपने बच्चोको भी शिक्षा दिलायेगा। वह गावके कुए और तालाबकी सफाई करेगा। वह स्वय आवश्यक श्रम करके किसानोको अपनी सडके बुहारना और टट्टिया साफ करना सिखायेगा। वह अपने बाग-बगीचे किसानोके इस्तेमालके लिए नि सकोच होकर खोल देगा। वह जिन आवश्यक मकानोको अपने सुखके लिए रखता है, उनमे से ज्यादातरका उपयोग अस्पताल और पाठशाला आदिके लिए करेगा। अगर पूजीपति-वर्ग समयकी गतिको पहचान ले और अपनी

सारी सपत्तिके ईश्वर-प्रदत्त अधिकारके बारेमे अपने विचार बदल ले, तो आनन-फाननमे जिन सात लाख गोबरके टेरोको आज गावोका नाम दिया जाता है, वे शान्ति, स्वास्थ्य और सुखके धाम बनाये जा सकते हैं।

यग इडिया, ५–१२–'२९

जमीदार एक प्रणालीका अस्त्रमात्र है। उसके विरुद्ध आन्दोलन छेडना जरूरी नही है। जब तक जमीदार किसानोके साथ अच्छा बरताव करते है, तब तक जमीदारोसे हमारा कोई झगडा नही।

यग इडिया, २६–११–'३१

२

जमींदारोंसे

मै आपको विश्वास दिलाता हू कि उचित कारणके बिना सपत्ति-धारी वर्गोकी खानगी जायदाद छीननेमे मै शरीक नही होऊगा। मेरा उद्देश्य तो आपके हृदयोमे प्रवेश करके आपके विचार इस तरह बदल देना है कि आप अपनी समस्त व्यक्तिगत सपत्ति अपने किसानोके सरक्षक बनकर अपने पास रखे और मुख्यत उन्हीकी भलाईके कामोमे उसका उपयोग करे। मुझे इसमे जरा भी शक नही है कि अगर हमारे करोडो लोगोका बिलकुल प्रामाणिक और असदिग्ध मत लिया जाय तो वे पूजीपति वर्गोकी तमाम सपत्ति छीन लेनेके पक्षमे राय नही देगे। मै पूजी और श्रम, जमीदार और किसानके सहयोग और मेलके लिए काम कर रहा हू।

परन्तु मै चेतावनीकी एक बात जरूर कहूगा। मैने मिल-मालिकोसे हमेशा कहा है कि वे अकेले ही कारखानोके मालिक नही है, मजदूर भी उनकी बराबरीके मालिक है। उसी तरह मै आपसे कहूगा कि आपकी जमीनोके मालिक जितने आप है उतने ही किसान भी है, और आप अपनी आमदनीको ऐश आराम या फिजूलखर्चीमे नही उडा सकते, बल्कि उसे

आपको रैयतकी भलाईमे खर्च करना चाहिये। आप एक बार अपनी रैयतको अपनेपनकी भावनाका अनुभव करा दे और यह महसूस करा दे कि एक ही परिवारके आदमियोके नाते उनके हित आपके हाथोमे सुरक्षित है और उन्हे कभी हानि नही पहुचेगी, तो आप विश्वास रखिये कि उनमे ओर आपमे कोई झगडा नही हो सकता और न वर्ग-विग्रह ही होगा।

मै आपसे कहता हू कि आपके तमाम डर और सदेह आपके अपराधी अत करणके कारण है। आपने जाने-अनजाने जिन अन्यायोको करनेका अपराध किया हो उन्हे मिटा दीजिये। स्वय किसानोकी शान्ति और आजादीके साथ जीनेसे अधिक कोई महत्त्वाकाक्षा नही है, और उन्हे आपकी सपत्तिसे कभी ईर्ष्या नही होगी, बशर्ते कि आप उसे उनके लिए इस्तेमाल करे।

अमृतबाजार पत्रिका, २–८–'३४

३

भूमिका स्वामित्व

सच्चा समाजवाद हमे अपने पूर्वजोसे उत्तराधिकारमे मिला है। उन्होने हमे सिखाया है कि 'सबै भूमि गोपालकी, यामे अटक कहा?' सीमा मनुष्य बनाता है और वही उसे तोड सकता है। गोपालका शब्दार्थ है ग्वाला। इसका अर्थ ईश्वर भी है। आधुनिक भाषामे उसका अर्थ है राज्य अर्थात् जनता। यह सही है कि आज जमीनकी मालिक जनता नही है। परन्तु दोष इस शिक्षामे नही है। दोष हममे है, जिन्होने उस पर अमल नही किया।

मुझे कोई सन्देह नही कि हम इस समस्याको उतने ही अच्छे ढगसे हल कर सकते है, जितना कि दूसरा कोई राष्ट्र — इसमे रूस भी शामिल है — और वह भी हिंसाके बिना।

हरिजन, २–१–'३७

४

किसान और जमींदार

किसानोको यह सिद्धान्त अस्वीकार कर देना चाहिये कि उनकी जमीन सर्वथा उन्हीकी है, जमीदारोकी बिलकुल नही। वे एक एसे सम्मिलित परिवारके सदस्य है या होने चाहिये, जिसका मुखिया जमीदार है, जो उनके अधिकारोकी रक्षा करता है। कानून कुछ भी हो, जमीदारीका बचाव तभी सभव है, जब वह सम्मिलित परिवारकी स्थितिको पहुच जाय।

यग इडिया, २८–५–'३१

५

सहकारी खेती

एक प्रश्नके उत्तरमे गाधीजीने कहा कि सहकारकी मेरी कल्पना यह है कि सब मालिक मिलजुल कर जमीन पर कब्जा रखे और जोतने, बोने फसल काटने वगैराका काम भी मिलजुल कर ही करे। इससे श्रम, पूजी और औजार वगैराकी बचत होगी। मालिक मिलजुल कर काम करेंगे और पूजी, औजार, जानवर और बीज वगैरा पर उनका मिलाजुला हक होगा। मेरी कल्पनाकी सहकारी खेतीसे जमीनका कायापलट हो जायगा और लोगोकी गरीबी और बेकारीका काला मुह हो जायगा। यह सब तभी सभव है जब लोग एक-दूसरेके मित्र और एक परिवारके सदस्य बन जाय।

हरिजन, ९–३–'४७

चौथा विभाग : समाज-व्यवस्था

क — मर्यादित समाज : मनुष्य

१

अहिंसा — एक सामाजिक सद्‌गुण

मेरी रायमे अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण नही है। वह एक सामाजिक सद्‌गुण भी है, जिसका विकास अन्य सद्‌गुणोकी भाति किया जाना चाहिये। अवश्य ही समाजका नियमन ज्यादातर आपसके व्यवहारमे अहिंसाके प्रगट होनेसे होता है। मेरा अनुरोध इतना ही है कि उसका राष्ट्रीय और आन्तर-राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाय।

हरिजन, ७–१–'३९

२

व्यक्ति बनाम समाज

मैं व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी कीमत करता हू परन्तु आपको यह नही भूलना चाहिये कि मनुष्य मुख्यतः एक सामाजिक प्राणी है। अपने व्यक्तिवादको सामाजिक प्रगतिकी आवश्यकताओके अनुकूल बनाना सीखकर वह अपने मौजूदा ऊचे दर्जे पर पहुचा है। अनियन्त्रित व्यक्तिवाद जगली जानवरोका कानून है। हमे व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और सामाजिक सयमके बीचके रास्ते पर चलना सीखना होगा। सारे समाजकी भलाईके लिए सामाजिक सयमको खुशीसे मानना व्यक्ति और समाज — जिसका व्यक्ति सदस्य है — दोनोको समृद्ध करता है।

हरिजन, २७–५–'३९

३

अस्पृश्यताके लिए स्थान नहीं

यदि विश्वमे जो कुछ है वह सब ईश्वरसे व्याप्त है अर्थात् ब्राह्मण और भगी, पडित और मेहतर, सबमे भगवान विद्यमान है, तो न कोई ऊचा है और न कोई नीचा, सभी सर्वथा समान है, समान इसलिए कि सब उसी स्रष्टाकी सन्तान है।

हरिजन, ३०–१–'३७

४

वर्णाश्रम

मुझे हिन्दू धर्मका जो भी ज्ञान है, उसके आधार पर मै कह सकता हू कि वर्णका अर्थ अत्यत सरल है। इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि हम सब अपने-अपने पूर्वजोका परम्परागत धधा सिर्फ जीविकाके लिए ही करे, अगर वह पैतृक धधा मूल नैतिक धर्मसे असगत न हो। आप महसूस करेगे कि अगर हम सब इस वर्णधर्मका पालन करे, तो हमारी भौतिक महत्त्वाकाक्षाए मर्यादित हो जायगी और हमारी शक्ति उन विशाल क्षेत्रोकी खोजके लिए मुक्त हो जायगी, जिनसे और जिनके द्वारा हमे ईश्वरका ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

यग इडिया, २०–१०–'२७

वर्णाश्रम धर्म इस पृथ्वी पर मनुष्य-जीवनके उद्देश्यकी व्याख्या करता है। वह रोज-ब-रोज धन बटोरने और आजीविकाके भिन्न-भिन्न साधन खोजनेके लिए पैदा नही हुआ है। इसके विपरीत, मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि वह अपने प्रभुको जाननेके लिए अपनी शक्तिका एक-एक अणु काममे ले। इसलिए वर्णाश्रम धर्म उस पर यह पाबदी लगाता है कि वह जीवित रहनेके लिए सिर्फ अपने बापदादोका पेशा ही करे। यही वर्णाश्रम धर्म है—न कम, न ज्यादा।

यग इडिया, २७–१०–'२७

५

वर्णके रूपमे जाति

आर्थिक दृष्टिसे इसका किसी समय बहुत बडा महत्त्व था। इसमे परम्परागत कौशलकी रक्षा होती थी। इससे आपसी प्रतिस्पर्धा मर्यादित होती थी। यह दरिद्रताका सबसे अच्छा इलाज था। और इसमे व्यवसाय-सघोके तमाम फायदे मौजूद थे। यद्यपि इसमे साहस या आविष्कारको पोषण नही मिलता था, फिर भी ऐसा नही मालूम होता कि इन दोनोके रास्तेमे उसने कभी रुकावट डाली हो।

इतिहासकी दृष्टिसे कहे तो जातिको भारतीय समाजकी प्रयोग-शालामे मनुष्यका प्रयोग या सामाजिक मेल बिठानेका प्रयत्न माना जा सकता है। यदि हम इसे सफल सिद्ध कर सके, तो ससारके सामने हृदयहीन स्पर्धा और लोभ व लालचसे पैदा होनेवाले सामाजिक विग्रहके उत्तम उपायके तौर पर हम इसे पेश कर सकते है।

यग इडिया, ५–१–'२१

मै मानता हू कि हरएक मनुष्य अमुक स्वाभाविक वृत्तिया लेकर इस ससारमे जन्म लेता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ निश्चित मर्यादाओके साथ पैदा होता है, जिन पर वह काबू नही पा सकता। उन मर्यादाओका ध्यानपूर्वक अवलोकन करके ही वर्णका कानून बनाया गया है। वह अमुक वृत्तियोवाले अमुक लोगोके लिए कार्यके अमुक क्षेत्र निश्चित करता है। इसमे सारी अनुचित स्पर्धा टल जाती है। मर्यादाओको स्वीकार करते हुए भी वर्णधर्ममे ऊच-नीचके भेदभावकी कोई गुजाइश नही, एक तरफ वह प्रत्येकको अपने परिश्रमके फलकी गारटी देता है और दूसरी तरफ मनुष्यको अपने पडोसीको दबानेसे रोकता है। इस महान धर्मको नीचे गिरा दिया गया है और वह बदनाम हो गया है। परतु मेरा पक्का विश्वास है कि आदर्श समाज-व्यवस्थाका विकास तभी होगा, जब इस धर्मके गूढ अर्थोको पूरी तरह समझकर उन पर अमल किया जायगा।

मॉडर्न रिव्यू, अक्तूबर १९३५, पृ० ४१३

६

अन्तर्जातीय विवाह

वर्णाश्रममे अन्तर्जातीय विवाह या खानपानकी न तो कोई मनाही थी और न होनी चाहिये।

यद्यपि वर्णाश्रममे अन्तर्जातीय विवाह और खानपानका कोई निषेध नही है, फिर भी इस मामलेमे जबरदस्ती नही हो सकती। यह व्यक्तिकी अपनी मरजी पर ही छोड दिया जाना चाहिये कि वह कहा शादी करे या खाये। यदि वर्णाश्रम धर्मका पालन किया जाय तो जहा तक विवाहका सबध है, लोग अपने ही वर्णमे ब्याह-शादी करनेकी ओर झुकेगे।

हरिजन, १६–११–'३५

जाति और प्रान्तकी दोहरी दीवार टूटनी चाहिये। अगर भारत एक और अखण्ड है, तो ऐसे कृत्रिम विभाजन नही होने चाहिये, जिनसे ऐसे असख्य छोटे-छोटे गुट बन जाय जो आपसमे न खानपान करे, न शादी-ब्याह करे।

हरिजन, २५–७–'३६

प्र०—आप अन्तर्जातीय विवाहोकी हिमायत करते है। क्या आप भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी भारतीयोके बीच भी विवाह होनेके पक्षमे है?

उ०—मै स्वीकार करता हू कि हमेशा मेरी यह राय नही रही; फिर भी बहुत पहले मै इस नतीजे पर पहुच चुका था कि अलग-अलग धर्मवालोके बीच विवाह होना अच्छी बात है। मेरी शर्त इतनी ही है कि यह सबध काम-वासनाका परिणाम न हो। मेरी रायमे ऐसा विवाह विवाह ही नही है। वह व्यभिचार है। मै विवाहको एक पवित्र सस्था मानता हू। इसलिए दोनो पक्षोकी परस्पर मित्रता होनी चाहिये और एक पक्षके हृदयमे दूसरे पक्षके धर्मके प्रति समान आदर होना चाहिये। इसमे धर्म-परिवर्तनका कोई प्रश्न नही। इसलिए विवाह-सस्कार दोनो

धर्मोके पुरोहितो द्वारा कराया जायगा। यह सुखद घटना तब हो सकती है, जब जातिया अपना आपसका वैरभाव छोड दे और ससारभरके धर्मोंके प्रति आदरभाव रखे।

हरिजन, १६-३-'४७

७

स्त्रियोंका स्थान

दोनो (स्त्री-पुरुष) एकसा जीवन बिताते है। दोनोकी एकसी भावनाए होती है। दोनो एक-दूसरेके पूरक है। एककी सक्रिय सहायताके बिना दूसरा जी नही सकता।

परतु युगोसे किसी न किसी तरह पुरुषने स्त्री पर अपना प्रभुत्व रखा है और इसलिए स्त्री अपनेको पुरुषसे नीचा समझने लगी है। उसने पुरुषकी इस स्वार्थपूर्ण सीखकी सचाईमे विश्वास कर लिया है कि वह पुरुषमे नीची है। परन्तु ज्ञानी पुरुषोने उसका बराबरीका दर्जा स्वीकार किया है। फिर भी इसमे कोई शक नही कि एक खास स्थान पर पहुचकर दोनोकी दिशा अलग-अलग हो जाती है। जहा मूल रूपमे दोनो एक है, वहा यह भी उतना ही सच है कि शरीर-रचनाकी दृष्टिसे दोनोमे गहरा अन्तर है। इसलिए दोनोका काम भी जुदा-जुदा ही होगा। स्त्रियोके भारी बहुमत पर मातृत्वका कर्तव्य-भार सदा ही रहेगा, लेकिन उसके लिए जिन गुणोकी आवश्यकता है उनका पुरुषमे होना जरूरी नही है। स्त्री निवृत्ति-प्रिय है, पुरुष क्रियाशील है। स्त्री स्वभावसे गृह-स्वामिनी है। पुरुष रोटी कमानेवाला है। स्त्री रोटीका रक्षण और वितरण करनेवाली है। वह हर अर्थमे सभाल रखनेवाली है। मानव-जातिके शिशुओका पालन करना उसका विशेष और एकमात्र असाधारण अधिकार है। उसकी देखभालके बिना मानव-वश अवश्य लुप्त हो जायगा।

मेरी रायमे यह स्त्री और पुरुष दोनोके लिए पतनकी बात होगी कि स्त्रीसे घर छोडकर उसकी रक्षाके लिए बन्दूक उठानेको कहा जाय

या ललचाया जाय। यह तो फिरसे बर्बरताकी ओर लौटना और प्रलयका प्रारभ कहा जायगा। जिस घोडे पर पुरुष चढता है उस पर स्त्री भी चढनेकी कोशिश करती है, तो वह अपनेको और पुरुषको दोनोको गिराती है। पुरुष अपनी सगिनीको उसका विशेष काम छोड देनेके लिए ललचायेगा या मजबूर करेगा, तो इसका पाप उसके सिर पर रहेगा। अपने घरको सुव्यवस्थित और साफ-सुथरा रखनेमे उतनी ही वीरता है, जितनी बाहरी आक्रमणसे उसकी रक्षा करनेमे है।

मैंने लाखो किसानोको उनके प्राकृतिक वातावरणमे देखा है और आज भी मै छोटेसे गावमे उन्हे रोज देखता हू, उससे बलात् मेरे ध्यानमें दोनोके कार्यक्षेत्रके स्वाभाविक बटवारेकी बात आई है। स्त्रिया लुहार और बढई नही होती। परन्तु स्त्री-पुरुष दोनो खेतोमे काम करते हैं और सबसे भारी काम पुरुष करते हैं। औरते घरोको सभालती और उनकी व्यवस्था करती हैं। वे परिवारके अल्प साधनोमें वृद्धि करती है, परन्तु मुख्य कमानेवाला पुरुष ही रहता है।

कार्यक्षेत्रके विभाजनकी बात मान लेने पर जिन साधारण गुणो और सस्कृतिकी जरूरत है, वे लगभग दोनोके लिए एकसे ही हैं।

इस महान समस्याको हल करनेमे मेरा योग यह है कि व्यक्तियो और राष्ट्रो — दोनोके जीवनके हर क्षेत्रमे मैंने सत्य और अहिसाको अपनानेके लिए पेश किया है। मैंने यह आशा बाध रखी है कि इस काममे स्त्रीका असदिग्ध नेतृत्व रहेगा और इस प्रकार मानव-विकासमें अपना योग्य स्थान पाकर वह अपनेको नीचा समझना छोड देगी।

मैंने इन कालमोमे यह कहा है कि स्त्री अहिसाका अवतार है। अहिसाका अर्थ है असीम प्रेम, और प्रेमका अर्थ है असीम कष्ट-सहनकी शक्ति। यह शक्ति पुरुषकी मा — स्त्रीके सिवा अधिकसे अधिक मात्रामे और कौन दिखा सकता है? जब वह नौ महीने तक बच्चेको पेटमे रखती और उसका पोषण करती है और इससे होनेवाले कष्टमें आनद मानती है, तब वह अपनी इसी शक्तिका परिचय देती है। प्रसव-पीडासे होनेवाले कष्टसे अधिक और कौनसा कष्ट होगा? परन्तु प्रजनन-कार्यके सुखमे वह उसे भूल जाती है। इसी तरह अपने शिशुको दिन-

दिन बढता हुआ देखनेके लिए रोज-रोज कौन यातनाए सहन करता है? वह अपना यह प्रेम सारी मानव-जातिको दे दे और भूल जाय कि वह कभी पुरुषकी काम-वासनाकी चीज थी या हो सकती है, तो फिर पुरुषके समक्ष उसकी माता, निर्माता और मूक नेता बननेका गौरवपूर्ण पद उसे प्राप्त हो जायगा। शान्तिरूपी अमृतके प्यासे इस युद्धरत ससारको शान्तिकी कला सिखानेका काम भगवानने उसीको सौपा है। वह सत्याग्रहकी नेता बन सकती है, क्योकि उसमे पुस्तकीय ज्ञानकी जरूरत नही पडती। उसके लिए तो कष्ट-सहन और श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले दृढ हृदयकी जरूरत होती है।

जब वर्षो पहले मै पूनाके सासून अस्पतालमे रोगशय्या पर पडा हुआ था, तब मेरी भली परिचारिकाने मुझे एक स्त्रीका किस्सा सुनाया था। उसे एक कष्टदायी ऑपरेशन करवाना था। उस स्त्रीने बेहोशीकी दवा सूघनेसे इसलिए इनकार कर दिया कि वह अपने पेटके बच्चेके प्राणोको खतरेमे नही डालना चाहती थी। बेहोशीकी एकमात्र दवा उसके पास अपने बच्चेका स्नेह था। उसे बचानेके खातिर वह किसी भी पीडाको बहुत बडी नही मानती थी। जिस स्त्री-जातिमे इस प्रकारकी अनेक वीरागनाए है, वह अपने आपको तुच्छ न समझे और न इस बातका अफसोस करे कि वे पुरुषके रूपमे पैदा नही हुई। उस वीरागनाका खयाल करके मुझे अकसर स्त्रीके दर्जे पर ईर्ष्या होती है। जरूरत इतनी ही है कि वह अपने स्वरूपको पहचाने। जितना कारण स्त्रीके लिए पुरुष-जन्म पानेकी इच्छा करनेमे है, उतना ही पुरुषके लिए स्त्री-जन्म पानेकी इच्छा करनमे है। परन्तु यह इच्छा व्यर्थ है। हम जिस स्थितिमे जन्मे हो उसीमे सुखी रहे और प्रकृतिने हमारे भाग्यमे जो कर्तव्य लिख दिया है उसे करे।

हरिजन, २४–२–'४०

८

स्त्री-पुरुषके समान अधिकार

गाधीजीने कहा कि सामान्य नियमके तौर पर मै जीवनभर एक पुरुषके लिए एक पत्नीके और एक स्त्रीके लिए एक पतिके पक्षमे हू। रिवाजके कारण तथाकथित उच्च जातियोकी स्त्रियोको लादे हुए वैधव्यका अभ्यास हो गया है। पुरुषोके लिए इससे उलटा नियम है। इसे मै बेहयाईकी बात कहता हू। परन्तु जब तक समाज इस दयाजनक स्थितिमे है, तब तक मै तमाम युवा विधवाओके लिए विधवा-विवाहकी हिमायत करता हू। मै स्त्री-पुरुषकी समानतामे विश्वास रखता हू, इसलिए स्त्रियोके लिए मै उन्ही अधिकारोकी कल्पना कर सकता हू जो पुरुषोको प्राप्त है।

हरिजन, १६–३–'४७

९

विवाह

पत्नी पतिकी क्रीतदासी नही है, बल्कि उसकी जीवन-सगिनी और सहायक है और उसके तमाम सुख-दु खमे बराबरका हिस्सा बटानेवाली है— वह स्वय अपना मार्ग चुननेको उतनी ही स्वतत्र है जितना उसका पति।

आत्मकथा, १९४८, पृ० ३८

मै बाल-विवाहोसे घृणा करता हू। मै बाल-विधवाको देखकर काप उठता हू और जब किसी पतिको विधुर बनते ही पाशविक उपेक्षाके साथ पुनर्विवाह करते देखता हू, तो क्रोधके मारे कापने लगता हू। मुझे उन माता-पिताओकी अपराधपूर्ण उपेक्षा पर दु ख होता है, जो अपनी लडकियोको सर्वथा अज्ञान और निरक्षर रखते है और उनका पालन-पोषण

सिर्फ इस गरजसे करते है कि किसी साधन-सपन्न युवकसे उनका ब्याह कर दिया जाय।

यग इडिया, २१–७–'२१

छोटे-छोटे बच्चोके विवाहमे कन्यादानके क्या मानी है? क्या किमी पिताका अपने बालको पर उसी तरह अधिकार होता है, जिस तरह जायदाद पर उसका अधिकार होता है? वह उनका मालिक नही, रक्षक है। और जब वह सरक्षितकी स्वाधीनताको बेचकर रक्षा करनेके अपने विशेषाधिकारका दुरुपयोग करता है, तो वह उस अधिकारको खो देता है।

जिन माता-पिताने किसी बच्चीको किसी बूढेके साथ या कुमार अवस्थावाले लडकेके साथ ब्याह कर अपनी सरक्षकताका दुरुपयोग किया है, वे अपने पापके प्रायश्चित्तके रूपमे कमसे कम यही कर सकते है कि जब वह लडकी विधवा हो जाय तब उसका दुबारा ब्याह कर दे। जैसा मै किसी पिछली टिप्पणीमे कह चुका हू, इस प्रकारकी शादिया शुरूसे ही रद्द मानी जानी चाहिये।

यग इडिया, ११–११–'२६

विवाह जीवनमे एक स्वाभाविक वस्तु है और इसे किसी भी तरह हेय समझना बिलकुल अनुचित है। आदर्श यह है कि विवाहको एक धार्मिक सस्कार माना जाय और इसलिए विवाहित जीवनमे सयमका पालन किया जाय।

हरिजन, २२-३–'४२

१०

वैधव्य

कोई स्त्री, जिसने अपने जीवन-साथीके प्रेमका अनुभव कर लिया है, ज्ञान और स्वेच्छापूर्वक वैधव्यको अपनाती है, तो उससे जीवनकी शोभा और गौरव बढता है, घर पवित्र बनता है और स्वय धर्मका उत्थान होता है। धर्म या रिवाजसे जबरन् लादा हुआ वैधव्य एक असह्य जुआ है और वह गुप्त पाप द्वारा घरको अपवित्र और धर्मको पतित बनाता है।

यदि हम शुद्ध होना चाहते है, हिन्दू धर्मको बचाना चाहते हैं, तो हमे जबरन् लादे जानेवाले वैधव्यके इस जहरसे छूटकारा पा लेना चाहिये। यह सुधार उनसे शुरू होना चाहिये, जिनके यहा बाल-विधवाये है। वे साहस जुटाये और यह देखे कि उनकी देखभालमे रहनेवाली बाल-विधवाओका केवल विवाह ही न हो, बल्कि बाकायदा और अच्छी तरह विवाह हो। वास्तवमे उनका कभी विवाह हुआ ही नही था।

यग इडिया, ५–८–'२६

११

तलाक

विवाह दूसरे सब लोगोको छोडकर दो जीवन-सगियोके मिलनके अधिकार पर स्वीकृतिकी मुहर लगाता है, जब अपनी सम्मिलित रायमे वे ऐसे मिलनको वाछनीय मानते हो। परतु विवाह एक साथीको यह अधिकार नही देता कि वह अपनी मिलनकी इच्छाको दूसरे साथीसे जबरन् पूरा कराये। यह दूसरा प्रश्न है कि जब एक साथी नैतिक या अन्य कारणोसे दूसरे साथीकी इच्छापूर्ति न कर सकता हो तब क्या करना चाहिये। मै स्वय तो अगर तलाकके सिवा दूसरा कोई उपाय न हो तो उसे बिना किसी सकोचके स्वीकार कर लूगा, मगर अपनी नैतिक उन्नतिमे बाधा नही पडने दूगा — बशर्ते कि मै केवल नैतिक कारणोसे ही सयम रखना चाहू।

यग इडिया, ८–१०–'२५

१२

गर्भ-निरोध

यदि यह कहा जाय कि सतति-नियमन अत्यधिक आबादीके कारण राष्ट्रके लिए आवश्यक है, तो मै उसे नही मानता। इसे कभी साबित नही किया गया। मेरी रायमे उचित भूमि-व्यवस्था, सुधरी हुई खेती और सहायक उद्योगोसे देश आजसे दुगुने लोगोका पालन-पोषण कर सकता है।

यग इडिया, २–४–'२५

प्र० — जिस माताका स्वास्थ्य अत्यधिक सन्तानोके कारण नष्ट हो जाता है, उसके खातिर और स्वय बच्चोके खातिर क्या कृत्रिम उपायोसे सतति-निरोधका आश्रय लेना आत्म-सयमके बाद दूसरे नबरकी अच्छी चीज नही हो सकती?

उ० — स्त्रियोको अपने पतियोका विरोध करना होगा। अगर कृत्रिम उपायोका आश्रय लिया जायगा, तो भयकर परिणाम होगे। स्त्री-पुरुष केवल सभोगके लिए ही जियेगे। वे दुर्बल मस्तिष्कवाले और असतुलित बन जायेगे तथा उनका मानसिक एव नैतिक ह्रास हुए बिना नही रहेगा।

प्र० — क्या अपवाद-स्वरूप मामलोमे भी, जहा स्त्रिया सन्तानोत्पत्तिके लिए अत्यधिक दुर्बल है या माता-पितामे से कोई एक रोगी है, यह तरीका नही अपनाया जा सकता?

उ० — नही। उपरोक्त मामलोमे बेहतर यह है कि पति-पत्नी अलग अलग रहे।

मै लोगोको नपुसक या वध्या बनानेका कानून लागू करना अमानुषिक मानता हू। परन्तु जीर्ण रोगोवाले व्यक्तियोके बारेमे वे राजी हो, तो उनका ऐसा बनना वाछनीय होगा। यह भी एक तरहका कृत्रिम उपाय है। और यद्यपि मै स्त्रियोके लिए ऐसे उपायोके इस्तेमालके खिलाफ हू, फिर भी चूकि पुरुष आक्रमणकारी है, इसलिए उसके स्वेच्छापूर्वक पुसत्वहीन बननेकी मुझे परवाह नही।

अमृतबाजार पत्रिका, १२–१–'३५

मै महसूस करता हू कि मेरे जीवनके शेष वर्षोमे यदि मै स्त्रियोके हृदयमे यह सत्य अकित कर सकू कि वे स्वतत्र है, तो हमारे लिए भारतमे सतति-नियमनकी समस्या नही रहेगी। जिस वक्त उनके पति सभोगकी इच्छासे उनके पास आये, उस समय यदि वे केवल 'नही' कहना सीख जाय। असली समस्या यह है कि वे उनका विरोध नही करना चाहती। बात सारी शिक्षा पर आ टिकती है। मै चाहता हू कि स्त्री विरोधका अपना प्रारभिक अधिकार सीख ले। अभी तो वह समझती है कि उसे यह अधिकार नही है। भारतकी स्त्रियोको यह सत्य हृदयगम कराना सबसे मुश्किल है। यदि मै अपनी शक्ति सतति-नियमनमे लगा दू, तो मुझे स्त्रियोको यह प्राथमिक शिक्षा देनेका मौका नही मिलेगा।

अगर हम सतति-नियमनको छोड देते है, तो दूसरे अधिक अच्छे उपाय मिल जायेगे। ज्यो ही हम अमुक साधनोको हानिकारक मानकर छोडना स्वीकार कर लेगे, त्यो ही हमे दूसरे उपाय अवश्य मिल जायेगे।

(नवम्बर १९३५ के 'एशिया' मे छपी मिसेज मार्गरेट सेगरकी रिपोर्टसे।)

ख — विशाल समाज : पशु

१

गोरक्षा

गोरक्षा मेरे लिए मनुष्य-जातिके विकासमे एक सबसे अद्भुत चमत्कारपूर्ण घटना है। यह मानवको अपनी स्वाभाविक मर्यादासे बाहर ले जाती है। मेरे लिए गायका अर्थ है समस्त मनुष्येतर सृष्टि। गायके द्वारा मनुष्यको तमाम प्राणियोके साथ तादात्म्य अनुभव करनेका आदेश दिया गया है। गायको ही देवता क्यो माना गया, यह मेरे लिए स्पष्ट है। भारतमे गाय मनुष्यका उत्तम साथी है। वह कामधेनु है। वह न केवल

दूध देती है, बल्कि खेती भी उसीके कारण सभव है। गाय मूर्तिमन्त करुणामयी कविता है। इस नम्र और निरीह पशुकी आखोसे करुणा टपकती है। भारतके करोडो लोगोकी वह माता है। गोरक्षाका अर्थ है भगवानकी समस्त मूक सृष्टिकी रक्षा। प्राचीन ऋषियोने, भले वे कोई भी हो, गायसे इसका आरभ किया। निम्न श्रेणीके प्राणियोकी पुकार इसलिए और भी प्रबल है कि वे मूक है।

यग इडिया, ६–१०–'२१

जो हिन्दू गायकी रक्षा करता है, उसे हरएक पशुकी रक्षा करनी चाहिये। परन्तु सब बातोका विचार करते हुए हम सिर्फ इसलिए उसकी गोरक्षामे दोष न निकाले कि वह दूसरे जानवरोको नही बचा पाता। इसलिए विचारणीय प्रश्न केवल यह है कि उसका गोरक्षा करना ठीक है या नही। और उसका ऐसा करना गलत नही है, यदि अहिसामे विश्वास रखनेवालेका आम तौर पर जानवरोको न मारना कर्तव्य समझा जा सकता हो। और प्रत्येक हिन्दू, बल्कि प्रत्येक धार्मिक पुरुष, ऐसा ही करता है। आम तौर पर जानवरोको न मारनेका और इसलिए उन्हे बचानेका कर्तव्य निर्विवाद सत्य माना जाना चाहिये। तब तो यह हिन्दू धर्मके लिए तारीफकी बात है कि उसने गोरक्षाको कर्तव्य समझकर अपनाया है। और वह व्यक्ति हिन्दू धर्मका घटिया नमूना है, जो दूसरे पशुओकी रक्षा करनेकी क्षमता रखते हुए भी केवल गायकी रक्षा करके ही सतोष मान लेता है। गाय केवल एक प्रतीक है। और गायकी रक्षाका काम तो कमसे कम है, जिसे करनेकी उससे आशा रखी जाती है।

यग इडिया, ११–११–'२६

गोरक्षाका सूक्ष्म अथवा आध्यात्मिक अर्थ है सभी जीवोकी रक्षा करना। हमारे ऋषियोने यह आश्चर्यजनक आविष्कार किया (और मै प्रतिदिन इसकी सचाईका अधिकाधिक कायल होता जा रहा हू) कि जितना ज्यादा मनुष्य अहिसा और सत्यके आचरणमे प्रगति करता है, उतना ही अधिकाधिक ईश्वर-प्रेरित धर्मसूत्रो और शास्त्र-वचनोका सत्य प्रगट होता है। सत्य और अहिंसाकी जितनी अनुभूति होगी उतना ही ज्ञान बढेगा।

इन्ही ऋषियोने घोषित किया है कि गोरक्षा एक हिन्दूका परम धर्म है और उसके पालनसे मोक्ष मिलता है। लेकिन मै यह माननेको तैयार नही हू कि केवल स्थूल गायकी रक्षा करनेसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। मोक्षके लिए मोह, द्वेष, क्रोध और ईर्ष्या आदि विकारोको पूरी तरह जीतना पडता है। इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि मोक्षकी भाषामे गोरक्षाका अर्थ जितना आम तौर पर माना जाता है उससे कही अधिक व्यापक और विस्तृत होना चाहिये। जिस गोरक्षासे मोक्ष प्राप्त हो सकता है, उसमे स्वभावत प्रत्येक चेतन प्राणीकी रक्षा शामिल होनी चाहिये। इसलिए मेरी रायमे अहिसा-सिद्धान्तका छोटेसे छोटा भग — जैसे किसी भी स्त्री, पुरुष या बालकको कठोर वाणी द्वारा दु ख पहुचाना और ससारके दुर्बलसे दुर्बल और तुच्छसे तुच्छ जीवको भी पीडा पहुचाना — गोरक्षाके सिद्धान्तका भग होगा, गोमास-भक्षणके पापके समान होगा। उसमे कोई फर्क होगा तो मात्राका ही होगा, प्रकारका नही।

यग इडिया, २९–१–'२५

२

पशुओंके प्रति अहिसा

क्रोध या स्वार्थवश किसी प्राणीका जी दुखाना, बुरा चाहना या प्राण लेना हिसा है। इसके विपरीत, शान्त और स्पष्ट विचारके बाद किसी जीवको शुद्ध और नि स्वार्थ हेतुसे उसके आध्यात्मिक अथवा शारीरिक लाभकी दृष्टिसे मार डालना या पीडा पहुचाना शुद्धसे शुद्ध प्रकारकी अहिसा है। ऐसे हर मामले पर अलग अलग और गुण-दोषका विचार करके निर्णय होना चाहिये। हिसा या अहिसाकी अतिम कसौटी तो आखिर उस कृत्यके पीछे रहा हेतु ही होगा।

यग इडिया, ४–१०–'२८

मेरी अहिसा अपने ही ढगकी है। मै जानवरोको न मारनेका सिद्धान्त पूरी तरह स्वीकार नही कर सकता। जो पशु मनुष्यको खा जाते है या

नुकसान पहुचाते है, उनकी जान बचानेकी मुझमे कोई भावना नही है। उनकी वशवृद्धिमे सहायक होना मै अनुचित समझता हू। इसलिए मै चीटियो, बदरो या कुत्तोको नही खिलाऊगा। उनके प्राण बचानेके लिए मै किसी मनुष्यके प्राणोका कभी बलिदान नही करूगा।

इस ढगसे विचार करते हुए मै इस परिणाम पर पहुचा हू कि जहा बदर मनुष्यके कल्याणके लिए खतरा बन गये है, वहा उनका सफाया कर देना क्षम्य है। इस प्रकारका सहार कर्तव्य हो जाता है। यह सवाल उठ सकता है कि यह नियम मानव-प्राणियो पर क्यो नही लागू होना चाहिये। वह इसलिए लागू नही हो सकता है कि कितने ही बुरे हो तो भी वे हमारे ही जैसे है। जानवरको भगवानने बुद्धि नही दी, मनुष्यको दी है।

हरिजन, ५–५–'४६

३

विश्व-बन्धुत्व

हिन्दू धर्मके शुद्धत्तम रूपमे तो ब्राह्मण, चीटी, हाथी और श्वपाक सबका दर्जा समान माना गया है। हिन्दू धर्म न केवल मनुष्य-मात्रके, बल्कि प्राणिमात्रके बन्धुत्वका आग्रह करता है। यह कल्पना ऐसी है कि इससे मनुष्य चकरा जाता है, मगर हमे इस पर अमल करना है। जिस क्षण हम मनुष्य मनुष्यके बीच सच्ची और सजीव समानता फिरसे स्थापित कर लेगे, उसी क्षण हम मनुष्य और सारी सृष्टिके बीच समानता स्थापित कर सकेगे। जब वह दिन आयेगा तब ससारमे शान्ति और मनुष्योमे सद्‌भावनाका राज्य फैल जायगा।

हरिजन, २८–३–'३६

४

पशुबलि

इसकी कोई परवाह नही कि वेदोमे पशुबलिके लिए स्थान बताया जाता है। हमारे लिए इतना काफी है कि इस प्रकारकी बलि सत्य और अहिसाकी मौलिक कसौटी पर नही टिक सकती। वेदोके पाडित्यके विषयमे मै अपनी अयोग्यता तुरत स्वीकार कर लेता हू। परन्तु जहा तक इस विषयका सबध है, मुझे अपनी अयोग्यताकी चिन्ता नही, क्योकि यदि पशुबलिकी प्रथा वैदिक समाजका अग भी सिद्ध कर दी जाय, तो भी अहिसाके पुजारीके लिए वह कोई उदाहरण नही बन सकता।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ५३–५४

पांचवां विभाग : राजनीतिक व्यवस्था

क — सर्वोदयी राज्य

१

चरित्र आधार होगा

स्वराज्यका सच्चा अर्थ आत्म-सयम है। आत्म-सयम वही रख सकता है, जो सदाचारके नियमोका पालन करता है, किसीको धोखा नही देता, सत्यका त्याग नही करता और अपने माता-पिता, पत्नी, बच्चो, नौकरो और पडोसियोके प्रति अपना फर्ज अदा करता है। ऐसा आदमी, भले कही भी रहे, स्वराज्यका सुख भोगता है। जो राज्य बडी सख्यामे इस तरहके भले नागरिकोके होनेका गर्व कर सकता है, वह स्वराज्यका उपभोग करता है।

स्वराज्य* विशालकाय कारखाने खडे करनेसे प्राप्त नही हो सकता। सोना-चादी इकट्ठा किया जा सकता है, मगर उससे स्वराज्यकी स्थापना नही होगी। रस्किनने यह सोलह आने साबित कर दिया है। पाश्चात्य सभ्यता अभी निरी दुधमुही बच्ची है। उसकी आयु केवल सौ या पचास वर्षकी है। फिर भी उसने यूरोपकी दुर्दशा कर दी है। हम प्रार्थना करे कि जो हाल यूरोपका हुआ उससे भगवान भारतको बचाये। यूरोपके राष्ट्र तो एक-दूसरे पर हमला करनेको तुले बैठे है और केवल शस्त्रास्त्रके सग्रहके कारण ही चुप है। किसी न किसी दिन विस्फोट होगा, और तब यूरोप पृथ्वी पर सचमुच नरक बन जायगा। हर यूरोपीय राज्य

* सच्चा लोकतत्र या जनताका राज्य अर्थात् सर्वोदय। — सं०

अ-गोरी जातियोको अपना उचित शिकार मानता है। जहा मनुष्योके हृदयोमे लोभकी ही प्रधानता है, वहा और क्या आशा रखी जा सकती है? नये भूभागो पर यूरोपीय ऐसे टूट पडते है, जैसे मास पर चील-कौवे। मेरा यह विचार है कि इसका कारण बडे पैमाने पर उत्पादन करनेवाले कारखाने है।

भारतको स्वराज्य अवश्य लेना चाहिये, लेकिन शुद्ध और पवित्र उपायोसे। हमारा स्वराज्य वास्तविक स्वराज्य होना चाहिये, जो न हिसासे प्राप्त किया जा सकता है और न उद्योगीकरणसे। भारत किसी वक्त स्वर्णभूमि था, क्योकि उस समय भारतवासियोका हृदय सोनेका था। भूमि वही है, मगर रेगिस्तान है, क्योकि हम भ्रष्ट हो गये है। वह फिरसे स्वर्णभूमि तभी बन सकती है, जब हमारे वर्तमान राष्ट्रीय चरित्रकी घटिया धातु स्वर्णमे बदल जाय। जिस पारस-मणिसे यह परिवर्तन हो सकता है, वह दो अक्षरोका छोटासा शब्द है — सत्य। यदि प्रत्येक भारतवासी सत्य पर डटा रहे, तो स्वराज्य अपने-आप हमारे पास चला आयेगा।

(गाधीजीज़ कक्लुजन टु हिज पैराफ्रेज ऑफ 'अन्टु दिस लास्ट' पृ० ६१–६४)

सच्चा लोकतत्र या जनसाधारणका स्वराज्य असत्य और हिंसापूर्ण उपायोसे कभी नही आ सकता। इसका सीधा कारण यह है कि इनको काममे लेनेका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियोका दमन या विनाश करके सारा विरोध हटा दिया जायगा। इससे व्यक्तिगत स्वतत्रता पनप नही सकती। व्यक्तिगत स्वतत्रता विशुद्ध अहिसाके शासनमे ही पूरी तरह काम कर सकती है।

हरिजन, २७–५–'३९

२

सर्वोदयी लोकतंत्र

ऐसा समाज अनगिनत गावोका बना होगा। उसका फैलाव एकके ऊपर एकके ढगका नही, बल्कि लहरोकी तरह एकके बाद एककी शकलमे होगा। जीवन मीनारकी शकलमे नही होगा, जहा ऊपरकी तग चोटीको नीचेके चौडे पाये पर खडा रहना पडता है। वहा तो जीवन समुद्रकी लहरोकी तरह एकके बाद एक घेरेकी शकलमे होगा, जिसका केन्द्र व्यक्ति होगा। व्यक्ति गावके लिए और गाव ग्राम-समूहके लिए मर मिटनेको हमेशा तैयार रहेगा। इस तरह अन्तमे सारा समाज ऐसे व्यक्तियोका बन जायगा, जो अहकारमे आकर कभी किसी पर हमला नही करेगे, बल्कि सदा विनीत रहेगे और उस समुद्रके गौरवके हिस्सेदार बनेगे, जिसके वे अविभाज्य अग है।

इसलिए सबसे बाहरका घेरा अपनी शक्तिका उपयोग भीतरवालोको कुचलनेमे नही करेगा, बल्कि भीतरवाला सबको ताकत पहुचायेगा और स्वय उनसे बल ग्रहण करेगा। मुझ पर यह कटाक्ष किया जा सकता है कि यह सब खयाली पुलाव है और इसलिए जरा भी विचारणीय नहीं है। युक्लिडकी परिभाषाका बिन्दु भले ही मनुष्य खीच न सके, तो भी उसका शाश्वत मूल्य तो है। इसी तरह मेरे इस चित्रका भी मानव-जातिके जीवित रहनेके लिए अपना मूल्य है। इस तसवीर तक पूरी तरह पहुचना सभव नही है, फिर भी इस सही तसवीर तक पहुचना भारतकी जिन्दगीका मकसद होना चाहिये। हमे क्या चाहिये, इसका सही चित्र तो हमारे पास होना ही चाहिये। तब हमे उससे मिलती-जुलती कोई चीज प्राप्त हो सकती है। यदि कभी भारतके प्रत्येक गावमे एक एक गणतत्र स्थापित हुआ, तो मेरा दावा है कि मै इस चित्रकी सचाई सिद्ध कर सकूगा -- जिसमे सबसे आखिरी और सबसे पहला दोनो बराबर होगे या दूसरे शब्दोमे कहे तो न कोई पहला होगा, न आखिरी।

हरिजन, २८-७-'४६

सच्चे लोकतत्रका सचालन केन्द्रमे बैठे हुए बीस आदमियोसे नही हो सकता। उसका सचालन नीचेसे प्रत्येक गावके लोगो द्वारा करना होगा।

हरिजन, १८–१–'४८

यदि हम चाहते है कि स्वराज्यकी रचना अहिसाके आधार पर की जाय, तो हमे गावोको उनका उचित स्थान देना होगा।

हरिजन, २०–१–'४०

३

ध्येय

अहिसाके आधार पर खडे स्वराज्यमे कोई किसीका शत्रु नही होता, सभी सामान्य ध्येयके लिए अपने अपने उचित हिस्सेका काम करते है, सब पढ-लिख सकते है और उनका ज्ञान दिनोदिन बढता रहता है। रोग और बीमारी कमसे कम होती है। कोई दरिद्र नही होता और मजदूरोको हमेशा काम मिल जाता है। ऐसे राज्यमे जुए, शराबखोरी, दुराचार या वर्ग-द्वेषके लिए कोई स्थान नही होता। धनवान अपना धन बुद्धिमानीसे और उपयोगी ढग पर खर्च करेगे, अपनी शान-शौकत और सासारिक सुखोको बढानेमे उसे बरबाद नही करेगे। यह नही होना चाहिये कि मुट्ठीभर अमीर लोग तो रत्न-जटित महलोमे रहे और करोडो लोग वायु और प्रकाशहीन गन्दे झोपडोमे रहे। हिन्दू-मुस्लिम झगडे, अस्पृश्यता और ऊच-नीचके भारी भेद आदि बाते उसमे नही होनी चाहिये।

[गाधीजी द्वारा राजकोटके लोगोके नाम निकाली गई एक अपीलसे।]

हरिजन, २५–३–'३९

४

हिन्दुस्तानी गवर्नर

१ हिन्दुस्तानी गवर्नरको चाहिये कि वह खुद पूरे सयमका पालन करे और अपने आसपास सयमका वातावरण खडा करे। इसके बिना शराबबन्दीके बारेमे सोचा भी नही जा सकता।

२ उससे और उसके आसपासके वातावरणसे यह प्रमाण मिलना चाहिये कि हाथ-कताई भारतके करोडो मूक लोगोके साथ तादात्म्य सिद्ध करनेका तथा शरीर-श्रमकी आवश्यकताका प्रत्यक्ष चिह्न है, और जिस सगठित हिसा पर आजके समाजका आधार दिखाई देता है, उसके मुकाबलेमे वह सगठित अहिसाका प्रतीक है।

३ अगर गवर्नरको अच्छी तरह काम करना है, तो उसे ऐसी झुटियामे रहना चाहिये जो लोगोकी निगाहसे बची हुई होने पर भी सबकी पहुचके भीतर हो। अग्रेज गवर्नर कुदरती तौर पर अग्रेजी ताकतका प्रतिनिधि था। उसके और उसके स्वजनोके लिए एक सुरक्षित निवासस्थान —एक महल बनाया जाता था, जिसमे वह और उसके साम्राज्यको टिकाये रखनेवाले उसके बहुसख्यक सेवक रह सके। भारतीय गवर्नर भी कुछ शान-शौकतवाली इमारते राजाओ और ससारके राजदूतोके स्वागतके लिए रख सकता है। गवर्नरके मेहमान बननेवाले लोगोको उसके व्यक्तित्व और आसपासके वातावरणसे 'ईवन अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) —सबके साथ समान बरताव— की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिये। उसके लिए देशी या विदेशी महगे फर्नीचरकी जरूरत नही होनी चाहिये। 'सादा जीवन और उच्च विचार' उसका आदर्श-वाक्य होना चाहिये, जो केवल उसके द्वारकी शोभा न बढाये, बल्कि दैनिक जीवनमे कार्यान्वित हो।

४ उसके लिए किसी भी रूपमे न तो अस्पृश्यता हो सकती है और न जाति, धर्म या रगका भेद हो सकता है। वह समस्त धर्मो और पूर्व या पश्चिमकी सब बातोके उत्तम तत्त्वोका प्रतिनिधि हो। भारतका नागरिक

होनेके कारण उसे ससारका नागरिक होना चाहिये। हम पढते है कि खलीफा उमर, जिनके चरणोमे दुनियाकी दौलत लोटती थी, इसी प्रकार सादगीसे रहते थे, इसी तरहका जीवन प्राचीन कालमे राजा जनकका था। मैंने देखा कि एटनके आचार्य अपने घरमे ब्रिटिश टापुओके उमरावो और नवाबोके लडकोके बीच और उनसे घिरे हुए इसी तरह सादगीसे जीवन बिताते थे। तब क्या करोडो भूखे भारतीयोके गवर्नर सादगीसे नही रहेगे?

५ वह जिस प्रान्तका गवर्नर होगा, उसकी भाषा और नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जानेवाली राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी बोलेगा। वह न तो सस्कृतमयी हिन्दी है और न फारसी-प्रधान उर्दू। हिन्दुस्तानी अवश्य ही वह भाषा है, जो विन्ध्य पर्वतमालाके उत्तरमे करोडो लोगो द्वारा बोली जाती है।

एक भारतीय गवर्नरमे जो गुण होने चाहिये, उन सबकी यह पूरी सूची नही है। यह तो केवल दृष्टान्तके लिए है।

हरिजन, २४–८–'४७

५
राजनीतिक सत्ता

मेरी दृष्टिमे राजनीतिक सत्ता कोई साध्य नही है, परन्तु जीवनके प्रत्येक विभागमे लोगोके लिए अपनी हालत सुधार सकनेका एक साधन है। राजनीतिक सत्ताका अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियो द्वारा राष्ट्रीय जीवनका नियमन करनेकी शक्ति। अगर राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाता है कि वह स्वय आत्म-नियमन कर ले, तो किसी प्रतिनिधित्वकी आवश्यकता नही रह जाती। उस समय ज्ञानपूर्ण अराजकताकी स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थितिमे हरएक अपना राजा होता है। वह इस ढगसे अपने पर शासन करता है कि अपने पडोसियोके लिए कभी बाधा नही बनता। इसलिए आदर्श अवस्थामे कोई राजनीतिक सत्ता नही होती, क्योकि कोई राज्य नही होता। परन्तु जीवनमे आदर्शकी पूरी सिद्धि

कभी नही होती। इसीलिए थोरोने कहा है कि सबसे कम शासन करे वही उत्तम सरकार है।

यग इडिया, २–७–'३१

मै राज्यकी सत्ताकी वृद्धिको बहुत ही भयकी दृष्टिसे देखता हू। क्योकि जाहिरा तौर पर तो वह शोषणको कमसे कम करके लाभ पहुचाती है, परन्तु मनुष्यके व्यक्तित्वको नष्ट करके वह मानव-जातिको बडीसे बडी हानि पहुचाती है, जो सब प्रकारकी उन्नतिकी जड है।

राज्य केन्द्रित और सगठित रूपमे हिसाका प्रतीक है। व्यक्तिके आत्मा होती है, परन्तु चूकि राज्य एक आत्मा-रहित मशीन होता है, इसलिए उससे हिसा कभी नही छुडवाई जा सकती, उसका अस्तित्व ही हिसा पर निर्भर है।

मेरा यह पक्का विश्वास है कि अगर राज्य हिसासे पूजीवादको दबा देगा, तो वह स्वय हिसाकी लपेटमे फस जायेगा और किसी भी समय अहिसाका विकास नही कर सकेगा।

मै स्वय तो यह अधिक पसन्द करूगा कि राज्यके हाथोमे सत्ता केन्द्रित न करके ट्रस्टीशिपकी भावनाका विस्तार किया जाय। क्योकि मेरी रायमे व्यक्तिगत स्वामित्वकी हिंसा राज्यकी हिसासे कम हानिकारक है। किन्तु अगर यह अनिवार्य हो, तो मै कमसे कम राजकीय स्वामित्वका समर्थन करूगा।

मुझे जो बात नापसन्द है वह है बलके आधार पर बना हुआ सगठन, और राज्य ऐसा ही सगठन है। स्वेच्छापूर्ण सगठन जरूर होना चाहिये।

मॉडर्न रिव्यू, १९३५, पृ० ४१२

मैने जिस लोकतत्र — अहिसा द्वारा स्थापित लोकतत्र — की कल्पना की है, उसमे सबके लिए समान स्वतत्रता होगी। हरएक अपना स्वामी होगा।

गाधीजीज़ कॉरस्पोडेन्स विथ दि गवर्नमेट, १९४२-४४, पृ० १७३

६

स्वशासन

जैसे हर देश खाने, पीने और सास लेनेके योग्य है, वैसे ही प्रत्येक राष्ट्र अपना प्रबध आप करनेके योग्य है, चाहे वह प्रबध कितना ही खराब हो।

यग इडिया, १५–१०–'३१

स्वशासनका अर्थ है सरकारी नियत्रणसे स्वतत्र होनेका सतत प्रयत्न, फिर सरकार विदेशी हो चाहे राष्ट्रीय। स्वराज्य-सरकार एक हास्यास्पद चीज बन जायगी, अगर जीवनकी हर छोटी बातके नियमनके लिए लोग उसके मुहकी तरफ देखने लगे।

यग इडिया, ६–८–'२५

स्वराज्यसे मेरा मतलब भारतके लोगोकी स्वीकृतिसे होनेवाले शासनसे है । वह स्वीकृति बालिग आबादीकी बडीसे बडी सख्या द्वारा निश्चित होनी चाहिये और उसमे देशमे पैदा हुए या बाहरसे आकर बसे हुए वे सब स्त्री-पुरुष शामिल होने चाहिये, जिन्होने शरीर-श्रम द्वारा राज्यकी सेवामे भाग लिया हो और अपना नाम मतदाताओकी सूचीमे लिखवानेका कष्ट उठाया हो। मै यह दिखा देनेकी आशा रखता हूं कि स्वराज्य चद आदमियोके सत्ता प्राप्त करनेसे नही आयेगा, परन्तु सत्ताका दुरुपयोग होने पर उसका मुकाबला करनेकी सबमे क्षमता उत्पन्न होनेसे आयेगा । दूसरे शब्दोमे, स्वराज्य जनसाधारणको सत्ताका नियमन और नियत्रण करनेकी उनकी शक्तिका भान करानेसे प्राप्त होगा।

यग इडिया, २९–१–'२५

राजनीतिक स्वाधीनतासे मेरा मतलब यह नही कि ब्रिटिश पार्लिया-मेन्ट या रूसके सोवियट शासन या इटलीके फासिस्ट राज्य या जर्मनीकी नाजी

हुकूमतकी नकल की जाय। उनकी प्रणालिया उनकी प्रकृतिके अनुकूल है। हमे अपनी प्रकृतिके अनुकूल प्रणाली अपनानी चाहिये। वह क्या हो सकती है, यह बताना मेरे बूतेकी बात नही। मैने उसे रामराज्य कहा है, अर्थात् उसमे शुद्ध नैतिक सत्ताके आधार पर आम जनताकी सर्वोपरि सत्ता होगी।

हरिजन, २–१–'३७

७

अल्पसंख्यकोंका अधिकार

बहुमतके नियमका सकुचित उपयोग है, अर्थात् तफसीलकी बातोमे बहुमतको मानना चाहिये। लेकिन बहुमत जो भी निर्णय कर दे, उसे मानना दासता है। लोकतत्र ऐसी रचना नही है, जिसमे लोग भेडोकी तरह आचरण करे। लोकतत्रमे व्यक्तिके विचारो और कार्यकी स्वतत्रताकी सावधानीसे रक्षा की जाती है। इसलिए मेरा विश्वास है कि अल्पमत जब तक काग्रेसके नाम पर काम नही करता, तब तक उसे बहुमतसे भिन्न आचरण करनेका पूरा हक है।

यग इडिया, २–३–'२२

अन्तरात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली बातोमे बहुमतके कानूनका कोई स्थान नही।

यग इडिया, ४–८–'२०

८
मताधिकार

गाधीजी २१ वर्ष या १८ वर्षसे भी ऊपरके सभी बालिग स्त्री-पुरुषोके मताधिकारके पक्षमे है। वे अपने जैसे बूढे आदमियोको इससे वचित रखना चाहते है। वे लोग मतदाताओके रूपमे निकम्मे है। भारत और शेष ससार उनके लिए नही है, जो मौतके किनारे बैठे है। उनके लिए मृत्यु है और युवकोके लिए जीवन। इस प्रकार जैसे वे १८ वर्षसे कमके युवक-युवतियोके लिए मनाही करना चाहते है, वैसे ही ५० वर्षसे ऊपरकी उम्रवालोके लिए भी मनाही करना चाहते है।

बालिग मताधिकारके साथ साथ या उससे भी पहले वे सबकी शिक्षाके पक्षमे है। यह जरूरी नही कि शिक्षा साहित्यकी ही हो। वह पूरकके रूपमे दी जा सकती है। लेकिन वे सबको उन सपन्न भाषाओका पर्याप्त ज्ञान देना चाहते है, जिन पर किसी भी देशको गर्व हो सकता है। हममे ईमानदारी और लगन हो तो नागरिकताके अधिकारोको समझनेकी शिक्षा थोडे दिनोका काम है।

हरिजन, २–३–'४७

९
प्रान्तीयता

गाधीजीकी राय है कि सब प्रान्तोके लोग भारतके है और भारत सबका है। शर्त एक ही है कि कोई दूसरे प्रान्तमे जाकर इसलिए नही बस सकता कि उसका शोषण करे, उस पर शासन करे या उसके हितोको किसी प्रकार हानि पहुचाये। सब भारतके सेवक है और सेवाकी भावनासे ही रहते हैं।

हरिजन, ७–९–'४७

जो गैर-बिहारी बिहारमे बसता है, उसे बिहारकी सेवाके लिए ही ऐसा करना चाहिये, न कि उसका शोषण करनेके लिए।

सरकारी नौकरियोका क्या हो? ऐसा लगता है कि अगर सभी प्रान्तोको सब दिशाओमे समान प्रगति करनी हो, तो सरकारी नौकरिया, सारे भारतकी तरक्कीके खयालसे, अधिकतर सम्बन्धित प्रान्तोके निवासियोके लिए सीमित होनी चाहिये।

बाहरसे आकर किसी भी प्रान्तमे बसनेवाले लोगोके बारेमे गाधीजीने कहा अवश्य ही उन्हे विदेशियोकी भाति अपनी अलग बस्ती नही बना लेनी चाहिये। 'रोममे रोमवालोकी तरह रहो' यह कहावत जहा तक रोमन बुराइयोसे दूर रहती है, वहा तक समझदारीसे भरी और फायदा पहुचानेवाली है। धीरे-धीरे एक-दूसरेके साथ घुलमिल जानेकी क्रियामे बुरी बाते छोड देने और अच्छी बाते पचा लेनेका ध्यान रखना चाहिये। मै बगालमे रहनेवाला गुजराती होऊ, तो बगालमे जो भी अच्छाई है वह सब मुझे तुरत हजम कर लेनी चाहिये और जो बुराई है उसे कभी छूना भी नही चाहिये। मुझे सदा बगालकी सेवा करनी चाहिये। स्वार्थी बन कर कभी उसका शोषण नही करना चाहिये। दूसरोसे बिलकुल अलग रहनेवाली हमारी प्रान्तीयता जीवनको बरबाद करनेवाली चीज है। मेरी कल्पनाके प्रान्तकी सीमा सारे भारतकी सीमा तक फैली हुई होगी, ताकि अन्तमे उसकी सीमा विश्वकी सीमा तक फैल जाय। अन्यथा उसका नाश हो जायगा।

हरिजन, २१–९–'४७

१०

राज्य धर्म-निरपेक्ष हो

बेशक राज्यको धर्म-निरपेक्ष होना चाहिये। उसमे रहनेवाले हर नागरिकको बिना किसी रुकावटके अपना धर्म माननेका हक होना चाहिये, जब तक वह देशके आम कानूनको मानता हो।

हरिजन, २४–८–'४७

ख — उसके वैदेशिक सम्बन्ध

१

ब्रिटेनके साथ साझेदारी

मै तो ब्रिटेनके साथ बराबरीका साझीदार बनकर उसके सुख-दु:खमे शरीक होना पसन्द करूगा। मगर वह साझा समानताके आधार पर होना चाहिये।

प्र० — क्या आपके विचारसे भारत अपने भाग्यको ब्रिटेनके साथ अविच्छेद्य रूपसे मिला देगा?

उ० — हा, जब तक वह साझीदार रहेगा। परन्तु यदि उसे यह पता चले कि यह साझेदारी दानव और वामनके बीचकी साझेदारी है या ससारकी दूसरी जातियोके शोषणके लिए इसका उपयोग होता है, तो वह इसे भग कर देगा। ध्येय यह है कि पृथ्वीके तमाम राष्ट्रोका एकसा कल्याण हो, और अगर वह सिद्ध नही हो सकता, तो मुझमे इतना धीरज है कि किसी भी तरह अस्वाभाविक साझेदारीका नाता जोड लेनेके बजाय मै युगो तक प्रतीक्षा करता रहू।

यग इडिया, १२–११–'३१

साझेदारीका यह अर्थ होना चाहिये कि शोषण बन्द हो जायगा। और अगर ग्रेट ब्रिटेन उसे बन्द न करे, तो भारतको यह सम्बन्ध तोड देना चाहिये।

दक्षिण अफ्रीकाके उपनिवेशके बारेमे क्या हो? मै हमारी साझेदारीके लिए पहलेसे इस शर्तका आग्रह नही करूगा कि ब्रिटेन उसके साथ अपने सम्बन्धोमे कायापलट कर ले। परन्तु मै उन दक्षिण अफ्रीकी जातियोकी मुक्तिके लिए अवश्य कोशिश करूगा, जिनके लिए मै अनुभवसे कह सकता हू कि वे शोषणकी चक्कीमे पिसी जा रही है। हमारी मुक्तिका

अर्थ उनकी मुक्ति होना चाहिये। परन्तु यह न हो सके तो मुझे ब्रिटेनके साथ साझेदारीका सबध कायम करनेमे कोई दिलचस्पी नही होगी, भले उससे भारतका लाभ ही होता हो। व्यक्तिगत रूपमे मै कहूगा कि जिस साझेदारीमे शोषण-मुक्त ससारका वचन दिया गया होगा, वह मेरे राष्ट्रके लिए गौरवकी वस्तु होगी और मै सदा उसे कायम रखूगा। परन्तु भारत शोषणकी किसी भी नीतिसे किसी तरह सहमत नही होगा।

यग इडिया, १९–११–'३१

२

दूसरे राष्ट्रोंके साथ सम्बन्ध

मेरे देशप्रेममे दूसरे देशोके बहिष्कारका भाव नही है। इसका उद्देश्य इतना ही नही है कि किसी दूसरे राष्ट्रको हानि न पहुचाई जाय, प्रत्युत यह भी है कि सच्चे अर्थमे सबको लाभ पहुचाया जाय। मेरी कल्पनाकी भारतकी स्वतत्रता ससारके लिए कभी खतरा नही बन सकती।

यग इडिया, ३–४–'२४

मै भारतको स्वतत्र और बलशाली इसलिए देखना चाहूगा कि दुनियाकी भलाईके लिए वह अपना स्वेच्छापूर्ण और शुद्ध बलिदान दे सके। शुद्ध होने पर व्यक्ति परिवारके लिए, परिवार गावके लिए, गाव जिलेके लिए, जिला प्रान्तके लिए, प्रान्त राष्ट्रके लिए और राष्ट्र सारे ससारके लिए अपनेको कुर्बान करता है।

यग इडिया, १७–९–'२५

पूर्ण स्वराज्यकी मेरी कल्पना अलग-थलग स्वतत्रताकी नही, बल्कि स्वस्थ और गौरवपूर्ण परस्परावलम्बनकी है।

यग इडिया, २६–३–'३१

स्वराज्यके जरिये हम सारे विश्वकी सेवा करेगे।

यग इडिया, १६–४–'३१

राज्य द्वारा बनाई गई सीमाओके बाहर अपने पडोसियोकी सेवा करनेकी कोई मर्यादा नही है। ईश्वरने उन सीमाओका कभी निर्माण नही किया।

यग इडिया, ३१–१२–'३१

३

आन्तर-राष्ट्रीय शान्तिसंघ

आन्तर-राष्ट्रीय सघ तभी बनेगा जब उसे बनानेवाले छोटे-बडे सभी राष्ट्र पूर्ण स्वतत्र हो। जिस हद तक सम्बधित राष्ट्रोने अहिंसाको पचा लिया होगा, उसी हद तक वे स्वतत्र होगे। एक बात निश्चित है। अहिसाके आधार पर निर्मित समाजमे छोटेसे छोटा राष्ट्र अपनेको बडेसे बडा महसूस करेगा। ऊच-नीचका विचार बिलकुल मिट जायगा।

हरिजन, ११–२–'३९

प्र० — क्या आपको यह सभावना दिखाई देती है कि ससार एक केन्द्रीय शासन-सस्थाके अधीन एक हो जायगा, जिसमे सब सदस्य-राष्ट्रोके प्रतिनिधि होगे?

उ० — इसी एक शर्त पर तो दुनिया जिन्दा रह सकती है।

हरिजन, ८–६–'४७

छठा विभाग : बुराईका विरोध

क — सत्याग्रहकी पद्धति

१

प्रेमका प्याला

तलवारको छोड देनेके बाद मेरे पास प्रेमके प्यालेके सिवा और कोई चीज नही, जिसे मै अपने विरोधियोके सामने पेश कर सकू। वह प्रेमका प्याला पेश करते ही मै उन्हे अपने नजदीक लानेकी आशा रखता हू।

यग इडिया, २–४–'३१

मेरा ध्येय सारी दुनियाके साथ मित्रताका सम्बन्ध कायम करना है और मै बडेसे बडे प्रेमके साथ अन्यायके बडेसे बडे विरोधका मेल बैठा सकता हू।

यग इडिया, १०–३–'२०

'दुष्टताके विरुद्ध सब प्रकारकी सच्ची लडाईका परित्याग' अहिंसा नही है। इसके विपरीत, मेरी कल्पनाकी अहिसा प्रतिशोधकी अपेक्षा अधिक सक्रिय और दुष्टताके खिलाफ सच्ची लडाई है, क्योकि प्रतिशोध कुदरती तौर पर दुष्टताको बढाता है। मेरा इरादा अनाचारोका मानसिक और इसलिए नैतिक विरोध करनेका है। मै अत्याचारीकी तलवारको बिलकुल भोथरी कर देना चाहता हू। यह काम मै तुलनामे अधिक तेज तलवारका उपयोग करके नही, बल्कि उसे इस बातमे निराश करके करूगा कि मै उसका शारीरिक विरोध करनेवाला हू। मै आत्मा द्वारा जो प्रतिरोध करूगा वह उसे घबडा देगा। पहले तो

उसे इससे चकाचौध होगी और अन्तमे वह उसे मान लेनेको मजबूर हो जायगा, ऐसा करके वह जलील नही होगा, बल्कि ऊचा उठेगा।

यग इडिया, ८–१०–'२५

२

सत्याग्रह

सत्याग्रहमे विरोधीको हानि पहुचानेकी जरा भी कल्पना नही है। सत्याग्रहका नियम यह है कि स्वय कष्ट उठाकर विरोधी पर विजय प्राप्त की जाय।

('साबरमती'–१३ से १५ जनवरी, १९२८को साबरमतीमे हुए आन्तर-राष्ट्रीय फेलोशिप सघके सम्मेलनकी रिपोर्टसे, पृ० १७९)

क्रोध या द्वेषरहित कष्ट-सहनके सूर्योदयके सामने कठोरसे कठोर हृदय और घोरसे घोर अज्ञान भी विलीन हो जायगा।

यग इडिया, १९–२–'२५

सक्रिय अहिसाका अर्थ ज्ञानपूर्वक कष्ट-सहन है। इसका मतलब यह नही कि दुराचारीकी मरजीके सामने चुपचाप गरदन झुका दी जाय, परन्तु इसका मतलब यह है कि अत्याचारीकी मरजीके विरुद्ध अपनी आत्माकी सारी शक्तिको लगा दिया जाय। जीवनके इस धर्मका आचरण करते हुए एक अकेले व्यक्तिके लिए भी यह सभव है कि वह अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्माकी रक्षाके लिए एक अन्यायी साम्राज्यकी सारी ताकतका मुकाबला करे और उस साम्राज्यके पतन या पुनरुद्धारकी बुनियाद डाले।

यग इडिया, ११–८–'२०

सत्याग्रहीका मार्ग साफ है। उसे सब प्रकारकी विरोधी धाराओके बीच अचल खडा रहना चाहिये। न उसे अधी कट्टरताके प्रति अधीर होना चाहिये और न दबे हुए लोगोके अविश्वास पर चिढना चाहिये।

उसे जानना चाहिये कि उसका कष्ट-सहन कट्टरसे कट्टर धर्मान्धके कठोरसे कठोर हृदयको भी पिघला देगा। उसे मालूम होना चाहिये कि जब राहतकी थोडी भी आशा नही होगी, तब कहीसे राहत मिल जायगी। कारण निर्दय-दयालु भगवानकी ऐसी ही लीला है कि वह अपने भक्तोको आगकी भट्टीमे झोककर उनकी परीक्षा लेता है और उन्हे धूलके समान नम्र बनानेमे उसे आनद आता है।

यग इडिया, ४–६–'२५

३

कायरताकी गुंजाइश नहीं

मेरा अहिंसा-धर्म एक सक्रिय बल है। इसमे कायरताकी या दुर्बलताकी भी गुजाइश नही है। किसी हिसक मनुष्यके किसी दिन अहिसक बननेकी आशा हो सकती है, मगर बुजदिलके लिए ऐसी कोई आशा नही होती। इसलिए मैंने इस पत्रमे अनेक बार कहा है कि यदि हमे कष्ट-सहनकी शक्तिसे अर्थात् अहिसासे अपनी स्त्रियोकी और अपने पूजास्थानोकी रक्षा करना नही आता, तो हममे — अगर हम मर्द है — कमसे कम लडकर इन सबकी रक्षा करनेकी शक्ति तो होनी चाहिये।

यग इडिया, १६–६–'२७

बचावके दो रास्ते है। सबसे अच्छा और सबसे कारगर तो यह है कि बिलकुल बचाव न किया जाय, बल्कि अपनी जगह पर कायम रहकर हर तरहके खतरेका सामना किया जाय। दूसरा उत्तम और उतना ही सम्मानपूर्ण तरीका यह है कि आत्मरक्षाके लिए बहादुरीसे शत्रु पर प्रहार किया जाय और अपने जीवनको बडेसे बडे खतरेमे डाला जाय।

यग इडिया, १८–१२–'२४

अहिंसा और कायरताका कोई मेल नही है। मै पूरी तरह शस्त्र-सज्जित मनुष्यके हृदयसे कायर होनेकी कल्पना कर सकता हू। हथियार

रखना कायरता नही तो कुछ डरका होना तो जाहिर करता ही है। परन्तु सच्ची अहिंसा शुद्ध निर्भयताके बिना असभव है।

हरिजन, १५–७–'३९

मै यह जरूर मानता हू कि जहा केवल कायरता और हिसाके बीच ही चुनाव करना हो, वहा मै हिसाकी सलाह दूगा। मै चाहूगा कि भारत अपनी इज्जतकी रक्षा करनेके लिए भले ही शस्त्रोका आश्रय ले, मगर कायर बनकर अपनी बेइज्जतीका नि सहाय साक्षी न बने या न रहे।

परन्तु मेरा विश्वास है कि अहिसा हिसासे कही श्रेष्ठ है, क्षमामे सजासे अधिक बहादुरी है। क्षमा वीरका भूषण है। परन्तु दण्ड देनेकी शक्ति होने पर भी दण्ड न देना सच्ची क्षमा है। जब कोई नि सहाय प्राणी क्षमा करनेका दभ करता है तब वह निरर्थक है। परन्तु मै भारतको नि सहाय नही मानता। बल शारीरिक क्षमतासे नही आता। वह अजेय सकल्प-शक्तिसे आता है।

यग इडिया, ११–८–'२०

४

दबाव नहीं

सत्याग्रहीका अन्यायीको परेशान करनेका इरादा कभी नही होता। वह उसे डराना भी नही चाहता, हमेशा उसके हृदयसे अपील करता है। यही होना भी चाहिये। सत्याग्रहीका उद्देश्य अन्याय करनेवालेको दबाना नही, बल्कि उसका हृदय-परिवर्तन करना होता है। उसे अपने तमाम कामोमे कृत्रिमतासे बचना चाहिये। वह स्वाभाविक रूपमे और भीतरी विश्वाससे कर्म करता है।

हरिजन, २५–३–'३९

ज्यो ही हम वस्तुओके बारेमे उसी प्रकार विचार करने लगते है जैसे हमारे विरोधी करते है, त्यो ही हम उनके साथ पूरा न्याय करनेकी

स्थितिमे आ जाते है। मै जानता हू कि इसके लिए अनासक्त मनोदशाकी आवश्यकता होती है और यह अवस्था प्राप्त करना बहुत कठिन है। फिर भी सत्याग्रहीके लिए यह नितान्त आवश्यक है। अगर हम खुदको अपने शत्रुकी स्थितिमे रखकर उसके दृष्टिकोणको समझे, तो ससारके तीन-चौथाई दु ख-दर्द और गलतफहमिया मिट जाय। तब या तो हम अपने शत्रुके साथ जल्दी सहमत हो जायेगे या उसके बारेमे उदारतापूर्वक विचार करेगे।

मैने देखा है कि जहा पूर्वग्रह युगो पुराने और कल्पित धार्मिक प्रमाणोके आधार पर खडे होते है, वहा केवल बुद्धिको अपील करनेसे काम नही चलता। बुद्धिको कष्ट-सहनका बल अवश्य मिलना चाहिये और कष्ट-सहनसे समझकी आखे खुलती है। इसलिए हमारे कामोमे जबर-दस्तीका लवलेश भी नही होना चाहिये। हमे अधीर नही बनना चाहिये, और हम जिन साधनोको अपना रहे है, उनमे हमारी अटल श्रद्धा होनी चाहिये।

यग इडिया, १९–३–'२५

हमारा आदर्श यह होना चाहिये कि विरोधीको प्रेमपूर्वक समझा कर और हमेशा उसके दिल और दिमाग पर असर डालकर उसका हृदय-परिवर्तन किया जाय। इसलिए हमे उन लोगोके प्रति, जो हमसे सहमत न हो, सदा शिष्टता और धीरजका बरताव करना चाहिये।

यग इडिया, २९–९–'२१

सत्याग्रही भयको सदाके लिए तिलाजलि दे देता है। इसलिए विरोधी पर विश्वास करनेमे वह कभी नही डरता। विरोधी उसे बीस बार धोखा दे तो भी सत्याग्रही उस पर इक्कीसवी बार भरोसा करनेको तैयार रहता है, क्योकि मानव-स्वभावमे सपूर्ण विश्वास रखना उसके अहिसा-धर्मका प्राण है।

('साबरमती' — साबरमती आश्रममे हुए आन्तर-राष्ट्रीय फेलोशिप सघके सम्मेलनकी १९२८ की रिपोर्टसे, पृ० २४६)

५

सत्याग्रहका बल कैसे बढ़ता है

विश्वासकी शक्ति ऐसी है कि अन्तमे मनुष्य वैसा ही बन जाता है जैसा वह अपनेको समझता है। अगर हम सत्याग्रही है और अपनेको बलवान मानकर सत्याग्रह करते है, तो इसके दो स्पष्ट परिणाम निकलते है। बलके विचारको पोषित करते हुए हम दिनोदिन अधिक बलवान बनते है। हमारी शक्तिमे वृद्धि होनेके कारण हमारा सत्याग्रह भी अधिक कारगर बन जाता है और हम उसे छोड देनेका मौका कभी नही ढूढते।

साबरमती, पृ० १७८

अनुभवने मुझे सिखाया है कि क्रमिक वृद्धिका कानून प्रत्येक पवित्र युद्ध पर लागू होता है। परन्तु सत्याग्रहके मामलेमे तो वह स्वयसिद्ध सत्य है। जैसे जैसे सत्याग्रह-सग्राम आगे बढता है, वैसे वैसे बहुतसे दूसरे तत्त्व उसका जोर बढानेमे मदद देते रहते है, और उसके जो परिणाम आते है उनकी सतत वृद्धि होती रहती है। वास्तवमे यह अनिवार्य है और सत्याग्रहके प्रथम सिद्धान्तोसे इसका चोली-दामनका सम्बन्ध है। कारण, सत्याग्रहमे अल्पतम अधिकतम भी होता है और चूकि वह कभी घट न सकनेवाला अल्पतम होता है, इसलिए पीछे हटनेका सवाल ही नही होता, कोई गति सम्भव हो तो वह केवल आगे ही बढनेकी हो सकती है। दूसरे युद्धोमे — भले वे पवित्र और अच्छे ध्येयके लिए लडे जाते हो — हमारी माग सही हो तो भी वह पहले जरा बढाकर रखी जाती है, ताकि आगे चलकर उसे घटानेकी गुजाइश रहे, इसलिए उन सब पर निरपवाद रूपसे क्रमिक वृद्धिका कानून लागू नही होता।

साबरमती, पृ० ३१९

६

सत्याग्रहियोंके लिए नियम

१ सत्याग्रहियोमे सामान्य ईमानदारी अवश्य होनी चाहिये।

२ उन्हे अपने सेनापतिके आदेशोका दिलसे पालन करना चाहिये, कोई बात मनमे छिपाकर नही रखनी चाहिये।

३ उन्हे न सिर्फ अपनी व्यक्तिगत स्वतत्रता, न केवल अपनी सम्पत्ति, जमीन, नकद पैसा वगैरा ही, बल्कि अपने घरवालोकी आजादी और सम्पत्ति — सब कुछ खोनेको तैयार रहना चाहिये, और गोलियो, सगीनो या उत्पीडन द्वारा धीरे-धीरे मृत्यु तकका प्रसन्नतापूर्वक सामना करनेकी उनकी तैयारी रहनी चाहिये।

४ उन्हे 'शत्रु' के प्रति या आपसमे मन, वचन या कर्मसे कोई हिंसाका भाव नही रखना चाहिये।

हरिजन, २२–१०–'३८

७

नम्रता

असहयोगी अगर नम्र नही है तो कुछ नही है। जो नम्रता और धर्मकी भावनासे थोडासा त्याग करता है, वह उसकी अल्पताको जल्दी ही अनुभव कर लेता है। एक बार त्यागके मार्ग पर अग्रसर हो जाने पर हम अपनी स्वार्थ-परायणताकी मात्राका पता लगा लेते है, और फिर हमे लगातार अधिक बलिदान करते रहना चाहिये और जब तक सपूर्ण आत्म-समर्पण न हो जाय तब तक सतोष नही मानना चाहिये।

यग इडिया, २९–९–'२१

८

उपवास

आमरण अनशन सत्याग्रहके कार्यक्रमका अभिन्न अग है और खास परिस्थितियोमे वही सत्याग्रहके शस्त्रागारका सबसे बडा और रामबाण शस्त्र है। लेकिन अच्छी तरह तालीम पाये बिना हर कोई ऐसा अनशन करनेके योग्य नही होता।

मै उन परिस्थितियोका, जिनमे उपवासका आश्रय लिया जा सकता है, और उसके लिए जरूरी तालीमका विवेचन करके इस लेखको बढाना नही चाहता। परोपकारके अपने रचनात्मक अर्थमे (मै 'प्रेम' शब्द काममे नही ला रहा हू, क्योकि वह बदनाम हो गया है) अहिसा सबसे बडी शक्ति है, क्योकि उसमे अन्यायीको कोई शारीरिक या भौतिक हानि पहुचाये बिना या पहुचानेका इरादा रखे बिना आत्म-पीडनकी बेहद गुजाइश रहती है। इस आत्म-पीडनका लक्ष्य सदा यह रहता है कि इसके द्वारा अन्यायीके उत्तम गुणोको जगाया जाय। आत्म-पीडनसे उसके दैवी स्वभावको जगाया जाता है, जब कि प्रतिशोध उसकी आसुरी वृत्तियोको जगाता है। उचित परिस्थितियोमे उपवास इस प्रकारकी उत्तम अपीलका काम देता है। अगर राजनीतिज्ञोको राजनीतिक मामलोमे इसकी उपयोगिता दिखाई नही देती, तो इसका कारण यह है कि इस बहुत बढिया हथियारका यह अनोखा प्रयोग है।

हरिजन, २६–७–'४२

अहिसाके पुजारीके शस्त्रागारमे उपवास आखिरी हथियार है। जब मानव-बुद्धि काम नही देती, तब वह उपवास करता है। उपवाससे प्रार्थनाकी वृत्ति तेजीसे जाग्रत होती है, अर्थात् उपवास एक आध्यात्मिक कर्म है और इसलिए उसका रुख ईश्वरके प्रति होता है। लोगोके जीवन पर ऐसे कर्मका प्रभाव यह होता है कि अगर उपवास करनेवाला उनका परिचित हो, तो उनका सोया हुआ अन्त करण जाग उठता है। परन्तु इसमे यह खतरा रहता है कि लोग अपने प्रियजनकी जान बचानेके लिए गलत

सहानुभूतिमे अपनी इच्छाके विरुद्ध कार्रवाई कर सकते है। इस खतरेका सामना करना पडेगा। जब हमे अपने सही रास्ते पर होनेका विश्वास हो, तो हमे सही कर्म करनेसे विचलित नही होना चाहिये। उससे केवल सावधानी ही बढ सकती है। इस प्रकारका उपवास अन्त करणकी आज्ञाको मानकर किया जाता है और इसलिए उसमे जल्दबाजीका डर कम होता है।

हरिजन, २१–१२–'४७

९

धरना न दिया जाय

कुछ विद्यार्थियोने धरना देनेके पुराने जगलीपनको फिरसे जिन्दा किया है। मै इसे 'जगलीपन' इसलिए कहता हू कि यह दबाव डालनेका भद्दा ढग है। इसमे कायरता भी है, क्योकि जो धरना देता है वह जानता है कि उसे कुचलकर कोई नही जायगा। इस कृत्यको हिंसात्मक कहना तो कठिन है, मगर यह उससे भी बदतर जरूर है। अगर हम अपने विरोधीसे लडते है, तो कमसे कम उसे बदलेमे वार करनेका मौका तो देते है। लेकिन जब हम उसे अपनेको कुचलकर निकलनेकी चुनौती देते है — यह जानते हुए कि वह ऐसा नही करेगा — तब हम उसे एक अत्यत विषम और अपमानजनक स्थितिमे रख देते है। मै जानता हू कि धरना देनेके अत्यधिक जोशमे विद्यार्थियोने कभी सोचा भी नही होगा कि यह कृत्य जगलीपन है। परन्तु जिससे यह आशा की जाती है कि वह अन्त करणकी आवाज पर चलेगा और भारी विपत्तियोका अकेले दम सामना करेगा, वह विचारहीन नही बन सकता। इसलिए असहयोगियोको हर काममे पहलेसे ही सचेत रहना चाहिये। उनके काममे कोई अधीरता, कोई जगलीपन, कोई गुस्ताखी और कोई अनुचित दबाव नही होना चाहिये।

यग इडिया, २–२–'२१

१०

जबरदस्ती या असहिष्णुता नहीं

हमारा अत्याचार, अगर हम अपनी इच्छा दूसरो पर लादे, उन मुट्ठीभर अग्रेजोके अत्याचारसे हजार गुना खराब होगा, जिन्होने नौकरशाहीको जन्म दिया है। उनका आतकवाद एक ऐसे अल्पमतका लादा हुआ है, जो विरोधके बीचमे अपने अस्तित्वके लिए सघर्ष करता है। हमारा आतकवाद बहुमतका लादा हुआ होगा, इसलिए वह उससे ज्यादा बुरा और सचमुच ज्यादा दानवी होगा। इसलिए हमे अपने सग्राममे से हर प्रकारकी जबरदस्तीको निकाल देना चाहिये। अगर हम असहयोगके सिद्धान्त पर स्वतत्रतापूर्वक डटे रहनेवाले थोडे ही लोग हो, तो हमे दूसरोको अपने विचारका बनानेकी कोशिशमे मरना पड सकता है। मगर यह तो कहा जायगा कि हमने अपने पक्षका बचाव और प्रतिनिधित्व सचाईके साथ किया। लेकिन अगर हम अपने झडेके नीचे दबावसे लोगोकी भरती करेगे, तो हम अपने ध्येयसे और ईश्वरसे इनकार करेगे, और अगर हम थोडे समयके लिए इसमे कामयाब भी होते दिखाई दे, तो भी यही कहा जायगा कि हमने ज्यादा बुरा आतकवाद कायम करनेमें कामयाबी हासिल की है।

अगर हम असहिष्णुतासे दूसरोके मतका दमन करेगे, तो हमारा पक्ष पिछड जायगा। कारण, उस सूरतमे हमे यह कभी मालूम नही हो पायेगा कि कौन हमारे साथ है और कौन हमारे विरुद्ध। इसलिए सफलताकी अपरिहार्य शर्त यह है कि हम अधिकसे अधिक मत-स्वातत्र्यको प्रोत्साहन दें। अपने मौजूदा 'स्वामियो'से हमे कमसे कम इतना सबक तो सीख ही लेना चाहिये। उनके जाब्ता फौजदारीमे उनके खिलाफ राय रखनेके लिए सख्त सजाए रखी गयी है। और उन्होने हमारे देशवासियोमे से कुछ अत्यत उदात्त व्यक्तियोको अपनी राय जाहिर करनेके कारण गिरफ्तार किया है। हमारा असहयोग इस प्रणालीके विरुद्ध एक खुला विद्रोह है।

मत पर लगाये गये इस प्रतिबधके विरुद्ध लडनेमे हमे वही प्रतिबध दूसरो पर लगानेका अपराधी नही बनना चाहिये।

यग इडिया, २७–१०–'२१

११

सत्याग्रह कौन करे ?

सत्याग्रहका मर्म यह है कि जिन्हे अत्याचार सहना पडे सिर्फ वे ही सत्याग्रह करे। ऐसे मामलोकी कल्पना की जा सकती है, जिनमें सहानुभूतिपूर्ण कहा जा सकनेवाला सत्याग्रह करना उचित हो। सत्याग्रहकी जडमे विचार यह है कि अन्यायीका हृदय-परिवर्तन किया जाय, उसमे न्यायबुद्धि जाग्रत की जाय और उसे भी यह दिखा दिया जाय कि पीडित पक्षके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोगके बिना अन्यायी मनचाहा अन्याय नही कर सकता। दोनो ही स्थितियोमे अगर लोग अपने ध्येयके लिए कष्ट सहनेको तैयार न हो, तो सत्याग्रहके रूपमे किसी बाहरी सहायतासे उनकी सच्ची मुक्ति नही हो सकती।

हरिजन, १०–१२–'३८

१२

सत्याग्रहका ढंग

सत्याग्रहके आन्दोलनमे लडाईका तरीका और रणनीतिका चुनाव — अर्थात् आगे बढे या पीछे हटे, सविनय कानून-भग करे या रचनात्मक कार्य तथा शुद्ध नि स्वार्थ मानव-सेवाके द्वारा अहिसक बल सगठित करे, आदि बातोका निर्णय — परिस्थितिकी विशेष आवश्यकता-ओके अनुसार किया जाता है। सत्याग्रहीके लिए जो भी योजना बना दी जाय उस पर उसे ठडे निश्चयके साथ अमल करना चाहिये, न उसे उत्तेजित होना चाहिये और न निराश होना चाहिये।

हरिजन, २७–५–'३९

अहिंसात्मक रणनीतिमे अनुशासनकी जगह तो होती ही है, लेकिन और भी बातोकी जरूरत होती है। सत्याग्रहकी सेनामे हरएक आदमी सिपाही और सेवक होता है। परन्तु विषम स्थितियोमे प्रत्येक सिपाहीको अपना सेनापति और नेता भी आप ही हो जाना पडता है। केवल अनुशासनसे नेता नही बना जा सकता। इसके लिए श्रद्धा और दृष्टि भी चाहिये।

हरिजन, २८–७–'४०

१३

संख्याका महत्त्व नहीं

हरएक बडे ध्येयके लिए जूझनेवालोकी सख्याका महत्त्व नही होता, जिन गुणोसे वे बने होते है वे ही गुण निर्णायक होते है। ससारके महानसे महान पुरुष हमेशा अपने ध्येय पर अकेले ही डटे रहे है।

यग इडिया, १०–११–'२९

१४

सत्याग्रह — अन्तिम उपाय

चूकि सत्याग्रह सीधी कार्रवाईके अत्यत बलशाली उपायोमे से एक है, इसलिए सत्याग्रही सत्याग्रहका आश्रय लेनेसे पहले और सब उपाय आजमा कर देख लेता है। इसके लिए वह सदा और निरतर सत्ता-धारियोके पास जायगा, लोकमतको प्रभावित और शिक्षित करेगा, जो उसकी बात सुनना चाहते है उन सबके सामने अपना मामला शान्ति और ठडे दिमागसे रखेगा और जब ये सब उपाय वह आजमा चुकेगा तभी सत्याग्रहका आश्रय लेगा। परन्तु जब उसे अन्तर्नादकी प्रेरक पुकार सुनाई देती है और वह सत्याग्रह छेड देता है, तब वह अपना सब कुछ दाव पर लगा देता है और पीछे कदम नही हटाता।

यग इडिया, २०–१०–'२७

ख — आर्थिक असमानता

१

असहयोग

अगर मै पूजीपति और मजदूरकी मूलभूत समानताको मान लेता हू, जैसा कि मुझे करना चाहिये, तो मुझे पूजीपतिके विनाशका लक्ष्य नही रखना चाहिये। मुझे उसके हृदय-परिवर्तनकी कोशिश करनी चाहिये। मेरे असहयोगसे उसकी आखे खुल जायगी और वह अपने अन्यायको समझ लेगा। यह आसानीसे प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है कि पूजीपतिके विनाशका परिणाम अतमे मजदूरका विनाश ही होगा, और जिस तरह कोई मनुष्य इतना बुरा नही होता कि कभी सुधर ही न सके, उसी तरह कोई मनुष्य इतना पूर्ण भी नही होता कि जिसे वह भूलसे बिलकुल बुरा मान लेता है उसका नाश उसके हाथो उचित ठहराया जा सके।

यग इडिया, २६–३–'३१

अग्रेजीमे एक बडा शक्तिशाली शब्द है और वह फ्रेंचमे भी है, ससारकी सभी भाषाओमे है — वह शब्द है 'नही', और हमे जो रहस्य हाथ लगा है वह यह है कि जब पूजीपति चाहते है कि मजदूर 'हा' कहे तब मजदूर उच्च स्वरसे 'नही' चिल्लाते है, अगर वे 'नही' कहना चाहते है। ज्यो ही मजदूरोको यह ज्ञान हो जाता है कि वे जब चाहे तब 'हा' और जब चाहे तब 'नही' कह सकते है, त्यो ही वे पूजीपतिके पजेसे मुक्त हो जाते है और पूजीपतिको उन्हे मनाना पडता है। पूजीपतिके पास तोप-बन्दूक और जहरीली गैस हो, तब भी कोई परवाहकी बात नही। अगर मजदूर अपने 'नही' पर अमल करके अपने गौरवको कायम रखे,

तो पूजीपति इन सबके होते हुए भी असहाय रहेगा। मजदूरोको बदलेमे वार करनेकी जरूरत नही होती, बल्कि वे गोलिया खाते और जहरीली गैस सहते हुए भी विरोधमे डटे रहते है और अपने 'नही' का आग्रह नही छोडते।

मजदूर अकसर असफल क्यो होते है? इसका सारा कारण यह है कि पूजीको अशक्त बना देनेके बजाय, जैसा मैने सुझाया है, मजदूर (और मै स्वय मजदूरकी हैसियतसे बोल रहा हू) स्वय पूजीको हथिया लेना चाहते है और ज्यादा बुरे अर्थमे पूजीपति बन जाना चाहते है। इसलिए पूजीपति, जो अच्छी तरह सुरक्षित और सगठित है, यह देखकर कि मजदूरोमे भी उस पदके कुछ उम्मीदवार है, उनमे से कुछका उपयोग मजदूरोको दबानेमे करते है। अगर हम पर सचमुच इस जादूका असर न हो, तो हम सब स्त्री-पुरुष इस अटल सत्यको बिना किसी कठिनाईके समझ और मान लेगे।

इडियाज केस फॉर स्वराज, पृ० ३९४

समान वितरणके सिद्धान्तकी जडमे यह सिद्धान्त होना चाहिये कि अमीरोके पास जो अनावश्यक दोलत है उसके वे सरक्षक है। कारण, इस सिद्धान्तके अनुसार वे अपने पडोसीसे ज्यादा एक रुपया भी नही रख सकते। यह स्थिति कैसे पैदा की जाय? अहिसक ढगसे? या धनवानोसे उनकी सपत्ति छीन ली जाय? ऐसा करनेके लिए कुदरती तौर पर हमे हिंसाका आश्रय लेना पडेगा। इस हिसात्मक कार्रवाईसे समाजका फायदा नही हो सकता। समाज इससे ज्यादा कगाल ही बनेगा, क्योकि ऐसा करके वह उस आदमीकी बुद्धिसे वचित हो जायगा जो धन इकट्ठा करना जानता है। इसलिए स्पष्ट ही अहिसात्मक तरीका श्रेष्ठ है। इसमे धनिकके पास उसका धन रहने दिया जायगा, वह उसमे से अपने लिए उतना ही खर्च करेगा जितनेकी उचित रूपमे उसे जरूरत होगी और बाकी धनका सरक्षक बन जायगा, जिसका समाजके लिए उपयोग होगा। इस तर्कमे सरक्षककी प्रामाणिकताको मान लिया गया है।

लेकिन अगर पूरी कोशिशके बावजूद धनी लोग सच्चे मानीमे गरीबोके सरक्षक नही बनते और गरीब अधिकाधिक कुचले जाते और भूखो मरते है, तो क्या किया जाय? इस पहेलीका हल ढूढते हुए मुझे यह सूझा है कि अहिसात्मक असहयोग और सविनय आज्ञाभग इसके सही और अचूक उपाय है। समाजमे अमीर लोग गरीबोके सहयोगके बगैर दौलत जमा नही कर सकते। अगर यह ज्ञान गरीबोको हो जाय और उनमे फैल जाय, तो वे बलवान बन जायेगे और यह जान जायेगे कि जिन भयकर असमानताओके कारण वे भुखमरीके किनारे पहुच गये है, उनसे अहिसा द्वारा कैसे वे अपनेको मुक्त कर सकते है।

हरिजन, २५–८–'४०

ज्यो ही काश्तकार अपनी ताकतको पहचान लेगे, त्यो ही जमीदारीकी बुराई खतम हो जायगी। अगर वे कह दे कि हम तब तक जमीन नही जोतेगे, जब तक हमे अच्छी तरह खाने, पहनने तथा अपनेको और अपने बच्चोको पढाने-लिखानेके काफी साधन नही मिल जाते, तो बेचारा जमीदार क्या कर सकता है? वास्तवमे मेहनतकश जो कुछ पैदा करता है उसका वही मालिक है। अगर मेहनत-मशक्कत करनेवाले बुद्धिपूर्वक एक हो जाय, तो उनकी ताकतका कोई मुकाबला नही कर सकता। यही कारण है कि जिससे मुझे वर्ग-विग्रहकी आवश्यकता दिखाई नही देती। अगर मुझे वह अनिवार्य मालूम होता, तो उसका प्रचार और उपदेश करनेमे मै सकोच न करता।

हरिजन, ५–१२–'३६

२
वर्ग-विग्रह

वर्ग-विग्रह भारतकी मूल प्रकृतिके विपरीत है, जो सबके साथ समान न्यायके बुनियादी अधिकारोके आधार पर साम्यवादका विकास करनेकी क्षमता रखता है। मेरी कल्पनाके रामराज्यमे राजा और रक दोनोके अधिकारोकी समान रूपसे रक्षा की जायगी।

आप विश्वास रखिये कि मै वर्ग-विग्रहको रोकनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगा दूगा।

पश्चिमके समाजवाद और साम्यवादका आधार कुछ ऐसे विचारो पर है, जो हमारे विचारोसे बुनियादी तौर पर भिन्न है। उनमे से एक विचार तो उनका यह विश्वास है कि मनुष्य-स्वभाव मूल रूपमे स्वार्थी है। मै इसे नही मानता, क्योकि मै जानता हू कि मनुष्य और पशुमे मौलिक भेद यह है कि मनुष्य अपनी आत्माकी पुकारसे प्रभावित हो सकता है, जो विकार उसमे और पशुमे समान रूपसे विद्यमान है, उनसे ऊपर उठ सकता है और इसलिए वह स्वार्थ और हिंसासे भी ऊपर उठ सकता है — क्योकि ये लक्षण उसके पशु-स्वभावके है, न कि उसकी अमर आत्माके। हिन्दू धर्मका यह बुनियादी विचार है, जिसकी इस सत्यकी खोजके पीछे बरसोकी तपस्या और साधना है। यही कारण है कि हमारे यहा ऐसे अनेक साधु-सत हो गये है, जिन्होने आत्माके रहस्योकी खोजमे अपने शरीर सुखा दिये और प्राण तक अर्पण कर दिये। इसलिए हमारे समाजवाद और साम्यवादका आधार अहिंसा पर तथा मजदूर और पूजीपति, जमीदार और किसान सबके प्रेमपूर्ण सहयोग पर होना चाहिये।

अमृतबाजार पत्रिका, २–८–'३४

विद्यार्थियोके उठाये हुए एक सवालके जवाबमे गाधीजीने कहा

मै जमीदार और पूजीपतिका उपयोग गरीबोकी सेवामे करना चाहूगा। हमे पूजीपतियोके लिए गरीबोके हितोका बलिदान हरगिज नही

करना चाहिये। हमे उनका खेल नही खेलना चाहिये। लेकिन हमे उन पर उस हद तक तो भरोसा करना ही चाहिये, जिस हद तक वे अपना लाभ गरीबोकी सेवामे अर्पित करनेकी क्षमता रखते है। वे ऊचे दर्जेकी अपीलसे अछूते नही रह सकते। मेरा सदा ही यह अनुभव रहा है कि सद्भाव-पूर्ण बात कही जाय, तो वह उनके दिलो पर जरूर असर करती है। अगर हम उनका विश्वास प्राप्त कर ले और उन्हे निश्चिन्त कर दे, तो हम देखेगे कि वे गरीबोको धीरे-धीरे अपनी दौलतमे हिस्सेदार बनानेके विरुद्ध नही है।

इसके सिवा, हमे अपने दिलसे भी पूछना चाहिये कि हमने गरीबोके साथ अपनेको कहा तक एक कर लिया है। क्या हमारे और करोडो लोगोके बीचकी खाई हमने पाट ली है? हमे काचके महलमे बैठकर दूसरो पर पत्थर नही फेकने चाहिये। आप गरीबोके जीवनमे कहा तक हिस्सा लेते है? मै स्वीकार करता हू कि मेरे लिए तो अभी तक यह एक आकाक्षा ही रही है। खुद हमने जीवनकी वे आदते, जिनके लिए हम पूजीपतियोको बदनाम मानते है, पूरी तरह नही छोडी है।

वर्ग-विग्रहका विचार मुझे अपील नही करता। भारतमे वर्ग-विग्रह न सिर्फ अनिवार्य नही है, बल्कि वह परिहार्य भी है, यदि हमने अहिसाका सन्देश समझ लिया है। जो वर्ग-विग्रहके अनिवार्य होनेकी बात करते है, उन्होने अहिसाके गूढ अर्थ नही समझे है या केवल ऊपर ऊपरसे ही समझे है।

हमे पश्चिमसे आये हुए लुभावने नारोको अपने पर हावी नही होने देना चाहिये। क्या हमारी कोई स्वतत्र पूर्वीय परपरा नही है? क्या हम पूजी और श्रमके प्रश्नका अपना ही हल नही खोज सकते? वर्णाश्रम व्यवस्था ऊच-नीचके भेदो और पूजी तथा श्रमके भेदोके बीच सामजस्य कायम करनेका उपाय नही तो और क्या है? इस विषयमे जो भी चीज पश्चिमसे आती है, उस पर हिसाका रग चढा हुआ होता है। मुझे उस पर आपत्ति इसलिए है कि मैने वह बरबादी देखी है, जो अन्तमे इस मार्ग पर चलनेसे होती है। आजकल पश्चिमके भी अधिक विचारशील लोग जिस गहरी खाईकी ओर यह प्रणाली तेजीसे जा रही है, उसे

देखकर स्तभित रह जाते है। और मेरा पश्चिममे अगर कोई असर है तो वह एक ऐसा हल ढूढनेके मेरे सतत प्रयत्नके कारण है, जिसमे हिसा और शोषणके कुचक्रसे निकलनेकी आशा निहित है। मै पश्चिमकी समाज-व्यवस्थाका सहानुभूतिपूर्ण विद्यार्थी रहा हू और मैने यह बात पाई है कि पश्चिमकी आत्मा जिस ज्वरसे पीडित है, उसकी जडमे सत्यकी अविश्रान्त खोज है। मै पश्चिमकी इस भावनाका आदर करता हू। हमे अपनी पूर्वीय सस्थाओका वैज्ञानिक खोजकी इसी भावनासे अध्ययन करना चाहिये। फिर हम एक ऐसे सच्चे समाजवाद और साम्यवादका विकास कर लेगे, जिसकी ससारने अभी तक कल्पना भी नही की होगी। यह मान लेना निश्चित ही गलत है कि जनसाधारणकी गरीबीके विषयमे पश्चिमी समाजवाद या साम्यवादने जो कह दिया वह ब्रह्मवाक्य है।

अमृतबाजार पत्रिका, ३–८–'३४

समस्या एक वर्गको दूसरे वर्गसे भिडा देनेकी नही है, मगर मजदूरोको शिक्षा देकर अपने गौरवका भान करानेकी है। आखिर तो धनवानोकी सख्या ससारमे आटेमे नमकके बराबर ही है। ज्यो ही मजदूर अपनी ताकतको पहचान लेगे और पहचान कर भी न्यायपूर्ण व्यवहार करेगे, त्यो ही पूजीपतियोका व्यवहार भी न्यायपूर्ण हो जायगा। मजदूरोको धनवानोके विरुद्ध भडकाना वर्गद्वेषको और उससे होनेवाले सारे बुरे परि-णामोको चिरस्थायी बनाना है। यह सघर्ष ऐसा कुचक्र है, जिसे हर कीमत पर टालना चाहिये। यह अपनी कमजोरीको कबूल करना है, अपनेको हीन समझनेकी निशानी है। जिस क्षण मजदूर अपना गौरव पहचान लेगे, उसी क्षण पैसेको अपना उचित स्थान मिल जायगा — अर्थात् वह मजदूरोके लिए धरोहर बन जायगा, क्योकि श्रम पैसेसे बडा है।

हरिजन, १६–१०–'४५

मै आम लोगोको यह नही सिखाता कि वे पूजीपतियोको अपना शत्रु समझे, परन्तु यह सिखाता हू कि वे खुद अपने शत्रु है।

यग इडिया, २६–११–'३१

३

मजदूर-संगठन

मजदूरोको सगठित करनेकी जरूरत

मजदूरोमे भाषण देते हुए गाधीजीने कहा कि बरसोसे जो बात मै कहता रहा हू, वह यह है कि श्रम पूजीसे कही ज्यादा श्रेष्ठ है। मै श्रम और पूजीका ब्याह करा देना चाहता हू। वे दोनो मिलकर आश्चर्यजनक काम कर सकते है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब मजदूर इतने समझदार हो जाय कि वे आपसमे सहयोग करे और फिर सम्मानपूर्ण समानताकी शर्तो पर पूजीपतियोके साथ सहयोग करे। पूजीपति मजदूरो पर नियत्रण इसलिए करते है कि वे मेलकी कला जानते है। बिखरी हुई पानीकी बूदे यो ही सूख जाती है, लेकिन वे एक-दूसरेसे मिलकर महासागर बनाती है, जिसकी चौडी छाती पर बडे-बडे जहाज चलते है। इसी तरह अगर ससारके किसी भागमे सारे मजदूर आपसमे मिल जाय, तो वे ऊची मजदूरीके लालचमे नही फसेगे या लाचार होकर थोडेसे पैसेकी तरफ आकर्षित नही होगे। मजदूरोका सच्चा और अहिसक सगठन ऐसे चुम्बकका काम करेगा, जो सारी आवश्यक पूजीको अपनी ओर खीच लेगा। फिर तो पूजीपति सरक्षक बनकर ही रह सकेगे। जब वह सुखद दिन आयेगा तब पूजीपति और मजदूरमे कोई भेद नही रहेगा। तब मजदूरोको काफी भोजन, अच्छे और साफ-सुथरे मकान, उनके बच्चोको हर प्रकारकी जरूरी शिक्षा, स्व-शिक्षाके लिए काफी अवकाश और उचित डॉक्टरी सहायता मिलेगी।

हरिजन, ७–९–'४७

एक शब्द नीतिके विषयमे कह दू। वह पूजीपति-विरोधी नही है। विचार यह है कि पूजीपतियोसे मजदूरोका वाजिब हिस्सा लिया जाय, अधिक न लिया जाय, और वह भी पूजीपतियोको निर्बल और लाचार

बनाकर नही, बल्कि मजदूरोमे भीतरसे सुधार करके और उनकी अपनी ही आत्म-जागृतिसे, गैर-मजदूर नेताओकी चालाकी और चालबाजियोसे भी नही, बल्कि मजदूरोको यह शिक्षा देकर कि वे स्वय अपने ही नेतृत्वका और अपने ही आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी सगठनका विकास करे। उसका सीधा लक्ष्य राजनीतिक बिलकुल नही है। उसका प्रत्यक्ष ध्येय भीतरी सुधार और भीतरी बलका विकास है। जब यह विकास सपूर्ण हो जायगा, तो उसका अप्रत्यक्ष राजनीतिक परिणाम कुदरती तौर पर जबरदस्त होगा।

इसलिए मजदूर जब स्वावलम्बी इकाई बन जायेगे, तब किसी प्रथम श्रेणीके महत्त्वकी प्रत्यक्ष राजनीतिक सत्ताके लिए उनका उपयोग करने या उन्हे सगठित करनेका मेरा कोई दूरका भी विचार नही है। मेरी रायमे मजदूरोको राजनीतिज्ञोके हाथोमे राजनीतिक शतरजका मोहरा नही बनना चाहिये। उन्हे केवल अपने ही बलके आधार पर उस शतरज पर अपना प्रभुत्व कायम करना चाहिये।

('इज इडिया डिफरेट?' मे दिये गये १० मई, १९२७ के एक पत्रसे, यह एस० सकलतवाला और गाधीजीके बीचका पत्रव्यवहार है, इसे ग्रेट ब्रिटेनके साम्यवादी दलने १६, किग स्ट्रीट, लदनसे १९२७ मे प्रकाशित किया था, पृ० २५)

मिल-मजदूरोके लिए सहायक धंधे

मिल-मजदूरका जीवन सदा उतार-चढावसे भरा रहता है। बचत और किफायत बेशक इसका एक उपाय है और उसकी उपेक्षा करना अपराध होगा। परन्तु इस तरह की हुई बचतसे समस्या हल नही होती, क्योकि हम देखते है कि हमारे मिल-मजदूर हमेशा मुश्किलसे पेट भर पाते है। इसके सिवा, हडताल या बेकारीके दिनोमे घर पर बेकार बैठे रहनेसे मजदूरका काम कभी नही चल सकता। उसके आत्म-विश्वास और स्वाभिमानके लिए मजबूरन् बेकार रहनेसे बढकर हानिकारक और कोई चीज नही। मजदूर-वर्गको तब तक न तो सुरक्षितता अनुभव होगी और न उनमे आत्म-विश्वास और बलकी भावनाका विकास होगा, जब

तक उन लोगोके पास सकट-कालमे आजीविकाका कोई अचूक सहायक साधन न होगा।

मिल-मजदूरोके लिए सहायक धधेका विचार मुझे पहले-पहल तब सूझा था, जब १९१८ मे अहमदाबादके मिल-मजदूरोकी तेईस दिनकी ऐतिहासिक हडताल हुई थी। मुझे उस समय यह सूझा था कि अगर हडतालको सफल बनाना है, तो मिल-मजदूरोके पास कोई ऐसा धधा होना ही चाहिये, जिससे वे पूरा या अधूरा गुजारा कर सके। उन्हे दान पर निर्भर नही रहना चाहिये। हडतालके दिनोमे उनमे से कई लोग मामूली मजदूरी पर लगा दिये गये थे। उसी तरह मैने अपना यह सुझाव रखा था कि मिल-मजदूरोको कोई सहायक धधा सिखाया जाय। लेकिन मेरा सुझाव दूसरी हडतालके आने तक खटाईमे ही पडा रहा। तब कुछ शुरुआत की गई। परन्तु सहायक धधे सिखलानेके लिए कोई कारगर सगठन एकदम पैदा कर लेना कठिन था। दूसरी हडताल खतम होनेके साथ अनुकूल धधे जुटाने और सिखानेका प्रयत्न भी समाप्त हो गया।

अब (अहमदाबादका) मजदूर-सघ इस दिशामे सगठित और व्यवस्थित प्रयत्न कर रहा है। मिल-मजदूरोको ऐसे धन्धे चुनना सिखाया जा रहा है, जिन्हे वे फुरसतके समय घरमे बैठकर कर सके और जिनसे उन्हे बेकारीके समय ठोस राहत मिल सके। वे धधे है कपासकी ओटाई, सफाई, कताई और बुनाई, दर्जीका काम, साबुन और कागज बनाना, टाइप जमाना वगैरा।

मेरा यह मत है कि मजदूर-वर्गके लिए कई तरहके धधोका व्यावहारिक ज्ञान वैसा ही है, जैसा पूजीपतियोके लिए रुपया-पैसा। परन्तु मुश्किल यह है कि जहा आज पूजीपति सगठित है और उनकी जड खूब जमी हुई दिखाई देती है, वहा मजदूरोका यह हाल नही है। मजदूरकी बुद्धि उसके जड और यात्रिक धधेसे कुठित हो जाती है, क्योकि उसमे उसे अपने मस्तिष्कका विकास करनेकी बहुत कम गुजाइश या मौका मिलता है। इस कारण उसे अपने बल और सपूर्ण गौरवका भान नही हुआ है। उसे यह मानना सिखाया गया है कि उसकी मजदूरी पूजीपति तय करेगे, वह खुद अपनी शर्तो पर मजदूरीकी माग नही कर सकता। वह केवल सही

तरीकेसे सगठित हो जाय, अपनी बुद्धिको तीक्ष्ण बना ले और कई तरहके धधे सीख ले, तो वह अपना सिर ऊचा रखकर चल सकेगा और उसे गुजारेके साधनके अभावका कभी डर नही रहेगा।

हरिजन, ३–७–'३७

४

सरकारी कार्रवाई

कानून द्वारा जब्ती

मेरे खयालसे भारत वर्षो तक ऐसे कानून पास करनेमे लगा रहेगा, जिनसे पद-दलित और पतित लोगोका उस दलदलसे उद्धार हो सके, जिसमे पूजीपतियोने, जमीदारोने, तथाकथित उच्च वर्गोने और बादमे वैज्ञानिक ढगसे अग्रेज शासकोने उन्हे फसा दिया है। अगर हमे इन लोगोका इस दलदलसे उद्धार करना है, तो अपने घरको व्यवस्थित करनेके लिए भारतकी राष्ट्रीय सरकारका यह अनिवार्य कर्तव्य होगा कि इन लोगोको लगातार तरजीह दे और वे जिस भारसे कुचले जा रहे है उससे उन्हे मुक्त करे। और अगर जमीदारो, धनवानो और जो लोग आज विशेषाधिकार भोग रहे है उनको — मुझे इसकी चिन्ता नही कि वे यूरोपीय है या हिन्दुस्तानी — ऐसा मालूम हो कि उनके साथ भेदभाव बरता जा रहा है, तो मेरी उनके साथ हमदर्दी होगी। मगर मै उनकी, सभव हो तो भी, मदद नही कर सकूगा। क्योकि इस प्रक्रियामे मै उनकी सहायता चाहूगा, और उनकी सहायताके बिना इन लोगोको दलदलसे निकालकर ऊचा उठाना सभव नही होगा।

आप अछूतोकी ही हालतको ले लीजिये। अगर कानून उनकी मदद करके मीलोका क्षेत्र उनके लिए अलग रख दे तो कैसा अच्छा हो? अभी तो उनके पास कोई जमीन नही है। वे सर्वथा तथाकथित उच्च वर्गोकी दया पर और मै यह भी कहूगा कि राज्यकी दया पर

जीते है। वे एक मुहल्लेसे दूसरे मुहल्लेमे हटाये जा सकते है, और न तो इसकी कोई शिकायत हो सकती है, न वे कानूनकी मदद ले सकते है। तो धारासभाका पहला काम यह देखना होगा कि कुछ हद तक समताकी स्थिति लानेके लिए इन लोगोको खुले हाथो सहायता दी जाय।

यह सहायता किसकी जेबसे निकलेगी? स्वर्गसे तो नही टपक पडेगी। स्वर्गसे राज्यके खातिर रुपया नही बरसेगा। कुदरती तौर पर सहायताके लिए रुपया रुपयेवाले वर्गोसे आयेगा और उनमे यूरोपीय भी शरीक होगे।

मेरे पास दूसरा फार्मूला भी है, जो जल्दीमे तैयार किया गया है। क्योकि मैने इसका मसौदा लार्ड रीडिग और सर तेजबहादुर सप्रूको सुनते-सुनते बनाया है। यह वर्तमान अधिकारोके सम्बन्धमे है:

> "ऐसे किसी मौजूदा हितमे, जो उचित रूपमे प्राप्त किया गया है और जिसका आम तौर पर राष्ट्रके उत्तम हितोसे विरोध नही है, दखल नही दिया जायगा, और अगर दिया जायगा तो उन हितो पर लागू होनेवाले कानूनके अनुसार ही दिया जायगा।"

अवश्य ही मेरे दिमागमे वह चीज है, जो आप काग्रेसके प्रस्तावमे देखेग। उसका सम्बन्ध उन जिम्मेदारियोंसे है, जिन्हे आज ब्रिटिश सरकार पूरा कर रही है और जिन्हे कलकी आनेवाली सरकार अपने सिर लेगी। जैसे हमारी यह माग है कि इन जिम्मेदारियोको हम ले इससे पहले उनकी निष्पक्ष अदालतसे जाच करा ली जाय, ठीक वैसे ही जरूरत पडने पर मौजूदा हितोकी भी अदालती जाच होनी चाहिये। इसलिए प्रश्न उनको खारिज कर देनेका नही, परन्तु सिर्फ जाचके बाद स्वीकार करनेका है। यहा हममे कुछ लोग ऐसे है जिन्होने यूरोपीयोको प्राप्त विशेषाधिकारो और एकाधिकारोका अध्ययन किया है। परन्तु केवल यूरोपीयोकी ही बात नही है, भारतीय भी है—और मेरे खयालमे नि सन्देह ऐसे कई भारतीय है—जिनके पास आज ऐसी जमीन है जो उन्हे किसी राष्ट्रसेवाके लिए नही दी गई है। मै तो यह भी नही कह सकता कि वह सरकारकी किसी सेवाके बदलेमे उन्हे दी गई है, क्योकि मेरे खयालसे

उनकी सेवासे सरकारको कोई लाभ नही हुआ है। वह केवल किसी सरकारी अधिकारीकी सेवाके बदलेमे उन्हे दे दी गई है। और अगर आप मुझे यह कहे कि इन रियायतो और विशेषाधिकारोकी जाच करना राज्यका काम नही है, तो मै फिर आपसे कहूगा कि तब महरूमो और वचितोके हितमे सरकारी तत्रको चलाना असभव हो जायगा। इससे आप समझ लेगे कि यहा कोई बात केवल यूरोपीयोके सम्बन्धमे नही कही गई है। दूसरा फार्मूला भी जितना भारतीयो पर, उदाहरणार्थ सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर फीरोज सेठना पर, लागू होता है, उतना ही यूरोपीयो पर होता है। उन्हे जो रियायते मिली हुई है, वे अगर इसलिए मिली है कि उन्होने राज्यके तत्कालीन अधिकारियोकी कोई सेवा की थी और इसलिए उन्हे मीलो जमीन मिल गई है, तो मेरे हाथमे सरकार आने पर मै तुरन्त उनसे वे रियायते और जमीने छीन लूगा। उस समय मै यह लिहाज नही रखूगा कि वे भारतीय है। उतनी ही मुस्तैदीसे मै सर ह्यूबर्ट कार या मि० बेन्थलसे उनकी सपत्ति छीन लूगा, भले वे कितने ही भले और मेरे प्रति मित्रभाव रखनेवाले क्यो न हो। कानून किसी भी व्यक्तिका लिहाज नही रखेगा। मै आपको यह आश्वासन देता हू। इससे आगे मै नही जा सकता। तो 'उचित रूपमे प्राप्त किया गया' का वस्तुत यह अर्थ है कि प्रत्येक हित निष्कलक होना चाहिये, सीजरकी पत्नीकी तरह सदेहसे परे होना चाहिये। इसलिए हम यह आशा रखेगे कि जब ये चीजे सरकारके ध्यानमे लायी जायगी, तब इन सबकी जाच की जायगी।

इसके बाद आपके सामने 'जिसका राष्ट्रके उत्तम हितोसे विरोध नही है' वाली बात है। मेरे ध्यानमे कुछ ऐसे एकाधिकार है, जो प्राप्त तो बेशक उचित रूपमे ही किये गये है, मगर वे राष्ट्रके उत्तम हितोके विरुद्ध है। मै आपको एक उदाहरण दूगा, जिससे आपका कुछ मनोरजन तो होगा, मगर उसका आधार स्वाभाविक है। आप इस सफेद हाथी (देश पर भारी बोझ डालनेवाली चीज) को ही लीजिये, जिसे नई दिल्ली कहा जाता है। इस पर करोडो रुपये खर्च किये गये है। मान लीजिये कि भावी सरकार इस नतीजे पर पहुचती है कि जब यह सफेद

हाथी हमारे पास है ही, तो इसका कोई उपयोग कर लिया जाय। कल्पना कीजिये कि पुरानी दिल्लीमे प्लेग या हैजा फैला हुआ है और हमे गरीब लोगोके लिए अस्पताल चाहिये। तब हम क्या करेगे? क्या आप समझते है कि राष्ट्रीय सरकार अस्पताल वगैरा बना सकेगी? ऐसा नही हो सकेगा। हम इन इमारतो पर अधिकार कर लेंगे और इन प्लेग-पीडित लोगोको वहा रखकर अस्पतालोकी तरह उनका उपयोग करेगे, क्योकि मेरा दावा है कि ये इमारते राष्ट्रके उत्तम हितोके विरुद्ध है। वे करोडो भारतीयोका प्रतिनिधित्व नही करती। वे उन धनवानोका प्रतिनिधित्व कर सकती है, जो यहा मेज पर बैठे है, वे नवाब साहब भोपाल या सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास या सर फीरोज सेठना या सर तेजबहादुर सप्रूका प्रतिनिधित्व कर सकती है। मगर वे उन लोगोका प्रतिनिधित्व नही कर सकती, जिन्हे सोनेके लिए कोई जगह और खानेके लिए रोटीका एक टुकडा भी नसीब नही होता। अगर राष्ट्रीय सरकार इस परिणाम पर पहुचे कि वह स्थान अनावश्यक है, तो वह छीन लिया जायगा — भले वह किन्ही भी लोगोके हाथमे हो। और मै आपको बता दू कि बगैर किसी मुआवजेके छीन लिया जायगा। क्योकि अगर आप इस सरकारसे क्षतिपूर्ति करवाना चाहेगे, तो उसे अहमदको लूटकर महमदको देना होगा, जो उसके लिए असभव होगा।

अगर काग्रेसकी कल्पनाकी सरकार अस्तित्वमे आती हे, तो यह कडवा घूट पीना ही पडेगा।

[लदनमे गोलमेज परिषद्के सामने दिये गये एक भाषणसे]

दि नेशन्स व्हाइस, १९३२, पृ० ७१

ग — सामाजिक अव्यवस्था

१

दंगे

शान्ति-सेना

दगोको अहिंसक ढगसे शान्त करनेके लिए दिलमे सच्ची अहिंसा होनी चाहिये, ऐसी अहिंसा जो दोषी दगाईका भी प्रेमपूर्वक आलिगन करती है। ऐसी वृत्ति एकाएक नही पैदा हो सकती। वह तभी आ सकती है जब उसके लिए धीरजके साथ लम्बा प्रयत्न किया जाय। और वह प्रयत्न शान्तिकालमे किया जाना चाहिये। शान्ति-सेनाके भावी सिपाहीको अपने पडोसके तथाकथित गुडोके गहरे सम्पर्कमे आना और उनसे परिचय बढाना चाहिये। वह सबसे और सब उससे परिचित होने चाहिये और उसे अपनी प्रेमपूर्ण और नि स्वार्थ सेवा द्वारा सबके हृदय जीत लेने चाहिये। समाजका कोई हिस्सा इतना तुच्छ और हलका न माना जाय, जिससे वे घुलमिल न सके। गुडे आकाशसे नही टपक पडते और न वे भूतोकी तरह जमीनसे निकल आते है। वे समाजकी कुव्यवस्थाकी ही उपज है और इसलिए उनके अस्तित्वके लिए समाज जिम्मेदार है। दूसरे शब्दोमे, वे हमारे समाजके रोगकी निशानी समझे जाने चाहिये। रोगको दूर करनेके लिए पहले हमें उसके असली कारणका पता जरूर लगाना चाहिये। उसके बाद इलाजका पता लगाना ज्यादा आसान काम हो जायगा।

हरिजन, १५–९–’४०

ऊपरके कथनसे कोई यह न समझे कि अहिंसक सेना (शान्ति-सेना) उन्हीके लिए खुली है, जो अपने जीवनमे अहिंसाके भीतर रहे तमाम अर्थोका कडाईसे पालन करते है। यह उन सबके लिए खुली है,

जो उन अर्थोको स्वीकार करते है और उन पर अमल करनेका अधिकाधिक प्रयत्न करते है। पूर्ण अहिसक लोगोकी शान्ति-सेना कभी नही बनेगी। वह उन्ही लोगोकी होगी, जो अहिंसाके पालनकी ईमानदारीसे कोशिश करेगे।

हरिजन, २१–७–'४०

अहिंसक सेना (शान्ति-सेना) सशस्त्र लोगोकी तरह नही है। वह शान्ति और दगोके समय काम करती है। ये लोग सतत ऐसी रचनात्मक प्रवृत्तियोमे लगे रहेगे, जिनसे दगे असभव हो जाते है। उनका कर्तव्य होगा कि दोनो लडनेवाली जातियोको इकट्ठा करनेके मौके ढूढे, शान्तिका प्रचार करते रहे और ऐसे कामोमे लगे रहे जिनसे अपने-अपने क्षेत्रमे वे हरएक स्त्री-पुरुष, बच्चे और बालिगके सम्पर्कमें आवे और बने रहे। ऐसी सेनाको किसी भी सकटका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिये और भीडके क्रोधको शान्त करनेके लिए काफी सख्यामे प्राणोकी बाजी लगा देनी चाहिये। इस प्रकारकी कुछ सौ या कुछ हजार शुद्ध मृत्युए दगोको हमेशाके लिए खतम कर देगी। अवश्य ही इस प्रकारके पागलपनसे निपटनेके लिए पुलिस और फौजके प्रदर्शन और उनके उपयोगकी अपेक्षा कुछ सौ नौजवान स्त्री-पुरुषोका इरादतन् अपने-आपको क्रोधित भीडके हवाले कर देना कही सस्ता और बहादुराना तरीका होगा।

हरिजन, २६–३–'३८

कुछ समय हुआ, मैंने ऐसी शान्ति-सेना बनानेका सुझाव रखा था, जिसके सदस्य खास तौर पर साम्प्रदायिक दगोसे निपटनेके लिए अपने प्राणो तककी बाजी लगा देनेको तैयार हो। विचार यह था कि इस सेनाको पुलिसका ही नही, फौजका भी स्थान ले लेना चाहिये।

इसलिए हम देखे कि प्रस्तावित शान्ति-सेनाके सदस्योकी क्या योग्यताए होनी चाहिये :

१ शान्ति-सेनाका सदस्य पुरुष हो या स्त्री, अहिसामे उसकी सजीव श्रद्धा होनी चाहिये। यह ईश्वरमे सजीव श्रद्धा हुए बिना असभव है।

अहिसक मनुष्य ईश्वरकी कृपा और शक्तिके बिना कुछ नही कर सकता। इसके बगैर उसमे क्रोध, भय और प्रतिशोध-रहित होकर मरनेका साहस नही आयेगा। यह साहस इस विश्वाससे आता है कि ईश्वर सबके हृदयोमे निवास करता है और ईश्वरके होते हुए किसीका डर नही होना चाहिये। ईश्वरकी सर्व-व्यापकताके ज्ञानका यह भी अर्थ है कि जो विरोधी या गुडे कहे जा सकते है, उनके प्राणोका भी आदर किया जाय। यह प्रस्तावित हस्तक्षेप ऐसी क्रिया है, जिससे क्रुद्ध मनुष्य पर जब शैतान सवार हो जाता है, तब उसे शान्त किया जा सकता है।

२ शान्तिके इस दूतमे ससारके सब मुख्य धर्मोके लिए समान आदरभाव होना चाहिये। इस प्रकार यदि वह हिन्दू है, तो वह भारतमे प्रचलित दूसरे धर्मोका आदर करेगा। इसलिए उसे इस देशमे माने जानेवाले भिन्न-भिन्न धर्मोके सामान्य सिद्धान्तोकी जानकारी होनी चाहिये।

३ आम तौर पर शान्तिका यह कार्य स्थानीय लोग अपने-अपने मुहल्लोमे ही कर सकते है।

४ काम अकेले या समूहोमे भी किया जा सकता है। इसलिए किसीको साथियोके लिए ठहरनेकी जरूरत नही। फिर भी लोग अपने-अपने मुहल्लोमे कुदरती तौर पर साथी जुटा लेगे और स्थानीय सेना बना लेगे।

५ यह शान्तिदूत व्यक्तिगत सेवा द्वारा अपने मुहल्ले या चुने हुए हलकेमे लोगोसे ऐसा सम्पर्क स्थापित कर लेगा कि जब वह खराब परि-स्थितियोका मुकाबला करनेके लिए सामने आये तब दगाइयोको वह ऐसा अजनबी न लगे, जिसे शककी नजरसे देखा जाय या अवाछनीय व्यक्ति माना जाय।

६ यह कहनेकी जरूरत नही कि शान्तिदूतका चरित्र निष्कलक होना चाहिये और वह अपनी कठोर निष्पक्षताके लिए मशहूर होना चाहिये।

७ आम तौर पर आनेवाले तूफानोकी चेतावनी पहलेसे मिल जाती है। अगर चेतावनी मिल जाय तो शान्ति-सेना आगके भडक उठने तक बाट देखती न रहे, बल्कि पहलेसे ही स्थितिको सभालनेकी कोशिश करे।

८ अगर यह आन्दोलन फैल जाय, तो पूरा समय लगानेवाले कुछ कार्यकर्ताओका होना अच्छा रहेगा। लेकिन ऐसा होना नितान्त आवश्यक नही है। विचार यह है कि अधिकसे अधिक अच्छे और सच्चे स्त्री-पुरुष रखे जाय। यह तभी हो सकता है कि जब स्वयसेवक उन लोगोमे से आये, जो जीवनके विविध कार्योमे लगे हुए है, परन्तु जिनके पास इतना अवकाश है कि वे अपने-अपने क्षेत्रोमे रहनेवाले लोगोके साथ मैत्री-सम्बन्ध कायम कर सके और ऐसी सब योग्यताए रखते हो जो शान्ति-सेनाके सदस्यमे होनी चाहिये।

९ प्रस्तावित सेनाके लोगोके पहननेकी खास पोशाक होनी चाहिये, ताकि धीरे-धीरे उन्हे जरा भी कठिनाईके बिना पहचाना जा सके।

ये केवल साधारण सुझाव है। प्रत्येक केन्द्र यहा बताये हुए आधार पर अपना-अपना विधान तैयार कर सकता है।

हरिजन, १८–६–'३८

कुछ समय पहले मेरे कहने पर शान्तिदल बनानेका प्रयत्न किया गया था। मगर उसका कोई नतीजा नही निकला। फिर भी उससे यह सीखनेको मिला कि शान्तिदल बडे पैमाने पर काम नही कर सकते। साधारणत बलके आधार पर बने किसी बडे स्वयसेवक-दलको अच्छी तरह चलानेमे अनुशासन भग होने पर बल-प्रयोगकी गुजाइश मानी जाती है। ऐसी सस्थाओमे मनुष्यके चरित्र पर कोई जोर नही दिया जाता। शारीरिक योग्यता ही मुख्य चीज होती है। अहिंसक दलमे उलटी बात होती है। उसमे चरित्र या आत्मबल सब-कुछ होना चाहिये और शरीरको गौण स्थान मिलना चाहिये। ऐसे बहुतसे आदमियोका मिलना कठिन है। इसलिए अहिसक दलको यदि कारगर बनना है, तो वह छोटा ही होना चाहिये। ऐसे दल सब जगह बिखरे हुए हो सकते है, हरएक गाव या मुहल्लेके लिए एक दल हो सकता है। दलके सदस्य एक-दूसरेसे भलीभाति परिचित होने चाहिये। प्रत्येक दल अपना मुखिया आप ही चुन लेगा। सब सदस्योका दर्जा एकसा होगा। मगर जहा हरएक व्यक्ति वही काम करता हो वहा एक आदमी ऐसा होना ही चाहिये जिसके अनुशासनमे सब रहे, नही तो कामकी हानि होगी। जहा दो या अधिक दल हो, वहा

नेताओंको आपसमें सलाह करके कामकी एकसी दिशा तय करनी चाहिये। यही सफलताकी कुंजी है।

अगर इस ढंग पर अहिंसक स्वयंसेवक-दल बनाये जायं, तो वे आसानीसे झगडोंको बन्द कर सकते हैं। इन दलोंके लिए अखाडोंमें दी जानेवाली पूरी शारीरिक तालीमकी जरूरत नहीं होगी, परन्तु उसका कुछ भाग आवश्यक होगा।

किन्तु इन तमाम शान्तिदलोंमें एक बात सामान्य होनी चाहिये, और वह है ईश्वरमें अनन्य श्रद्धा। वही एकमात्र सच्चा साथी और कर्ता है। उसमें श्रद्धा हुए बिना ये शान्तिदल निर्जीव होंगे। हम ईश्वरको किसी भी नामसे पुकारें, हमें यह महसूस करना चाहिये कि हम उसीके बल पर काम कर सकते हैं। ऐसा आदमी कभी किसी दूसरेकी जान नहीं लेगा। जरूरत पडने पर वह अपनी जान दे देगा और इस प्रकार मृत्यु पर विजय पाकर अमर बन जायगा।

जिस मनुष्यके जीवनमें यह धर्म सजीव सत्य बन जाता है, उसे संकटमें घबराहट नहीं होती। उसे काम करनेका सही रास्ता अन्तःप्रेरणासे मालूम हो जायगा।

परन्तु मैंने जो कुछ ऊपर कहा है उसके बावजूद मैं स्वयं अपने अनुभवसे कुछ चुने हुए नियम यहां दे देना पसन्द करूंगा

१. स्वयंसेवकके पास कोई हथियार न रहे।

२ शान्तिदलके आदमी आसानीसे पहचाने जा सकने चाहिये।

३ प्रत्येक स्वयंसेवकके पास प्रारंभिक सहायता करनेके लिए पट्टियां, कैंची, सुई-डोरा, चीर-फाडका चाकू आदि होने चाहिये।

४ उसे घायलोंको उठाकर ले जाते आना चाहिये।

५ उसे यह मालूम होना चाहिये कि आग कैसे बुझाई जाती है, जले बिना आगके क्षेत्रमें कैसे घुसते हैं, लोगोंको बचानेके लिए ऊंची जगहों पर कैसे चढते हैं और बचाये हुए आदमीको साथ लेकर या बिना लिये कैसे उतरते हैं।

६ उसे अपने मुहल्लेके सब लोगोंसे अच्छी तरह परिचित होना चाहिये। यह स्वयं एक सेवा है।

७ उसे अपने हृदयमे सदा रामनाम रटते रहना चाहिये और जिनका विश्वास हो उनको भी ऐसा ही करनेको समझाना चाहिये।

मनुष्य अकसर तोतेकी तरह रामनाम रटता है और वैसा करके फलकी आशा रखता है। सच्चे मुमुक्षुको ऐसी सजीव श्रद्धा रखनी चाहिये, जो न केवल उसके हृदयसे बल्कि दूसरोके हृदयोसे भी तोतेकी तरह रामनाम रटनेके असत्यका नाश कर दे।

हरिजन ५–५–'४६

साम्प्रदायिक हत्याओंके खिलाफ

खूनका बदला खूनसे या मुआवजेसे कभी नही लिया जा सकता। खूनका बदला लेनेका एकमात्र उपाय यह है कि बदला लेनेकी कोई इच्छा न रखकर हम खुशीसे अपनेको बलिदान कर दे। बदले या मुआवजेसे व्यक्तिको कुछ सतोष मिल सकता है। मगर मेरी यह स्पष्ट राय हे कि उससे समाजमे न कभी शान्ति स्थापित हो सकती है और न समाजका उत्थान हो सकता है।

हरिजन, १८–८–'४६

पुलिस-बल

अहिंसक राज्यमे भी पुलिसकी जरूरत हो सकती है। मे स्वीकार करता हू कि यह मेरी अपूर्ण अहिंसाका चिह्न है। मुझमे फौजकी तरह पुलिसके बारेमे भी यह घोषणा करनेका साहस नही है कि हम पुलिसकी ताकतके बिना काम चला सकते है। अवश्य ही मै ऐसे राज्यकी कल्पना कर सकता हू और करता हू, जिसमे पुलिसकी जरूरत नही होगी, परन्तु यह कल्पना सफल होगी या नही, यह तो भविष्य ही बतायेगा।

परन्तु मेरी कल्पनाकी पुलिस आजकलकी पुलिससे बिलकुल भिन्न होगी। उसमे सभी सिपाही अहिंसामे माननेवाले होगे। वे जनताके मालिक नही, सेवक होगे। लोग स्वाभाविक रूपमे ही उन्हे हर प्रकारकी सहायता देगे और आपसके सहयोगसे दिन-दिन घटनेवाले दगोका आसानीसे सामना कर लेगे। पुलिसके पास किसी न किसी प्रकारके हथियार तो होगे, परन्तु उन्हे क्वचित् ही काममे लिया जायगा। असलमे तो

पुलिसवाले सुधारक बन जायेगे। उनका काम मुख्यत चोर-डाकुओ तक सीमित रह जायगा। मजदूरो और पूजीपतियोके झगडे और हडताले अहिसक राज्यमे यदाकदा ही होगी, क्योकि अहिसक बहुमतका असर इतना अधिक रहेगा कि समाजके मुख्य तत्त्व उसका आदर करेगे। इसी तरह साम्प्रदायिक दगोकी भी गुजाइश नही रहेगी।

हरिजन, १–९–'४०

२

चोरियां

एक शस्त्र-सज्जित मनुष्य आपका माल चुरा ले जाता है। आपको उसके कृत्यका खयाल सताता रहता है, आप क्रोधसे भर जाते है, आप तर्क करते है कि आप उस बदमाशको सजा देना चाहते है — अपने ही खातिर नही, किन्तु अपने पडोसियोकी भलाईके खातिर, आप हथियार-बन्द आदमियोकी टोली जमा करते है और उसके घर पर धावा बोलना चाहते है, उसे इसकी बाकायदा सूचना दे दी जाती है। वह भाग जाता है। वह भी उत्तेजित होता है। वह अपने डाकू भाइयोका जमा करता है और आपको मुकाबलेका पैगाम भेजता है कि वह दिन-दहाडे आपके घरमे डाका डालेगा। आप सबल है, उससे नही डरते और उसका स्वागत करनेको तैयार रहते है। इस बीच यह डाकू आपके पडोसियोको तग करता है। वे आपसे इसकी शिकायत करते है। आप जवाब देते है, मै तुम्हारे लिए सब-कुछ तैयार कर रहा हू। आप अपना माल चोरी जानेकी परवाह नही करते। आपके पडोसी उत्तर देते है कि डाकूने हमको पहले कभी नही सताया, उसने लूट-खसोट तभी शुरू की, जब आपने उससे लडाई ठानी। आप दुविधामे पड जाते है। आपको इन गरीबो पर दया आती है। उनका कहना सच है। आप क्या करे? अब यदि आप डाकूको यो ही छोड देते है, तो आपका अपमान होता है। इसलिए आप इन गरीबोसे कहते है, "कोई परवाह नही। मेरा धन तुम्हारा ही है। मै तुम्हे हथियार दूगा और उनसे काम लेना भी

सिखाऊगा। तुम्हे ऐसे बदमाशकी मरम्मत करनी चाहिये। उसे यो ही मत छोडो।" इस प्रकार लडाई बढती है। डाकुओकी सख्यामे वृद्धि होती है, आपके पडोसी जान-बूझकर असुविधा मोल लेते है। इस तरह डाकूसे बदला लेनेकी इच्छाका परिणाम यह होता है कि आपने अपनी शान्ति भग कर ली, आपको सदा डाका पडने और हमला होनेका डर रहने लगा, आपके साहसका स्थान कायरताने ले लिया। अगर आप धीरजसे इस तर्ककी परीक्षा करेगे, तो आप देख लेगे कि मैने कोई बढा-चढाकर चित्र नही खीचा है। यह एक तरीका हुआ।

अब दूसरे तरीकेको जाचे। आप उस सशस्त्र डाकूको एक अज्ञान भाई मान लेते है। आप उचित अवसर पर उसे समझानेका विचार करते है, आप यह तर्क करते है कि आखिर तो वह हमारा एक मानव-बधु ही है, आप नही जानते कि उसे चोरीकी प्रेरणा कैसे हुई। इसलिए आप यह निर्णय करते है कि जब सभव होगा आप उस आदमीके चोरीके हेतुको ही नष्ट कर देगे। आप अपने मनमे यह बहस कर रहे होगे, उसी बीच वह आदमी फिर चोरी करने आ जाता है। उस पर क्रोध करनेके बजाय आप उस पर दया करते है। आप सोचते है कि यह चोरीकी आदत अवश्य ही उसकी एक बीमारी है। इसलिए आइदा आप अपने दरवाजे और खिडकिया खुली रखते है, अपने सोनेकी जगह बदल लेते है और अपना सामान ऐसी जगह रखते है कि जहा उसकी पहुच बहुत आसानीसे हो जाय। डाकू फिर आता है और घबरा जाता है, क्योकि ये सब बाते उसके लिए नई होती है। फिर भी वह आपका सामान ले जाता है। परतु उसके मनमे उथल-पुथल मच जाती है। वह आपके बारेमे गावमे पूछताछ करता है, उसे आपके उदार और प्रेमपूर्ण हृदयका हाल मालूम होता है, उसे पछतावा होता है, वह आपसे क्षमा-याचना करता है, आपका सामान लौटा देता है और चोरीकी आदत छोड देता है। वह आपका सेवक बन जाता है और आप उसके लिए इज्जतका काम जुटा देते है। यह दूसरा तरीका है। इस प्रकार आप देखते है कि अलग-अलग तरीकोके बिलकुल अलग-अलग परिणाम होते है। इससे मै यह निष्कर्ष नही निकालता कि डाकू इसी प्रकारका आचरण

करेंगे या सभीमें आपकी तरह दया और प्रेम होगा। परन्तु मैं यह दिखा देना चाहता हूं कि अच्छे उपायोंसे ही अच्छे परिणाम निकल सकते हैं और सबमें नहीं तो कमसे कम अधिकांश मामलोंमें प्रेम और दयाका बल शस्त्रबलसे कहीं बडा होता है। पशुबलके प्रयोगमें हानि है, मगर दयाबलके प्रयोगमें कभी नहीं।

हिंन्द स्वराज्य, १९४६ (१९०९ में लिखित), पृ० ५३–५४

प्र० — जब किसी नौकरको चोरीकी लत पड जाय और प्रेमसे समझाने या मार-पीटसे भी वह न सुधरे, तो मालिक क्या करे?

उ० — मेरी सलाह मालिकको यह होगी कि चोरके रास्तेमें से वह सारे प्रलोभन हटा ले, उसके साथ अपने सगे भाईका-सा बरताव करे और जब वह कितने ही दयापूर्ण व्यवहारसे भी ठीक न हो तो उसे निकाल दे। मालिक सदा अपने मनसे पूछे कि ऐसी स्थितिमें वह अपने सगे भाईके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेगा या नहीं?

हरिजन, २१–७–’४६

उरुलीमें शामकी प्रार्थनाके बाद बोलते हुए गांधीजीने कहा कि चोर या अपराधीके प्रति दुर्भाव रखने या उसे सजा दिलवानेकी कोशिश करनेके बजाय हमें उसके हृदयके भीतर प्रवेश करनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिस कारणसे वह अपराध करने लगा हो उसे समझना चाहिये और उसका इलाज करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उदाहरणार्थ, हमें उसे कोई धंधा सिखा देना चाहिये और उसे ऐसा रोजगार दिला देना चाहिये, जिससे वह ईमानदारीसे अपना गुजर कर सके। इस प्रकार हमें उसके जीवनका कायापलट कर देना चाहिये। हमें समझ लेना चाहिये कि चोर या अपराधी हमसे भिन्न प्रकारका प्राणी नहीं है। असलमें अगर हम आत्म-निरीक्षण करें और अपनी ही आत्माओंको ध्यानसे देखें, तो हमें पता लगेगा कि हममें और उनमें अन्तर केवल मात्राका ही है।

हरिजन, ११–८–’४६

३
स्त्रियों पर हमले

जहा अहिसक वातावरण है, जहा अहिसाकी सतत शिक्षा दी जाती है, वहा स्त्री अपनेको आश्रित, कमजोर या नि सहाय नही समझेगी। जब वह शुद्ध होती है तब लाचार हो ही नही सकती। उसकी शुद्धता ही उसका बल, उसका कवच है। मेरी सदासे यह राय रही है कि किसी भी स्त्री पर उसकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कार करना शारीरिक दृष्टिसे असभव है। यह अत्याचार उस पर तभी होता है, जब या तो वह डरके मारे झुक जाती है या अपने नैतिक बलका उसे भान नही होता। अगर वह आक्रमणकारीके शरीर-बलका सामना नही कर सकती, तो उसकी शुद्धता उसे वह बल देगी जिससे वह मर जायगी, मगर जीतेजी अपना सतीत्व नष्ट नही होने देगी। सीताका ही उदाहरण ले लीजिये। रावणके सामने शरीर-बलमे वह कुछ भी नही थी, मगर उसकी पवित्रता रावणकी राक्षसी ताकतसे भी कही बढकर थी। रावणने तरह तरहके प्रलोभन देकर उसे मनाना चाहा, मगर उसकी मरजीके विना उसके शरीरको वह छू भी नही सका। इसके विपरीत, अगर कोई स्त्री अपने ही शरीर-बल या अपने पासके हथियार पर निर्भर रहती है, तो जब उसकी ताकत खतम हो जायगी तब वह अवश्य हार जायगी।

भाई, पिता या मित्र अपनी सरक्षित स्त्री और उस पर हमला करनेवालेके बीचमे खडा हो जायगा। फिर वह या तो आक्रमणकारीको समझा-बुझाकर उसके दुष्ट हेतुसे पराङ्मुख कर देगा या उसे रोकनेमे स्वय मर जायगा। इस प्रकार प्राण देकर वह न सिर्फ अपना फर्ज अदा करेगा, बल्कि अपनी सरक्षित स्त्रीको नया बल प्रदान करेगा, जिससे उसे अपने शीलकी रक्षा करनेका उपाय मिल जायगा।

हरिजन, १–९–'४०

यह मेरा दृढ विश्वास है कि किसी भी स्त्रीकी, जो निडर है और जिसे यह ज्ञान है कि उसकी पवित्रता उसके सतीत्वकी उत्तम ढाल है, लाज कभी नही लूटी जा सकती। पुरुष कितना ही पशु क्यो न बन

जाय, स्त्रीकी तेजोमय पवित्रताके सामने वह शर्मके मारे सिर झुका लेगा। आजके समयमे भी ऐसी स्त्रियोके उदाहरण मिलते है, जिन्होने इस प्रकार अपने सतीत्वकी रक्षा की है। जब मै यह लिख रहा हू, तब मुझे ऐसी दो मिसाले याद आ रही है। इसलिए जो स्त्रिया यह लेख पढे, उनसे मेरी सिफारिश है कि वे अपनेमे इस प्रकारका साहस पैदा करनेकी कोशिश करे। अगर वे आजकी भाति आक्रमणोके विचारमात्रसे काप जाना छोड सके, और छोड दे, तो वे बिलकुल निर्भय बन जायगी। माता-पिताओ और पतियोको स्त्रियोको निर्भय बननेकी कला सिखानी चाहिये। वह ईश्वरमे सजीव श्रद्धा रखनेसे बहुत अच्छी तरह सीखी जा सकती है। यद्यपि ईश्वर अदृश्य है, फिर भी वह हमारा अचूक रक्षक है। जिसमे यह श्रद्धा है वह सबसे ज्यादा निर्भय है।

परन्तु ऐसी श्रद्धा या साहस एक दिनमे नही प्राप्त किया जा सकता। तब तक हमे दूसरे उपाय ढूढनेकी कोशिश जरूर करनी चाहिये। जब किसी स्त्री पर हमला होता है तब वह हिसा-अहिसाका विचार करनेको नही ठहर सकती। उस समय आत्मरक्षा ही उसका मुख्य कर्तव्य है। उसे अपने शीलकी रक्षा करनेके लिए जो भी उपाय या तरीका सूझे, उसे अपनानेकी स्वतत्रता है। ईश्वरने उसे नाखून और दात दिये है। उसे अपनी तमाम ताकतके साथ इन्हे काममे लेना चाहिये और जरूरत हो तो इस प्रयत्नमे मर जाना चाहिये। जो पुरुष या स्त्री मौतका सारा डर छोड देती है, वह न सिर्फ अपनी ही रक्षा कर लेगी, बल्कि अपने प्राण देकर दूसरोको भी बचा लेगी।

यह तो हुई स्त्रीके कर्तव्यकी बात। परन्तु जिस पुरुषके सामने इस प्रकारके अपराध हो वह क्या करे? इसका उत्तर उपरोक्त विवेचनमे आ जाता है। उसे निष्क्रिय साक्षी हरगिज नही बनना चाहिये। उसे स्त्रीकी रक्षा करनी ही चाहिये। उसे पुलिसकी मददके लिए नही दौडना चाहिये। उसे रेलगाडीमे जजीर खीचकर ही सतोष नही मान लेना चाहिये। अगर उसमे अहिसा-पालनका सामर्थ्य होगा, तो वह ऐसा करते हुए मर जायगा और इस प्रकार स्त्रीको सकटसे बचा लेगा। अगर अहिंसामे उसका विश्वास न हो या वह उस पर अमल नही कर

सके, तो उसे अपनी सारी ताकत लगाकर स्त्रीको बचानेकी कोशिश करनी चाहिये। दोनो ही हालतोमे उसे अपने प्राण निछावर करनेकी तैयारी तो रखनी ही चाहिये।

हरिजन, १–३–'४२

घ — राजनीतिक बुराइया

१

बुरा राज्य

सविनय आज्ञाभग

कट्टर असहयोगी तो राज्यसत्ताकी बिलकुल उपेक्षा ही करता है। वह विद्रोही बन जाता है और राज्यके हरएक अनैतिक कानूनकी परवाह न करनेका दावा करता है। उदाहरणार्थ, वह कर देनेसे इनकार कर सकता है और अपने दैनिक व्यवहारमे राज्यसत्ताको माननेसे इनकार कर सकता है। वह अनधिकार प्रवेशके कानूनको माननेसे इनकार करके सैनिकोसे बात करनेके लिए फौजी बैरकोमे घुसनेका दावा कर सकता है और धरना देनेके तरीके पर लगाई गई मर्यादाओको तोडकर निर्धारित क्षेत्रके भीतर धरना दे सकता है। ये सब बाते करनेमे वह कभी बलका प्रयोग नही करता और जब उसके विरुद्ध बलका उपयोग किया जाता है, तो उसका कभी विरोध नही करता। सच पूछा जाय तो वह कारावासको और अपने विरुद्ध दूसरे प्रकारके बल-प्रयोगको निमत्रण देता है। ऐसा वह इसलिए करता है कि उसे जो शारीरिक स्वतत्रता जाहिरा तौर पर प्राप्त है, वह उसे असह्य भार प्रतीत होने लगती है। वह अपने मनमे यह तर्क करता है कि राज्य व्यक्तिगत स्वतत्रता तभी तक देता है, जब तक नागरिक उसके नियमोको मानता है। नागरिक अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका मूल्य राज्यके कानूनके सामने झुक कर चुकाता है। इसलिए राज्यके किसी पूरी तरह या बहुत हद तक अन्यायपूर्ण कानूनको मानना स्वतत्रताका अनैतिक विनिमय है। जो

नागरिक राज्यके बुरे स्वरूपको अच्छी तरह समझ लेता है, वह उसकी दया पर जीनेसे सतुष्ट नही होता, और जब वह राज्यको नैतिकताका भग किये बिना अपनेको गिरफ्तार करनेके लिए मजबूर करनेकी कोशिश करता है तब जो लोग उसके विश्वासमे शरीक नही है उन्हे वह समाजके लिए कण्टक दिखाई देता है। इस प्रकार सोचा जाय तो असहयोग आत्माकी पीडाको प्रगट करनेका अत्यत शक्तिशाली साधन है और एक बुरे राज्यके जारी रहनेका जोरदार विरोध है। और चूकि बदला लेनेकी वृत्ति न होनेके कारण असहयोगी सेना विकारोसे मुक्त होती है या होनी चाहिये, इसलिए उसमे सैनिकोकी कमसे कम सख्याकी जरूरत होती है। असलमे तो बुराईके विरुद्ध भलाईकी लडाईको जीतनेके लिए एक ही सच्चा असहयोगी काफी है।

यग इडिया, १०–११–'२१

सविनय आज्ञाभगका काम वही लोग हाथमे ले सकते है, जो राज्य द्वारा लादे गये असुविधाजनक कानूनोको भी तब तक खुशीसे माननेमे विश्वास रखते है, जब तक वे कानून उनकी अन्तरात्मा या धर्मको चोट न पहुचाते हो, और उतनी ही खुशीसे सविनय आज्ञाभगकी सजा भुगतनेको तैयार होते है। आज्ञाभग सविनय होनेके लिए सर्वथा अहिसक होना चाहिये। क्योकि उसके पीछे मूल सिद्धान्त यह है कि कष्ट सहन करके अर्थात् प्रेमसे विरोधीको जीता जाय।

यग इडिया, ३–११–'२१

हिंसाके बावजूद सविनय आज्ञाभंग

भीतरसे ऐसी पुकार आ सकती है, जिसकी उपेक्षा करनेका हमारा साहस नही हो — भले उसके लिए हमे कितना ही त्याग क्यो न करना पडे। मुझे ऐसा समय साफ आता हुआ दिखाई देता है, जब रक्तपातकी पक्की सभावना होते हुए भी मुझे राज्यके बनाये हुए एक एक कानूनको माननेसे इनकार करना पडेगा। जब ऐसी पुकारकी उपेक्षा करनेका अर्थ ईश्वरसे इनकार करना हो जाय, तब सविनय आज्ञाभग सुनिश्चित कर्तव्य हो जाता है।

यग इडिया, ४–८–'२१

जब कभी मैंने सविनय आज्ञाभग स्थगित किया है, तब हिंसाके भडक उठनेके कारण नही किया है, बल्कि ऐसी हिसाका पता लगने पर किया है जिसे काग्रेसियोने शुरू किया या प्रोत्साहन दिया था — जिन्हे ज्यादा समझदारीसे काम लेना चाहिये था। उदाहरणके लिए, मोपला उपद्रव जैसे किसी हिसाकाण्डसे सविनय आज्ञाभग मुलतवी न होता। परन्तु चौरीचौरासे हो गया। इसका सीधा-सा कारण यही है कि उसमे काग्रेससे सबध रखनेवाले लोगोका हाथ था।

यग इडिया, २९–१०–'२५

करबन्दी

लोगोकी तरफसे अनुकूल उत्तर मिलनेकी सभावनासे ही हमे कर-बन्दीका आश्रय नही लेना चाहिये। यह तैयारी एक घातक प्रलोभन है। ऐसी करबन्दी सविनय या अहिसक नही होगी, बल्कि एक अपराध होगी और उसमे हिसाकी अधिकसे अधिक सभावना रहेगी। जब तक किसानोको सविनय करबन्दीका कारण और गुण समझनेकी तालीम न मिल जाय और वे अपनी जमीनोकी जब्ती और अपने मवेशियो और दूसरे सामानके नीलामको शान्ति और 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' की भावनासे सहनेको तैयार न हो जाय, तब तक उन्हे कर न चुकानेकी सलाह नही दी जा सकती।

यग इडिया, २६–१–'२२

कैद

सत्याग्रही अधिकारियोको परेशान करनेके लिए जेल नही जाता, बल्कि अपनी निर्दोषताका प्रत्यक्ष प्रमाण देकर उनका हृदय-परिवर्तन करनेके लिए जाता है। आपको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि जब तक आपने अपने भीतर जेल जानेकी वह नैतिक योग्यता पैदा नही कर ली है जो सत्याग्रहका कानून चाहता है, तब तक आपका जेल जाना व्यर्थ होगा और उससे अन्तमे निराशाके सिवा और कुछ आपके हाथ नही लगेगा।

हरिजन, ५–११–'३८

क्या जनसाधारण अहिसक रह सकते है?

प्र० — आप यह कैसे मानते है कि जनसाधारण अहिसाका पालन कर सकते है, जब हम जानते है कि वे सब क्रोध, घृणा और दुर्भावके शिकार रहते है? यह तो जानी हुई बात है कि वे अत्यत छोटी-छोटी चीजोके लिए भी लड बैठते है।

उ० — यह ठीक है, फिर भी मै मानता हू कि वे सबकी भलाईके लिए अहिसा पर अमल कर सकते है। क्या आप मानते है कि जिन हजारो स्त्रियोने गैर-कानूनी नमक इकट्ठा किया, उनकी किसीके प्रति दुर्भावना थी? वे जानती थी कि काग्रेसने या गाधीजीने उन्हे कुछ बाते करनेको कहा है, और उन्होने श्रद्धा और आशासे वे बाते की। वे बुद्धिसे अहिसामे विश्वास नही करती थी, जैसे बहुत लोगोको जमीनके गोल होनेके बारेमे विश्वास नही होता। मगर अपने नेताओमे उनका हार्दिक विश्वास था और इतना उनके लिए काफी था। नेताओकी बात दूसरी है। अहिसामे उनका विश्वास बुद्धिजनित होना चाहिये और उन्हे इस विश्वासके अर्थोको जीवनमे उतारना चाहिये।

हरिजन, ४-११-'३९

२

बाहरी हमला

हथियार हो या न हों?

मेरी कल्पनाके स्वराज्यमे हथियारोकी कोई जरूरत नही होगी। परन्तु मै यह आशा नही रखता कि वर्तमान प्रयत्नके फलस्वरूप मेरा यह सपना पूरी तरह सफल होगा। इसका पहला कारण तो यह है कि मौजूदा प्रयत्न उसे तात्कालिक ध्येय मानकर किया ही नही जा रहा है। दूसरे, मै अपने-आपको इतना आगे बढा हुआ नही समझता कि इस प्रकारकी तैयारीके लिए राष्ट्रको कोई ब्यौरेवार कार्यक्रम दे सकू। मै स्वय अभी तक विकारो और मानव-स्वभावकी दुर्बलताओसे इतना भरा

हू कि न तो मुझे वह पुकार महसूस होती है और न उसकी क्षमता। इसलिए मै राष्ट्रको फिलहाल सपूर्ण और व्यावहारिक अहिंसाका मार्ग नही दिखा सकता।

यग इडिया, १७–११–'२१

क्या अहिंसासे हमला रोका जा सकता है?

युद्धके सैनिको और अहिंसाके सैनिकोमे दो बाते समान होती है। मैं स्विट्जरलैडका नागरिक और वहाके सघराज्यका राष्ट्रपति होता, तो मै यह करता कि आक्रमणकारी सेनाको रसद न देकर उसका रास्ता रोक देता। दूसरे, स्विट्जरलैण्डमे दूसरी थर्मापॉलीको दोहराकर आप स्त्री-पुरुषो और बच्चोकी जिन्दा दीवार खडी कर देते और आक्रमणकारियोसे कहते कि वे आपकी लाशो पर होकर गुजर जाय। आप कह सकते है कि ऐसी चीज मनुष्यके अनुभव और सहन-शक्तिके बाहर है। मै कहता हू कि ऐसा नही है। यह बिलकुल सभव है। पिछले साल गुजरातमे स्त्रिया लाठी-प्रहारोके सामने अचल खडी रही और पेशावरमे हजारो लोगोने हिसाका आसरा लिये बिना बहादुरीसे गोलियोकी वर्षाका सामना किया। कल्पना कीजिये कि ये पुरुष और स्त्रिया एक ऐसी फौजके सामने खडे हैं, जो दूसरे देशमे जानेको सलामत रास्ता चाहती है। आप कह सकते है कि सेना हैवान बनकर उन परसे निकल जायगी। तब मै यह कहूगा कि आप अपना विनाश होने देकर भी अपना कर्तव्य पूरा करेगे। जो सेना निर्दोष स्त्री-पुरुषोकी लाशो परसे गुजरनेका साहस करेगी, वह दुबारा यह प्रयोग नही कर सकेगी। आप चाहे तो स्त्री-पुरुषोके बहुत बडे समूहोमे ऐसा साहस होनेमे विश्वास न रखे, मगर उस हालतमे आपको यह मानना पडेगा कि अहिंसा कोई ऐसी-वैसी चीज नही है। उसकी कल्पना कमजोरोके हथियारके रूपमे कभी नही की गई है, परन्तु मजबूतसे मजबूत हृदयोके अस्त्रके रूपमे की गई है।

यग इडिया, ३१–१२–'३१

प्र० — ऐसी एक खबर है कि आपने अहिंसक असहयोगके द्वारा विदेशी आक्रमणसे हिन्दुस्तानकी रक्षा करनेके लिए कोई नई योजना

तैयार की है, जिसे आप 'हरिजन' के किसी लेखमे प्रकट किया चाहते है। क्या आप हमे उसकी कुछ कल्पना दे सकेंगे?

उ० — यह खबर गलत है। मेरे मनमे ऐसी कोई योजना नही है। होती तो आपको बता देता। लेकिन जब मै यह कह चुका हू कि विशुद्ध अहिसात्मक असहयोग होना चाहिये, तब मेरे खयालसे और कुछ कहनेकी आवश्यकता नही रह जाती। अगर सारे भारतसे अनुकूल उत्तर मिले और सब लोग एकदिलसे असहयोग करे, तो मै दिखा दू कि रक्तकी एक बूद भी गिराये बिना जापानियोके शस्त्रास्त्रोकी या किसी भी सगठित शस्त्रबलकी शक्तिको बेकार बनाया जा सकता है। इसके लिए भारतका यह दृढ निश्चय होना जरूरी है कि वह किसी भी हालतमे थोडा भी अपनी बातसे पीछे नही हटेगा और लाखो मनुष्योकी आहुति देनेको तैयार रहेगा। मगर मै इस कीमतको बहुत सस्ती और इस कीमत पर पाई हुई विजयको शानदार समझूगा। यह हो सकता है कि भारत यह मूल्य चुकानेको तैयार न हो। मुझे आशा है कि यह सच नही है। परन्तु किसी भी देशको, जो अपनी स्वाधीनता कायम रखना चाहता है, कुछ ऐसी कीमत तो चुकानी ही पडती है। आखिर तो रूसियो और चीनियो द्वारा किये गये बलिदान भी जबरदस्त ही है और वे अपना सब-कुछ दाव पर लगानेको तैयार है। यही बात दूसरे मुल्कोके लिए भी कही जा सकती है, चाहे वे आक्रमण करनेवाले हो या आत्मरक्षा करनेवाले। उन्हे भारी कीमत चुकानी पड रही है। इसलिए अहिसक कार्यप्रणालीमे मै भारतको उससे ज्यादा खतरा उठानेको नही कह रहा हू, जो दूसरे देश उठा रहे है और जो भारतको भी उठाना पडेगा, अगर वह सशस्त्र मुकाबला करे।

हरिजन, २४–५–'४२

सातवां विभाग : कार्यकर्ता और कार्यक्रम

क — कार्यकर्ता

१
सर्वोदयी कार्यकर्ताकी योग्यताएं

[सत्याग्रहियोके लिए गाधीजी द्वारा बतायी हुई कुछ योग्यताए निम्नलिखित है। परन्तु चूकि सर्वोदयी कार्यकर्ताको भी उनकी रायमें सच्चा सत्याग्रही होना चाहिये, इसलिए ये योग्यताए सर्वोदयी कार्यकर्ताओं पर भी लागू होनेवाली मानी जा सकती है। — सं०]

१ उमकी ईश्वरमे सजीव श्रद्धा होनी चाहिये, क्योकि वही उसका एकमात्र आधार है।

२ उसे धर्मके रूपमे सत्य और अहिसामे विश्वास होना चाहिये और इसलिए उसे मानव-स्वभावकी जन्मजात अच्छाईमे श्रद्धा होनी चाहिये। क्योकि उसे यह आशा होती है कि अपने कष्ट-सहन द्वारा प्रगट होनेवाले अपने सत्य और प्रेमसे वह उस अच्छाईको जगा सकेगा।

३ उसका जीवन शुद्ध होना चाहिये और अपने लक्ष्यके लिए अपना जान-माल कुर्बान कर देनेकी उसकी तैयारी होनी चाहिये।

४ वह आदतन् खादी पहनने और सूत कातनेवाला होना चाहिये। भारतके लिए यह अत्यावश्यक है।

५ वह सर्वथा निर्व्यसनी हो, ताकि उसकी बुद्धि सदा स्वच्छ और उसका मन सदा स्थिर रहे।

६ समय समय पर अनुशासनके जो भी नियम बनाये जाय, उन सबका उसे हृदयसे पालन करना चाहिये।

यह न समझ लेना चाहिये कि इनमे सारी योग्यताए आ जाती है। ये तो केवल दिशादर्शक ही है।

हरिजन, २५–३–'३९

नम्रता

अगर हम अहकारकी जजीरे तोड डाले और मानवताके महासागरमे विलीन हो जाय, तो हम उसके गौरवके हिस्सेदार बन जाते है। यह समझना कि हम भी कुछ है, ईश्वरके और अपने बीचमे दीवार खडी कर लेना है, 'हम भी कुछ है' की भावनाको छोडकर हम ईश्वरके साथ एक हो जाते है। समुद्रमे बूदको भले ही इसका भान न हो, फिर भी वह अपने पिताके गौरवकी हिस्सेदार होती है। मगर ज्यो ही वह समुद्रसे बिछुडकर अलग अस्तित्व रखने लगती है त्यो ही सूख जाती है।

सेवामय जीवनमे नम्रता होनी ही चाहिये। जिसे दूसरोके खातिर अपना जीवन उत्सर्ग करनेकी इच्छा हो, उसे अपने लिए कोई बडी जगह सुरक्षित रखनेका समय ही कहा मिलेगा?

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ४६–४७

सतत कार्य

सच्ची नम्रताका यह अर्थ है कि केवल मानव-सेवाकी दिशामे ही अत्यन्त कठोर और सतत प्रयत्न किया जाय। ईश्वर एक क्षणका भी विश्राम न लेकर निरन्तर काम करता रहता है। अगर हम उसकी सेवा करना या उसमे मिल जाना चाहते हो, तो हमारा कार्य भी उसीकी तरह अथक और निरतर होना चाहिये। जो बूद समुद्रसे अलग हो जाती है, उसके लिए क्षणभरका आराम हो सकता है, परन्तु जो बूद समुद्रके भीतर है, उसके लिए आराम नही है। क्योकि समुद्रको आराम कहा? हमारे लिए भी यही बात है। ज्यो ही हम ईश्वररूपी समुद्रमे समा जाते है, हमारे लिए आराम नही रह जाता और न हमे आरामकी जरूरत रहती है। हमारी नीद भी एक कर्म ही है, क्योकि हम अपने हृदयोमे ईश्वरका विचार रखकर सोते है। यह अविश्रान्त अवस्था ही सच्ची विश्रान्ति है। इस अनन्त अशान्तिमे ही अनिर्वचनीय शान्तिकी कुजी है।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ४७–४८

मौन

सत्यके पुजारीके लिए मौनका सेवन उचित है। जाने-अनजाने भी मनुष्य अकसर अतिशयोक्ति करता है, अथवा जो कहने योग्य है उसे छिपाता है, या भिन्न रूपमे कहता है । ऐसे सकटोसे बचनेके लिए भी अल्पभाषी होना आवश्यक है। थोडा बोलनेवाला बिना विचारे न बोलेगा, वह अपने प्रत्येक शब्दको तौलेगा।

आत्मकथा १९५१, पृ० ७९

शुद्धता

कोई भी कार्यकर्ता, जिसने काम-वासनाको जीत नही लिया है, हरिजनो, साम्प्रदायिक एकता, खादी, गोसेवा या ग्राम-पुनर्रचनाके ध्येयके लिए कोई सच्ची सेवा नही कर सकता। ऐसे बडे ध्येयोकी सेवा केवल बौद्धिक तैयारीसे ही नही हो सकती । उनके लिए आध्यात्मिक प्रयत्न या आत्मबलकी जरूरत होती है । आत्मबल केवल ईश्वरकी कृपासे ही मिलता है और ईश्वरकी कृपा उस आदमी पर कभी नही उतरती जो वासनाका दास है।

हरिजन, २१–११–'३६

श्रद्धा

ससारको सजीव श्रद्धा — न कि निर्जीव परपरागत श्रद्धा, जिसे ससार ग्रहण नही करेगा — भेट करनेमे आपको अगुआ बनना चाहिये।

विथ गाधीजी इन सीलोन, १९२८, पृ० ११२

दुनियामे कोई बडा काम सजीव श्रद्धाके बिना नही हुआ।

हरिजन, ९–१०–'३७

आम जनतासे तादात्म्य

पहले हमे उनके (आम लोगोके) साथ और उनके बीचमे काम करके उनके साथ सजीव सपर्क स्थापित करना चाहिये । हमे उनके दु:खोमे शरीक होना चाहिये, उनकी कठिनाइया समझनी चाहिये और उनकी जरूरते पहलेसे जान लेनी चाहिये । हमे अछूतोके साथ अछूत बन जाना चाहिये और देखना चाहिये कि उच्च वर्गोके पाखाने साफ

करना और उनकी जूठन खाना हमे कैसा लगता है। हमे देखना चाहिये कि बम्बईके मजदूरोकी जिन सन्दूको-जैसी झोपडियोको घरोका गलत नाम दिया जाता है, उनमे रहना हमे कैसा लगता है। हमे उन देहातियोके साथ एक होना चाहिये, जो अपनी झुकी हुई पीठ पर कडी धूप सहकर कडी मेहनत करते है और देखना चाहिये कि जिस पोखरमे गाववाले नहाते, अपने कपडे और बरतन धोते और उनके मवेशी पानी पीते और लोटते है, उसका पानी पीना हमे कहा तक पसन्द आता है। तभी — उससे पहले नही — हम गरीबोके सच्चे प्रतिनिधि बनेगे और वे हमारी प्रत्येक पुकारका अनुकूल उत्तर देगे। यह उतना ही निश्चित है जितना इस समय मेरा यह लेख लिखना है।

यग इडिया, ११–९–'२४

व्यवहारके लिए उत्तम नियम यह है कि जो चीज लाखो लोगोको मयस्सर न हो, उसे लेनेसे हम दृढतापूर्वक इनकार कर दे। इनकार करनेकी शक्ति हममे एकाएक नही आ जायगी। पहला काम अपने भीतर यह मनोवृत्ति पैदा करना है कि जो सम्पत्ति या सुविधा लाखो लोगोको नही मिलती उसे हम न ले और दूसरी तुरत करने लायक चीज यह है कि हम अपने जीवनको जल्दीसे जल्दी इस मनोवृत्तिके साचेमे ढाल ले। इस प्रकारके त्यागी और दृढनिश्चयी कार्यकर्ताओकी बहुत बडी सेनाके बिना मेरी रायमे जनसाधारणकी सच्ची उन्नति होना असभव है।

यग इडिया, २४–६–'२६

समाजवाद पहले ही समाजवादीसे शुरू हो जाता है। अगर ऐसा एक भी आदमी हो तो आप उस पर सिफर लगाते जाइये। पहले सिफरसे सख्या दस गुनी हो जायगी और फिर हरएक सिफर जोडनेसे सख्या उत्तरोत्तर दस गुनी होती जायगी। लेकिन अगर पहला सिफर ही हो अर्थात् कोई भी प्रारभ नही करे, तो सिफर बढाते जानेसे भी उनका मूल्य सिफर ही रहेगा। और सिफर लिखनेमे लगाया गया समय और कागज बेकार ही जायेगे।

हरिजन, १३–७–'४७

स्वेच्छापूर्वक अपनाई हुई दरिद्रता

उन्हे (सर्वोदयी कार्यकर्ताओको) त्याग और स्वेच्छापूर्वक अपनाई जानेवाली दरिद्रताकी कला और सुन्दरता सीख लेनी चाहिये। उन्हे राष्ट्रका निर्माण करनेवाली प्रवृत्तियोमे लगे रहना चाहिये — जैसे, स्वय हाथसे कात-बुनकर खादीका प्रचार करना, जीवनके हर क्षेत्रमे एक-दूसरेके प्रति शुद्ध व्यक्तिगत आचरण करके हार्दिक साम्प्रदायिक एकता फैलाना, अपने निजी व्यवहारमे हर प्रकारकी अस्पृश्यता मिटा देना, और दुर्व्यसनोमे फसे हुए व्यक्तियोसे व्यक्तिगत सपर्क स्थापित करके तथा आम तौर पर व्यक्तिगत शुद्धता बढाकर नशीली चीजोका पूरा बहिष्कार कराना आदि। ये सेवाए एसी है जिनमे गरीबोकी-सी आजीविका मिल सकती है। जिनके लिए गरीबोकी-सी आजीविका अनुकूल न हो, उन्हे राष्ट्रीय महत्त्वके छोटे सगठित उद्योगोमे स्थान ढूढ लेना चाहिये, जहा ज्यादा अच्छी मजदूरी मिलती है।

अमृतबाजार पत्रिका, ८–४–'३४

ख — कार्यक्रम

विस्तृत रचनात्मक कार्यक्रम मेरी पुस्तिका[१] मे और डॉ० राजेन्द्र-प्रसादकी पुस्तिका[२] मे मिलेगा, जो उस पर एक सरसरी टीका है। यह याद रखना चाहिये कि वह सपूर्ण नही, उदाहरणके तौर पर ही है। स्थानीय परिस्थितियोको देखते हुए कई और मुद्दे ऐसे सूझ सकते है, जिनका छपे हुए कार्यक्रममे उल्लेख नही है। ये पुस्तिकाए किसी अखिल भारतीय कार्यक्रम पर लिखी गई पुस्तिकाके क्षेत्रसे बाहर है। उन मुद्दोकी खोज करके उचित कार्रवाई करना अवश्य ही स्थानीय कार्य-कर्ताओका काम है।

---

१ रचनात्मक कार्यक्रम — उसका रहस्य और स्थान, नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद – १४।

२ रचनात्मक कार्यक्रम — कुछ सुझाव (अग्रेजीमे), नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद – १४।

मैने तो यहा कुछ खास मुद्दो* का ही सकेत कर दिया है, ताकि इस कार्यक्रमके प्रकाशित होनेके बाद जो अनुभव प्राप्त हो, उसके अनुसार उन पर अधिक जोर दिया जा सके।

१
किसान

किसान या काश्तकारका स्थान पहला है, चाहे वह भूमिहीन मजदूर हो, चाहे मेहनत-मजदूरी करनेवाला भूस्वामी हो। खेती किसान पर ही निर्भर है, इसलिए न्यायकी दृष्टिसे जमीनका मालिक वही है या होना चाहिये, न कि गैर-हाजिर जमीदार। परन्तु अहिसक प्रणालीमे मजदूर गैर-हाजिर जमीदारको जबरन् बेदखल नही कर सकता। उसे इस तरह काम करना चाहिये कि जमीदारके लिए उसका शोषण करना नामुमकिन हो जाय। किसानोमे घनिष्ठ सहयोग निहायत जरूरी है। इसके लिए जहा न हो वहा विशेष सगठन करनेवाली सस्थाए या समितिया बनाई जाय और जो पहलेसे मौजूद है उन्हे जहा जरूरत हो वहा सुधारा जाय। किसान ज्यादातर निरक्षर है। परन्तु प्रौढो और पाठशाला जानेकी उम्रवाले नौजवान लोगोको शिक्षा दी जानी चाहिये। यह बात स्त्री-पुरुष दोनो पर लागू होती है। जब वे भूमिहीन मजदूर हो तो उनकी मजदूरीको एसे स्तर पर ले आना चाहिये, जिससे उनके लिए अच्छा जीवन निश्चित हो जाय। इसका अर्थ यह है कि उन्हे सतुलित भोजन, रहनेके मकान

---

* इस पुस्तिकामे दिये गये मुद्दोकी सूची यह है

१ कौमी एकता, २ अस्पृश्यता-निवारण, ३ मद्य-निषेध, ४ खादी, ५ दूसरे ग्रामोद्योग, ६ गावोकी सफाई, ७ बुनियादी तालीम, ८ बडोकी तालीम, ९ स्त्रिया, १० आरोग्यके नियमोकी शिक्षा, ११. प्रान्तीय भाषाए, १२ राष्ट्रभाषा, १३ आर्थिक समानता; १४ किसान, १५ मजदूर, १६ आदिवासी, १७ कुष्ठरोगी, १८. विद्यार्थी; और १९ पशु-सुधार। —स०

और कपडा इस प्रकार मिले कि स्वास्थ्यकी जरूरते पूरी हो जाय। भूमि-सबधी कानूनोकी जाच होनी चाहिये। किसानोकी कर्जदारीकी समस्यामे खोजके लिए असीम क्षेत्र पडा है।

२

श्रम

किसान-कार्यसे गहरा सबध रखनेवाला काम मजदूरोका है। यहा मजदूरोसे मतलब औद्योगिक मजदूर है, जिनका क्षेत्र सगठित, केन्द्रित और अधिक सीमित है। साथ ही, उनका आसानीसे राजनीतिक उपयोग किया जा सकता है।

शहरो तक सीमित होनेके कारण मजदूरोका काम किसान-कार्यकी अपेक्षा कार्यकर्ताओको अधिक आकर्षित कर लेता है। रचनात्मक कार्यके रूपमे उसका मुख्य लक्ष्य मजदूरोको उनका उचित स्थान दिला देना है। इसलिए मजदूर-कार्यकर्ताओका ध्येय यह होना चाहिये कि मजदूरोकी नैतिक और बौद्धिक ऊचाईको बढाये और इस प्रकार केवल गुणोके बल पर उन्हे इस योग्य बना दे कि वे न सिर्फ अपनी माली हालत सुधार ले, बल्कि आजकी तरह उत्पादनके साधनोके गुलाम न रहकर उनके मालिक बन जाय। पूजीको मजदूरोका सेवक होना चाहिये, न कि स्वामी। मजदूरोको अपने कर्तव्योका भान कराना चाहिये, क्योकि उनका पालन करनेसे अपने-आप अधिकार मिल जाते है। ठोस रूपमे कहा जाय तो

(क) मजदूरोके अपने ही सघ होने चाहिये।

(ख) स्त्री-पुरुष दोनोकी साधारण और वैज्ञानिक शिक्षा रात्रि-पाठशालाओ द्वारा नियमित रूपसे होनी चाहिये।

(ग) मजदूरोके बच्चोको बुनियादी तालीमकी पद्धतिसे शिक्षा मिलनी चाहिये।

(घ) प्रत्येक केन्द्रके साथ एक-एक अस्पताल, शिशु-सवर्धन-गृह और प्रसूति-गृह होना चाहिये।

(ङ) हडतालके दिनोमे मजदूरोको स्वावलम्बी बनना चाहिये। (मजदूरोको सफल अहिसक हडताल करनेका विज्ञान सिखाना चाहिये।)

मैंने जिस कार्यका उल्लेख किया है, वह सब कलम (क) मे बताये हुए सघो द्वारा ही किया जा सकता है। जहा तक मै जानता हू, अहमदाबादके मजदूर-सघकी व्यवस्था उत्तम है। इसका यह अर्थ नही कि वह मेरे आदर्श तक पहुच गया है। पर वह उस दिशामे प्रयत्न कर रहा है। यदि तमाम मजदूर-सघ इसी दिशामे काम करे, तो आजकी अपेक्षा मजदूरोकी हालत कही अच्छी हो जाय। अगर मजदूर ऐक्यबद्ध और नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टिसे तालीम पाये हुए हो, तो वे सदा ही पूजीसे श्रेष्ठ है।

हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २८-१०-'४४

३

ग्रामसेवा

ग्रामसेवकके जीवनका केन्द्रबिन्दु चरखा होगा। खादीकी तहमे विचार यह है कि वह खेतीका सहायक और उसके साथ चलनेवाला उद्योग है। जब तक हम अपने देहातोसे आलस्य और बेकारी दूर न कर दे और प्रत्येक गावमे घर-घर काम-धधा न होने लगे, तब तक यह नही कहा जा सकता कि चरखा हमारे जीवनमे उसके उचित स्थान पर प्रस्थापित हो गया है।

ग्रामसेवक केवल नियमित रूपसे कातेगा ही नही, बल्कि अपनी रोटीके लिए जरूरतके मुताबिक बसूला, फावडा या जूता बनानेका फर्मा लेकर काम करेगा। सोने और आराम करनेके आठ घटोके अलावा उसका सारा वक्त किसी न किसी काममे लगा रहेगा। व्यर्थ खोनेको उसके पास कोई समय नही होगा। वह न तो स्वय आलस्य करेगा, न दूसरोको करने देगा। उसका जीवन उसके पडोसियोके लिए अविश्रात और सुखद उद्योगका सतत पाठ देता रहेगा। हमारी लाचारी या स्वेच्छासे पैदा हुई बेकारी अवश्य मिटनी चाहिये। वह नही मिटेगी तो कोई रामबाण दवा काम नही देगी और अधभूखे लोगोकी शाश्वत समस्या वैसी ही बनी

रहेगी। जो दो मुट्ठी खाता है उसे चार मुट्ठी पैदा करना चाहिये। जब तक यह धर्म सार्वत्रिक न मान लिया जाय, तब तक जनसख्यामे कितनी ही कमी हो जाय, तो भी उससे समस्या हल नही होगी। अगर इस कानूनको मान कर उसका पालन किया जाय, तो हमारे यहा अभी तो अन्य लाखो आदमियोके लिए भरण-पोषणकी गुजाइश है।

इस प्रकार ग्रामसेवक उद्यमकी साक्षात् मूर्ति होगा। वह कपास बोने और चुननेसे लेकर बुनाई तककी खादीकी तमाम क्रियाओका निष्णात होगा और अपना सारा ध्यान उन्हे पूर्ण बनानेमे लगायेगा। अगर वह इसे एक विज्ञान समझेगा, तो इससे ऊब नही जायगा, बल्कि ज्यो ज्यो इसकी महान सभावनाओको अच्छी तरह समझने लगेगा, त्यो त्यो उसे नित-नया आनन्द प्राप्त होगा। वह देहातमे जितना शिक्षक बनकर जायेगा, उतना ही विद्यार्थी बनकर भी जायेगा। उसे जल्दी ही मालूम हो जायगा कि भोलेभाले ग्रामीणोसे उसे बहुत-कुछ सीखना है। वह ग्राम-जीवनकी हर बातमे घुसेगा, देहाती उद्योगोका पता लगायेगा और उनके विकास और सुधारकी सभावनाओकी जाच करेगा। सभव है, खादीके सदेशके प्रति गाववाले उसे बिलकुल उदासीन जान पडे, परन्तु वह अपने सेवामय जीवनसे उनकी दिलचस्पी और ध्यान आकर्पित कर लेगा। अवश्य ही उसे अपनी मर्यादाओको भूलकर किसानोके कर्जकी समस्या हल करनेके काममे, जो उसके लिए व्यर्थ है, नही पडना चाहिये।

सफाई और तन्दुरुस्तीके काम पर वह काफी ध्यान देगा। न सिर्फ उसका घर और आसपासकी जगह ही सफाईका नमूना पेश करेंगे, बल्कि वह झाडू-टोकरी लेकर सारे गावमे सफाई रखवानेमे भी मदद देगा।

वह देहाती दवाखाना खोलने या देहाती डॉक्टर बननेकी कोशिश नही करेगा। यह सब जाल है, जिससे उसे बचना ही चाहिये। अपनी हरिजन-यात्राके दौरानमे मेरा एक ऐसे गावसे साबका पडा था, जहा हमारे एक कार्यकर्ताने, जिन्हे अधिक समझदारीसे काम लेना चाहिये था, एक आलीशान इमारत बनाकर उसमे दवाखाना खोल दिया था और आसपासके देहातोमे मुफ्त दवाइया बाटना शुरू कर दिया था। असलमे तो स्वयसेवक लोग ही दवाइया ले जाकर घर-घर बाटते थे और औषधालयके

वर्णनमे गर्वके साथ कहा गया था कि हर महीने १,२०० मरीजोको दवा दी जाती है। कुदरती तौर पर मुझे इसकी कडी आलोचना करनी पडी। मैने उन्हे बताया कि देहातमे काम करनेका यह ढग नही है। आपका कर्तव्य यह है कि गाववालोको सफाई और तदुरुस्तीके पाठ पढाये और इस तरह रोगोका इलाज करनेके प्रयत्नके बजाय रोगोसे बचनेका मार्ग बताये। मैने उनसे कहा कि उस भवनको छोड दीजिये और उसे लोकल बोर्डको किराये पर देकर फूसके झोपडेमे बस जाइये। दवाके तौर पर कुछ रखना है तो केवल कुनैन, अण्डीका तेल, आयोडीन या ऐसी ही अन्य कुछ चीजे रखी जाय। कार्यकर्ताको अपनी शक्ति इसी पर केन्द्रित करनी चाहिये कि लोग अपने शरीर और गावकी स्वच्छताका महत्त्व अच्छी तरह समझ ले और उसे हर हालतमे बनाये रखे।

इसके बाद वह गावके हरिजनोकी भलाईमे दिलचस्पी लेगा। उसका घर उनके लिए खुला रहेगा। वास्तवमे वे अपने झगडो और कठिनाइयोमे मददके लिए कुदरती तौर पर उसीके पास आयेगे। अगर गाववालोको यह सहन न हो कि वह उनकी बस्तीमे रहते हुए हरिजनोको अपने घरमे आने दे, तो उसे अपना निवासस्थान हरिजन मुहल्लेमे बना लेना चाहिये।

एक बात अक्षर-ज्ञानके बारेमे। उसका स्थान तो है, मगर मै आपको चेतावनी दे देता हू कि उस पर गलत जोर न दीजिये। यह मानकर न चलिये कि बच्चो या प्रौढोको लिखना-पढना सिखाये बिना आप ग्राम-शिक्षा शुरू नही कर सकते। वर्णमालाको छूनेसे पहले बहुतसा उपयोगी ज्ञान मौजूदा हालत, इतिहास, भूगोल और प्रारभिक अकगणितके बारेमे जबानी दिया जा सकता है। हाथोसे पहले आखो, कानो और जबानका नम्बर आता है। लिखनेसे पहले पढनेका और वर्णमालाके अक्षर बनानेसे पहले ड्राइगका स्थान है। यदि यह स्वाभाविक रीति काममे ली जाय, तो बच्चोकी समझका विकास अधिक होगा। बच्चोकी शिक्षाका प्रारभ वर्णमालाके साथ करनेसे उनका विकास रुक जाता है।

ग्रामसेवकका जीवन ग्राम-जीवनके साथ एकराग होगा। वह अपनी पुस्तकोमे डूबा हुआ पडित बननेका ढोग नही करेगा और उसे रोजमर्राकी

जिन्दगीकी छोटी छोटी बाते सुननेसे अरुचि नही होगी। इसके विपरीत, लोग जब भी उससे मिलेंगे तब उसे अपने औजारोसे — चरखे, करघे, बसूले या फावडे आदिसे — काम करता हुआ और सदा उनके छोटेसे छोटे प्रश्नो पर ध्यान देता हुआ पायेगे। वह सदा अपनी रोजीके लिए काम करनेका आग्रह रखेगा। ईश्वरने सबको अपनी दैनिक आवश्यकताओसे अधिक उत्पन्न करनेकी शक्ति दी है, और अगर वह केवल सूझ-बूझसे काम ले तो उसे ऐसे धधेका अभाव नही रहेगा, जो उसकी योग्यताके अनुकूल हो, चाहे वह योग्यता कितनी ही कम क्यो न हो। अधिक सभावना यही है कि लोग खुशीसे उसके गुजारेका प्रबध कर देगे, लेकिन यह भी असभव नही कि कुछ स्थानो पर उसकी उपेक्षा की जाय। मगर फिर भी वह कोई उद्योग करके अपना गुजारा कर लेगा। सभव है कि कुछ गावोमे हरिजनोकी तरफदारीके कारण उसका बहिष्कार किया जाय। उस सूरतमे वह हरिजनोके पास जाय और उनसे भोजनकी आशा रखे। काम करनेवालेको खाना तो हमेशा मिलना ही चाहिये। और इसलिए यदि वह ईमानदारीसे हरिजनोकी सेवा करता है, तो उनसे भोजन लेनेमे उसे सकोच नही रखना चाहिये। शर्त हमेशा यही हो कि जितना ले उससे अधिक दे दे। बेशक, शुरूकी हालतमे जहा सभव हो वहा थोडासा पैसा वह अपने गुजारेके लिए किसी केन्द्रीय कोषसे ले सकता है।

याद रखिये हमारे हथियार आध्यात्मिक है। यह वह ताकत है जो अदृश्य रूपमे काम करती है, मगर उसका कोई मुकाबला नही कर सकता। इसकी प्रगति जोडके नियमसे नही, गुणाकारके नियमसे होती है। जब तक उसके पीछे कोई प्रेरक शक्ति होती है, तब तक वह कभी बन्द नही होती। इसलिए आपकी सारी प्रवृत्तियोकी पृष्ठभूमि आध्यात्मिक होनी चाहिये। चरित्र और व्यवहारकी पूर्ण शुद्धता इसीलिए जरूरी है।

आप मुझसे यह न कहिये कि यह असभव कार्यक्रम है और आपमे इसकी योग्यता नही है। आप अब तक इसे पूरा नही कर सके, इससे आपके मार्गमे बाधा नही आनी चाहिये। अगर वह आपके हृदय और बुद्धिको जचता है, तो आपको हिचकिचाहट नही होनी चाहिये। आप

प्रयोगसे घबराये नही। स्वय प्रयोगसे ही आपको अधिकाधिक प्रयत्न करनेका प्रेरणा-बल मिलेगा।

[गुजरात विद्यापीठके कार्यकर्ताओमे दिये गये एक प्रवचनसे।]
हरिजन, ३१-८-'३४

एक आदर्श भारतीय गाव इस ढगसे बनाया जायगा कि उसमे पूरी सफाई रखी जा सके। उसमे ऐसी कुटिया होगी जिनमे काफी हवा और रोशनी रहेगी और जो पाच मीलके घेरेमे प्राप्त होनेवाली सामग्रीसे बनी होगी। कुटियोके आगन होगे, जिनमे घरवाले घरू इस्तेमालकी साग-भाजी उगा सके और अपने मवेशी रख सके। गावकी गलियो और रास्तोमे यथासभव धूल नही होगी। उसमे गावकी जरूरतके अनुसार कुए होगे और उनसे सब पानी ले सकेंगे। वहा सबके लिए पूजास्थान होगे, एक आम सभास्थान होगा, पशु चरानेके लिए एक सम्मिलित चरागाह होगा, एक सहकारी दुग्धालय होगा, प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाए होगी-जिनमे औद्योगिक शिक्षा मुख्य वस्तु होगी और झगडे निपटानेके लिए पचायत होगी। वह अपना अनाज, अपनी सागभाजी, अपने फल और अपनी खादी आप तैयार कर लेगा। मोटे रूपमे आदर्श ग्रामकी मेरी यह कल्पना है। मौजूदा हालतोमे उसकी झोपडिया थोडेसे सुधारके साथ जैसी है वैसी ही रहेगी। जहा जमीदार भला होगा या लोगोमे सहयोग होगा, वहा आदर्श कुटियोके सिवा लगभग सारे कार्यक्रम पर सरकारी सहायताके बिना उतने ही खर्चसे अमल किया जा सकता है, जो जमीदारके या जमीदार-सहित गाववालोके साधनोके भीतर होगा। सरकारी मददसे तो गावोकी पुनर्रचनाका काम इतना बढाया जा सकता है जिसकी कोई हद नही। परन्तु अभी तो मेरा काम यह पता लगाना है कि देहातियोमे आपसमे सहयोग हो और वे सबकी भलाईके लिए स्वेच्छापूर्वक श्रमदान करे, तो वे खुद अपनी क्या सहायता कर सकते है। मेरा दृढ विश्वास है कि यदि उन्हे बुद्धिमानीसे रास्ता बताया जाय, तो वे गावकी आमदनी दुगुनी कर सकते है। व्यक्तिगत आयकी बात अलग है। हमारे देहातोमे असीम साधन है, जो व्यवसायके लिए तो नही, परन्तु स्थानीय कामोके लिए

लगभग हर हालतमे काफी है। सबसे बडी दु खकी बात तो यह है कि ग्रामीण लोग अपनी हालत सुधारनेके लिए बिलकुल तैयार नही है।

ग्रामसेवकको सबसे पहली समस्या सफाईकी हल करनी होगी। जिन समस्याओसे कार्यकर्ता चकराते है और जिनसे ग्रामवासियोका स्वास्थ्य जर्जर हो जाता है तथा बीमारिया पैदा होती है, उन सबमे अधिकसे अधिक उपेक्षा इस समस्याकी की जाती है। अगर कार्यकर्ता स्वेच्छा-पूर्वक भगी बन जाय, तो वह मलमूत्र इकट्ठा करके उसका खाद बना लेगा और गावके रास्तो पर झाडू लगा देगा। वह लोगोको बतायेगा कि कैसे और कहा उन्हे शौच जाना चाहिये। वह उन्हे सफाईका महत्त्व और उसकी उपेक्षा करनेसे होनेवाली महान हानि समझायेगा। गाववाले उसकी सुने या न सुने, कार्यकर्ता अपना काम जारी रखेगा।

हरिजन, ९–१–'३७

अगर ग्राम-पुनर्रचनामे देहातोकी सफाईको शामिल न किया गया, तो हमारे देहात जैसे आज कूडा-करकटके ढेर है वैसे ही बने रहेगे। गावकी सफाई देहाती जीवनका प्राण है और जितनी महत्त्वपूर्ण है उतनी ही कठिन भी है। चिरकालीन गदगीको मिटानेके लिए वीरोचित प्रयत्नकी आवश्यकता है। जो ग्रामसेवक ग्राम-सफाईके विज्ञानसे अनभिज्ञ है, जो सफल मेहतर नही है, वह ग्रामसेवाके योग्य नही हो सकता।

यह आम तौर पर मान लिया गया दीखता है कि नई या बुनियादी तालीमके बगैर भारतमे करोडो बच्चोकी शिक्षा लगभग नामुमकिन है। इसलिए ग्रामसेवकको उसमे प्रवीण होकर स्वय बुनियादी तालीमका एक शिक्षक बन जाना चाहिये।

बुनियादी शिक्षाके बाद प्रौढ-शिक्षा अपने-आप आ जायगी। जहा इस नई तालीमकी जड जम जाती है, वहा बच्चे खुद अपने मा-बापके शिक्षक बन जाते है। कुछ भी हो, ग्रामसेवकोको प्रौढ-शिक्षाका काम भी हाथमे लेना पडेगा।

स्त्रीको पुरुषकी अर्धांगिनी बताया गया है। जब तक कानूनसे स्त्रीको पुरुष जैसे ही अधिकार नही मिल जाते और जब तक लडकीके

जन्मका वैसा ही स्वागत नही होने लगता जैसा लडकेके जन्मका होता है, तब तक हमे समझ लेना चाहिये कि भारत एक हद तक पक्षाघातसे पीडित रहेगा। स्त्रीका दमन अहिसासे इनकार करना है। इसलिए प्रत्येक ग्रामसेवक हर स्त्रीको स्थितिके अनुसार अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और उसे आदरकी दृष्टिसे देखेगा। ऐसे ही कार्यकर्ता पर ग्रामीण लोगोका विश्वास रहेगा।

किसी भी अस्वस्थ जातिके लिए स्वराज्य लेना असभव है। इसलिए हमे अपनी जनताके स्वास्थ्यकी उपेक्षा करनेका अपराधी नही बनना चाहिये। प्रत्येक ग्रामसेवकको स्वास्थ्यके सामान्य सिद्धान्तोका ज्ञान होना ही चाहिये।

एक सामान्य भाषाके बिना कोई राष्ट्र नही बन सकता। ग्रामसेवक हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दूके विवादकी झझटमे न पडकर राष्ट्रभाषाका ज्ञान प्राप्त कर लेगा। राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिये, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो समझ सके।

हमारे अग्रेजीके पीछे पागल हो जानेके कारण हम प्रान्तीय भापाओके-प्रति वफादार नही रहे। और कुछ नही तो इस बेवफाईके प्रायश्चित्तके तौर पर ही ग्रामसेवकोको देहातियोमे अपनी भाषाका प्रेम पैदा करना चाहिये। उनमे भारतकी दूसरी भाषाओके प्रति समान आदरभाव होना चाहिये। और जिस प्रदेशमे वे काम कर रहे है, वहाकी भाषा सीखकर देहातियोको अपनी ही भाषाके प्रति आदरभाव रखनेकी प्रेरणा देनी चाहिये।

किन्तु यह सारा कार्यक्रम बालू पर महल बनाने जैसा होगा, अगर इसकी रचना आर्थिक समानताकी ठोस बुनियाद पर नही की जायगी। आर्थिक समानताका यह अर्थ कभी नही मान लेना चाहिये कि सबके पास सासारिक सम्पत्ति समान मात्रामे होगी। परन्तु इसका मतलब यह जरूर है कि हरएकके पास रहनेको उपयुक्त घर होगा, खानेको काफी और सतुलित आहार होगा और तन ढकनेको पर्याप्त खादी होगी। इसके यह मानी भी होगे कि जो निर्दय असमानता आज मौजूद है, वह शुद्ध अहिसक उपायोसे ही मिटाई जायगी।

हरिजन, १८–८–'४०

गावके लिए लक्ष्य

ग्राम-स्वराज्यकी मेरी कल्पना यह है कि प्रत्येक गाव सपूर्ण गण-राज्य होना चाहिये, जो अपनी जीवन-सबधी आवश्यकताओके लिए अपने पडोसियोसे स्वतत्र हो और फिर भी अन्य बहुतसी बातोमे जिनमे आश्रितता जरूरी है, वे एक-दूसरे पर निर्भर रहे। इस प्रकार प्रत्येक गावका पहला काम यह होगा कि वह खानेके लिए अपना अनाज और कपडेके लिए अपनी कपास उगाये। पशुओके लिए उसका अपना चरागाह होना चाहिये और बालिगो तथा बच्चोके लिए मनोरजन और खेल-कूदके स्थान होने चाहिये। इसके बाद अगर और जमीन उपलब्ध हो, तो वह रुपया पैदा करनेवाली **उपयोगी** फसले उगायेगा और इस प्रकार गाजा, अफीम, तम्बाकू वगैराका बहिष्कार करेगा। गावकी अपनी ग्रामनाटक-शाला, पाठशाला और अपना सभा-भवन होगा। उसकी अपनी पानीकी योजना होगी, जिससे साफ पानी मिलता रहेगा। यह प्रबध नियत्रित कुओ और तालाबोसे किया जा सकता है। बुनियादी पाठ्यक्रमके अन्त तक शिक्षा अनिवार्य होगी। जहा तक सभव होगा सब काम सहकारी ढगसे किये जायगे। उसमे आज जैसी ऊपरसे नीचे तक छुआछूतवाली जातिप्रथा नही होगी। अहिंसा और उसके साधन-रूप सत्याग्रह और असहयोग इस ग्राम-समाजके बल होगे। ग्राम-रक्षकोको गावकी चौकीका काम अपनी बारीके अनुसार अनिवार्य रूपसे करना होगा। इसके लिए योग्य ग्रामवासियोके नाम गावके रजिस्टरमे दर्ज रहेगे। गावका शासन पाच आदमियोकी पचायत करेगी, जो गावके ऐसे वयस्क स्त्री-पुरुषो द्वारा हर साल चुनी जायगी जिनकी कमसे कम निश्चित योग्यता होगी। उसके पास सारी आवश्यक सत्ता और न्यायाधिकार होगा। चूकि प्रचलित अर्थमे कोई दड-व्यवस्था नही होगी, इसलिए पचायतको एक साथ कानून बनाने, न्याय करने और प्रबधके अधिकार अपने वर्षभरके कार्यकालके लिए प्राप्त होगे। आज भी कोई गाव इस प्रकारका गणतत्र बन सकता है और उसमे किसीका — सरकारका भी — दखल नही होगा, क्योकि उसका देहातके साथ एकमात्र कारगर सबध लगान-वसूलीका है। मैने यहा पडोसके गावोके साथ और कोई केन्द्रीय सरकार हो तो उसके साथके सबधोके

प्रश्नका विवेचन नही किया है। मेरा उद्देश्य ग्राम-शासनका नकशा पेश करना है। इस शासन-व्यवस्थामे व्यक्तिगत स्वतत्रताके आधार पर पूर्ण लोकतत्र है। व्यक्ति अपने शासनका आप ही निर्माता है। उस पर और उसकी सरकार पर अहिसाके कानूनका राज्य होता है। उसमे और उसके गावमे दुनियाभरकी ताकतका सामना करनेका सामर्थ्य होता है, क्योकि प्रत्येक ग्रामीणके लिए मुख्य धर्म यह है कि वह अपनी और अपने गावकी इज्जतकी रक्षामे अपने प्राण दे दे।

हरिजन, २६–७–'४२

४

खादी और कताई

खादी देशमे सबकी आर्थिक स्वतत्रता और समानताके प्रारभका चिह्न है। उसे उसके सारे फलितार्थो सहित स्वीकार करना चाहिये। उसका अर्थ है सपूर्ण स्वदेशी मनोवृत्ति रखना और जीवनकी सारी आवश्यक वस्तुए भारतमे ही और वह भी देहातियोकी मेहनत और बुद्धिसे प्राप्त करना। देहात अधिकतर बातोमे आत्म-निर्भर होगे और भारतके शहरो और बाहरी दुनिया तककी स्वेच्छापूर्वक सेवा करेगे, जहा तक उससे दोनो पक्षोको लाभ होता रहेगा।

इसके लिए बहुतसे लोगोकी मनोवृत्ति और रुचियोमे क्रान्तिकारी परिवर्तनकी आवश्यकता है। यद्यपि कई बातोमे अहिंसक मार्ग सरल है, मगर बहुतसी बातोमे वह बडा कठिन भी है। वह प्रत्येक भारतीयके जीवनके मर्मको स्पर्श करता है, उसे अपने भीतर छुपी हुई ताकत होनेका भान कराता है और उसे इस बातका गर्व महसूस कराता है कि उसका भारतीय जनताके महासागरकी प्रत्येक बूदके साथ तादात्म्य है।

मेरे लिए खादी भारतीय मानव-समाजकी एकता, उसकी आर्थिक स्वतत्रता और समानताका प्रतीक है और इसलिए अन्तमें वह जवाहरलाल नेहरूके काव्यमय शब्दोमे 'हिन्दुस्तानकी आजादीकी वर्दी' है।

इसके सिवा, खादी मनोवृत्तिका अर्थ है जीवनके आवश्यक पदार्थोके उत्पादन और वितरणका विकेन्द्रीकरण। इसलिए अब तक जो सूत्र बन पाया है वह यह है कि प्रत्येक गाव अपनी जरूरतकी तमाम चीजे पैदा कर ले और शहरोकी आवश्यकताओके लिए कुछ फीसदी उत्पत्ति और भी कर ले।

खादीके फलितार्थ समझा चुकने पर मुझे यह बताना चाहिये कि खादीके प्रचारके लिए काग्रेसजन क्या कर सकते है और उन्हे क्या करना चाहिये। खादीके उत्पादनमे कपास उपजाना, चुनना, लोढना, साफ करना, धुनना, पूनिया बनाना, कातना, माड लगाना, रगना, ताना-बाना तैयार करना, बुनना और धोना शामिल है। रगाईके सिवा ये सब आवश्यक प्रक्रियाए है। ये सब गावोमे सफलतापूर्वक की जा सकती है और भारतके जिन गावोमे चरखा-सघ काम कर रहा है वहा की जा रही है।

अगर काग्रेसजन खादी-सबधी काग्रेसकी पुकारके प्रति सच्चे हो, तो वे चरखा-सघकी समय समय पर जारी की हुई उन हिदायतो पर अमल करेगे, जिनमे बताया जाता है कि खादी-योजनामे वे क्या भाग अदा कर सकते है। यहा तो थोडेसे व्यापक नियम ही दिये जा सकते है

१ जिस किसी परिवारके पास जमीनका टुकडा हो, वह कमसे कम घरके उपयोगके लिए कपास उगा सकता है। कपास उगानेकी प्रक्रिया आसान है। बिहारमे किसानोको अपनी ३/२० खेतीके योग्य जमीनमे नील उगानेके लिए कानूनन् मजबूर किया जाता था। यह विदेशी निलहोके हितमे होता था। तो फिर हम राष्ट्रके लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी जमीनके एक निश्चित भागमे कपास क्यो नही उगा सकते? पाठक देखेगे कि विकेन्द्रीकरण खादीकी प्रक्रियाओके प्रारभसे ही शुरू होता है। आजकल कपासकी फसल केन्द्रित है और भारतके दूर दूरके भागोमे भेजी जाती है। लडाईसे पहले वह मुख्यत ब्रिटेन और जापान भेजी जाती थी। वह पहले भी रुपया पैदा करनेवाली फसल थी और अब भी है, इसलिए उसके भावोमे उतार-चढाव होते रहते है। खादी-योजनाके अनुसार कपास उगानेमे इस अनिश्चितता और जुएकी गुजाइश नही रहती। उगानेवाला उतनी ही कपास उगाता है जितनीकी उसे जरूरत है। किसानको यह

जानना चाहिये कि उसका पहला काम अपनी ही आवश्यकताके लिए पैदा करना है। जब वह ऐसा करेगा तो बाजारकी मदीसे उसके बरबाद होनेकी सभावना कम हो जायगी।

२ प्रत्येक कातनेवाला लोढनेके लिए काफी कपास खरीद लेगा, अगर उसके पास अपनी कपास नही है। लोढनेका काम वह चरखीके बिना भी आसानीसे कर सकता है। वह अपने हिस्सेकी कपास सलाई और पटरीसे लोढ सकता है। जहा यह अव्यावहारिक समझा जाय, वहा हाथकी ओटी हुई कपास खरीद कर धुन लेना चाहिय। अपने लिए धुनाई एक छोटीसी पीजनसे बहुत परिश्रम किये बिना ही अच्छी तरह की जा सकती है। श्रम जितना विकेन्द्रित होगा, औजार उतने ही सस्ते और सादे होगे। पूनिया बनते ही कताईकी प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

जरा कल्पना तो कीजिये कि सारा राष्ट्र कताई तककी प्रक्रियाओमे एक साथ भाग ले, तो एकता और शिक्षाकी दृष्टिसे उसका कितना असर होगा। साथ साथ श्रम करनेसे गरीब-अमीरको बराबर करनेवाला जो परिणाम होगा उस पर विचार कीजिये।

अगर काग्रेसजन दिलसे इस काममे जुट जाय, तो वे औजारोमे सुधार कर लेगे और अनेक आविष्कार करेगे। हमारे देशमे श्रम और बुद्धिमें सबध-विच्छेद रहा है। नतीजा यह हुआ कि हम जहाके तहा रह गये। अगर दोनोमे अविच्छेद्य सबध हो और वह भी यहा सुझाये गये तरीके पर हो, तो उसके परिणामस्वरूप होनेवाली भलाईका हिसाब नही लगाया जा सकता।

यज्ञके रूपमे राष्ट्रव्यापी कताईकी इस योजनामे मै यह आशा नही रखता कि औसत स्त्री या पुरुष इस कामके लिए एक घटा रोजसे ज्यादा वक्त देंगे।

रचनात्मक कार्यक्रम, १९४५; पृ० ११–१४

चरखेका संदेश

चरखेका सन्देश उसकी परिधिसे कही ज्यादा व्यापक है। वह सादगी, मानव-सेवा व अहिसामय जीवनका तथा गरीब और अमीर,

पूजी और श्रम, राजा और किसानके बीच अविच्छेद्य सबध स्थापित करनेका सन्देश देता है।

यग इडिया, १७–९–'२५

'सर्वोदय' शब्दके जो फलितार्थ निकलते है, उनकी मै हिमायत करता हू। हमे छोटेसे छोटे मनुष्यके साथ वैसा ही बरताव करना चाहिये, जैसा हम चाहते है कि दुनिया हमारे साथ करे। सबको समान अवसर मिलना चाहिये। अवसर मिलने पर सभी मनुष्य आध्यात्मिक विकास कर सकते है। चरखा इसी बातका प्रतीक है।

हरिजन, १७–११–'४६

यज्ञके रूपमें कताई

'मुझे खानेके लिए काम करनेकी जरूरत ही नही है, तो फिर मै क्यो कातू?' यह सवाल पूछा जा सकता है। चूकि जो चीज मेरी नही है उसे मै खा रहा हू, इसलिए मुझे कातना चाहिये। मै अपने देशवासियोकी लूट पर गुजर कर रहा हू। पता लगाइये कि आपकी जेबमे एक एक पाई जो आती है, वह कैसे और कहासे आती है। तब मै जो लिख रहा हू उसकी सचाई आपकी समझमे अच्छी तरह आ जायगी।

मुझे नगोको जिन कपडोकी उन्हे जरूरत नही वे कपडे देकर और जिस कामकी उन्हे अत्यत आवश्यकता है वह काम न देकर उनका अपमान नही करना चाहिये। मै उन पर कृपा करनेका पाप नही करूगा। परतु यह जान लेने पर कि उन्हे दरिद्र बनानेमे मैने भी मदद की है, मै न तो उन्हे टुकडे डालूगा और न उतरे हुए कपडे दूगा, बल्कि अपना अच्छेसे अच्छा भोजन-वस्त्र उन्हे दूगा और उनके साथ काममे शरीक होऊगा।

ईश्वरने इन्सानको अपने भोजनके लिए काम करनेको बनाया है और कहा है कि जो लोग काम किये बिना खाते है वे चोर है।

यग इडिया, १३–१०–'२१

सेवाकी जडमे जब तक प्रेम या अहिसा न हो तब तक सेवा नही हो सकती। सच्चा प्रेम महासागरकी भाति असीम होता है और हमारे

भीतर ही भीतर उठता और उमडता हुआ बाहर फैल जाता है तथा सारी सीमाओ और सरहदोको पार करता हुआ पूरी दुनियाको व्याप्त कर लेता है। साथ ही यह सेवा शरीर-श्रमके बिना भी असभव है, जिसे गीताने दूसरे शब्दोमे यज्ञ कहा हे। जब कोई स्त्री या पुरुष सेवाके खातिर शरीर-श्रम करता है, तभी उसे जीनेका हक मिलता है।

यग इडिया, २०–९–'२८

मेरे विचारसे यज्ञके रूपमे कताई ही सबसे उपयुक्त और अपनाने लायक शरीर-श्रम हो सकता है। मै इससे अधिक पवित्र या राष्ट्रीय अन्य किसी वस्तुकी कल्पना नही कर सकता कि हम सब घटेभर रोज वही परिश्रम करे जो गरीबोको करना पडता है और इस प्रकार हम उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव-जातिके साथ एक हो जाय। मै इससे अच्छी ईश्वर-पूजाकी कल्पना नही कर सकता कि उसके नाम पर गरीबोके लिए मै भी उसी तरह श्रम करू जैसे वे करते है। चरखेमे दुनियाकी दौलतका अधिक न्यायपूर्ण बटवारा निहित है।

यग इडिया, २०–१०–'२१

मै आपसे अनुरोध करता हू कि गरीबोके लिए छोटासा यज्ञ करके उन्हे कुछ तो बदला दीजिये। कारण, गीता कहती है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है वह चोरी करता है। हमारे युगका और हमारे लिए यह यज्ञ चरखा ही है। मै नित्य इसकी चर्चा करता हू और इसके विषयमे लिखता रहता हू।

यग इडिया, २०–१–'२७

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थामे कताईका स्थान

जब हम एक (खादीके) उद्योगका पुनरुद्धार कर लेगे, तो और सब उद्योगोका उद्धार अपने-आप हो जायगा। मै चरखेको आधार बनाकर सम्यक् ग्राम-जीवनकी रचना करना चाहूगा, मै चरखेको केन्द्र बना कर ऐसी व्यवस्था करूगा कि उसके चारो ओर दूसरे उद्योग पनपते रहे।

यग इडिया, २१–५–'२५

चरखा प्रत्येक घरके लिए एक उपयोगी और अनिवार्य वस्तु है। वह राष्ट्रकी खुशहाली और इसलिए आजादीका निशान है। वह व्यावसायिक युद्धका नही, परतु व्यावसायिक शान्तिका प्रतीक है। उसमे ससारके राष्ट्रोके प्रति दुर्भावका नही, बल्कि सद्भाव और स्वावलबनका सदेश है। उसे ससारकी शान्तिके लिए खतरा पैदा करनेवाली और उसके साधनोका शोषण करनेवाली जलसेनाकी जरूरत नही है, परतु करोडो लोगोके इस धार्मिक सकल्पकी आवश्यकता है कि जैसे वे आजकल अपने-अपने घरोमे अपना खाना पका लेते है, वैसे ही अपने-अपने घरोमे अपना सूत भी कात ले।

यग इडिया, ८–१२–'२१

हाथ-कताईका यह उद्देश्य नही है कि वह किसी मौजूदा ढगके उद्योगका स्थान लेनेके लिए उससे स्पर्धा करे, और न वह ऐसी स्पर्धा करती ही है। उसका यह लक्ष्य नही कि एक भी सशक्त आदमीको, जो कोई दूसरा काम करके अच्छी रोजी कमा सकता है, उसकी जगहसे हटाया जाय। उसकी तरफसे तो केवल एक ही दावा किया जाता है कि भारतके सामने जो सबसे बडी समस्या है, उसका कोई तुरत काममे आने लायक और स्थायी हल सिर्फ वही पेश करती है। वह समस्या यह है कि भारतकी आबादीका बहुत बडा भाग वर्षमे लगभग छह महीने मजबूरन् बेकार रहता है, क्योकि खेतीके उद्योगके साथ उसके पास कोई सहायक धधा नही है और इससे जनसाधारणमे भुखमरीका रोग पुराना हो गया है।

यग इडिया, २१–१०–'२६

भूखो मरनेवाले इन्सानको सबसे पहले पेटकी सूझती है। वह रोटीके टुकडेके लिए अपनी आजादी और सब-कुछ बेच देगा। भारतके करोडो लोगोका यही हाल है। उनके लिए स्वतत्रता, ईश्वर और ऐसे तमाम शब्द निरे अक्षर है, जो किसी भी अर्थके बिना यो ही जोडकर रख दिये गये है। ये उन्हे खटकते है। अगर हमे उन लोगोमे स्वतत्रताकी भावना पैदा करनी है, तो हमे उन्हे ऐसा काम जुटाकर देना होगा, जिसे

वे अपने वीरान घरोमे आसानीसे कर सके और जिससे कमसे कम उनका गुजर तो हो जाय। यह काम चरखे द्वारा ही किया जा सकता है। और जब वे स्वावलबी बन जायेगे और अपना गुजर स्वय करने योग्य हो जायेगे, तब हम उनसे आजादी और काग्रेस वगैराकी चर्चा करनेकी स्थितिमे होगे। इसलिए जो लोग उन्हे काम और रोटीका टुकडा मिलनेके साधन दिलायेगे, वे उनके उद्धारक होगे और वे ही उनमे आजादीकी भूख जगानेवाले लोग होगे। इसलिए चरखेका बडा राजनीतिक महत्त्व है।

यग इडिया, १८–३–'२६

इसके लिए कार्यकर्ताओको जनसाधारणके साथ अत्यत गहरा सपर्क रखकर एक हो जानेकी जरूरत होगी। अगर यह काम सफल हो गया, तो इसका फल यह होगा कि विदेशी कपडा बिलकुल नही रहेगा और भारतकी वर्तमान शासन-व्यवस्था पर विदेशी पूजीका जो जहरीला असर है, वह बिलकुल नष्ट न हुआ तो भी कम जरूर हो जायगा। यह उसका बहुत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम होगा।

यग इडिया, ५–५–'२७

खादीका आदर्श सदा ही ग्रामोके पुनरुद्धारका सबसे बढिया साधन रहा है। इसके जरिये गरीबोमे सच्ची शक्ति पैदा होगी, जिससे स्वराज्य अपने-आप आ जायगा।

('स्वराज थ्रू चरखा'–कनु गाधी द्वारा सकलित, १९४५, पृ० ८)

मुझे अपना अनुभव बताता है कि खादीको शहरो और गावो दोनोमे सर्वव्यापी बनानेके लिए यह जरूरी है कि वह सूतके बदलेमे ही मिले। मुझे आशा है कि जैसे जैसे समय बीतेगा लोग स्वय यह आग्रह करेगे कि सूतके सिक्केके द्वारा खादी खरीदे। लेकिन ऐसा न हुआ और लोगोने सूत अनिच्छासे पैदा किया, तो मुझे डर है कि अहिंसाके द्वारा स्वराज्य असभव हो जायगा।

यह निश्चित है कि मिलो और शहरोकी सख्या बढनेसे हिन्दुस्तानके करोडो लोगोकी खुशहालीमे मदद नही मिलेगी। उलटे, उससे बेकारोकी

गरीबी और बढ जायगी और भूखसे पैदा होनेवाले तमाम रोग फैल जायेगे। अगर इस दृश्यको शहरोमे रहनेवाले लोग शान्तचित्त होकर देख सके, तो कहनेको कुछ नही रह जाता। वैसी सूरतमे भारतमे सत्य और अहिसाका राज्य न होकर हिंसाका बोलबाला हो जायगा। और हमे मान लेना पडेगा कि कुदरती तौर पर खादीके लिए यहा कोई स्थान नही है। फिर तो सबके लिए फौजी तालीम लाजिमी हो जायगी। परन्तु हमे करोडो भूखोकी दृष्टिसे सोचना चाहिये। अगर उन्हे फिरसे जीवन-दान देना है, उन्हे जिन्दा रखना है, तो चरखेको मुख्य प्रवृत्ति बनाना पडेगा और लोगोको स्वेच्छासे कातना होगा।

स्वराज थ्रू चरखा, १९४५, पृ० ५

५

शिक्षा और संस्कृति

शिक्षा

अहिंसक प्रतिरोध सबसे उदात्त और बढिया शिक्षा है। वह बच्चोको मिलनेवाली साधारण अक्षर-ज्ञानकी शिक्षाके बाद नही, पहले होनी चाहिये। इससे इनकार नही किया जा सकता कि बच्चेको, वह वर्णमाला लिखे और सासारिक ज्ञान प्राप्त करे उसके पहले, यह जानना चाहिये कि आत्मा क्या है, सत्य क्या है, प्रेम क्या है और आत्मामे क्या क्या शक्तिया छुपी हुई है। शिक्षाका जरूरी अग यह होना चाहिये कि बालक जीवन-सग्राममे प्रेमसे घृणाको, सत्यसे असत्यको और कष्ट-सहनसे हिंसाको आसानीके साथ जीतना सीखे। इस सत्यका बल अनुभव करनेके कारण ही मैंने सत्याग्रह-सग्रामके उत्तरार्धमे पहले टॉल्स्टॉय फार्ममे और बादमे फिनिक्स आश्रममे बच्चोको इसी ढगकी तालीम देनेकी भरसक कोशिश की थी।

स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाधी, चौथा सस्करण; पृ० १८९

मेरी रायमे बुद्धिकी सच्ची शिक्षा शरीरकी स्थूल इन्द्रियो अर्थात् हाथ, पैर, आख, कान, नाक वगैराके ठीक ठीक उपयोग और तालीमके द्वारा ही हो सकती है। दूसरे शब्दोमे, बच्चे द्वारा इन्द्रियोका बुद्धिपूर्वक उपयोग उसकी बुद्धिके विकासका उत्तम और जल्दसे जल्द तरीका है। परन्तु शरीर और मस्तिष्कके विकासके साथ आत्माकी जागृति भी उतनी ही नही होगी, तो केवल बुद्धिका विकास घटिया और एकागी वस्तु ही साबित होगा। आध्यात्मिक शिक्षासे मेरा मतलब हृदयकी शिक्षा है। इसलिए मस्तिष्कका ठीक ठीक और सर्वागीण विकास तभी हो सकता है, जब साथ साथ बच्चेकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियोकी भी शिक्षा होती रहे। ये सब बाते अविभाज्य है। इसलिए इस सिद्धान्तके अनुसार यह मान लेना घोर कुतर्क होगा कि उनका विकास अलग अलग या एक-दूसरेसे स्वतत्र रूपमे किया जा सकता है।

हरिजन, ८–५–'३७

शिक्षासे मेरा अभिप्राय यह है कि बच्चे और मनुष्यके शरीर, बुद्धि और आत्माके सभी उत्तम गुणोको प्रगट किया जाय। पढना-लिखना शिक्षाका अन्त तो है ही नही, वह आदि भी नही है। वह पुरुष और स्त्रीको शिक्षा देनेके साधनोमे से केवल एक साधन है। साक्षरता स्वय कोई शिक्षा नही है। इसलिए मै तो बच्चेकी शिक्षाका प्रारभ इस तरह करूगा कि उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाई जाय और जिस क्षणसे वह अपनी तालीम शुरू करे उसी क्षणसे उसे उत्पादनका काम करने योग्य बना दिया जाय।

मेरे मतानुसार इस प्रकारकी शिक्षा-पद्धतिमे मस्तिष्क और आत्माका उच्चतम विकास सभव है। इतनी ही बात है कि आजकलकी तरह प्रत्येक दस्तकारी केवल यात्रिक ढगसे न सिखाकर वैज्ञानिक ढगसे सिखानी पडेगी। अर्थात् बच्चेको प्रत्येक प्रक्रियाका कारण जानना चाहिये।

हरिजन, ३१–७–'३७

मैं चाहता हू कि सारी शिक्षा किसी दस्तकारी या उद्योगके द्वारा दी जाय।

आपको यह ध्यानमे रखना चाहिये कि इस प्रारभिक शिक्षामे सफाई, तन्दुरुस्ती, भोजनशास्त्र, अपना काम आप करने और घर पर माता-पिताको मदद देने वगैराके मूल सिद्धान्त शामिल होगे। मौजूदा पीढीके लडकोको स्वच्छता और स्वावलबनका कोई ज्ञान नही होता और वे शरीरसे कमजोर होते है। इसलिए मै सगीतमय कवायदके जरिये उनको अनिवार्य शारीरिक तालीम दिलवाऊगा।

हरिजन, ३०–१०–'३७

इस प्रकार कताई और धुनाई जैसे ग्रामोद्योगो द्वारा प्राथमिक शिक्षा देनेकी मेरी योजनामे कल्पना यह है कि यह एक ऐसी शान्त सामाजिक क्रान्तिकी अग्रदूत बने, जिसमे अत्यत दूरगामी परिणाम भरे हुए है। इससे नगर और ग्रामके सबधोका एक स्वास्थ्यप्रद और नैतिक आधार प्राप्त होगा और समाजकी मौजूदा अरक्षित अवस्था और वर्गोंके परस्पर विषाक्त सबधोकी कुछ बडीसे बडी बुराइयोको दूर करनेमे बहुत सहायता मिलेगी। इससे हमारे देहातोका दिन-दिन बढनेवाला ह्रास रुक जायगा और एक ऐसी अधिक न्यायपूर्ण व्यवस्थाकी बुनियाद पडेगी, जिसमे गरीब-अमीरका अप्राकृतिक भेद न हो और हरएकके लिए गुजरके लायक कमाई और स्वतत्रताके अधिकारका आश्वासन हो। और यह सब किसी भयकर और रक्तरजित वर्गयुद्ध अथवा बहुत भारी पूजीके व्ययके बिना ही हो जायगा। भारत जैसे विशाल देशका यत्रीकरण किया गया, तो इन दोनो बातोमे से एक तो जरूर होगी। मेरी योजनामे विदेशोसे मगाई हुई मशीनरी या वैज्ञानिक और यात्रिक दक्षता पर भी लाचार होकर निर्भर करनेकी जरूरत नही पडेगी। आखिरी बात यह है कि बडे बडे विशेषज्ञोकी बुद्धिकी जरूरत न होनेके कारण एक तरहसे जनसाधारणके भाग्यका निपटारा स्वय उन्हीके हाथमे रहेगा।

हरिजन, ९–१०–'३७

शिक्षाका ध्येय

प्र० — जब भारतको स्वराज्य मिल जायगा तब शिक्षाका आपका क्या ध्येय होगा?

उ० — चरित्र-निर्माण। मै साहस, बल, सदाचार और बडे लक्ष्यके लिए काम करनेमे आत्मोत्सर्गकी शक्तिका विकास करानेकी कोशिश करूगा। यह साक्षरतासे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, किताबी ज्ञान तो उस बडे उद्देश्यका एक साधनमात्र है।

प्र० — क्या शिक्षाके जरिये आप किसी खास तरहका सामाजिक सगठन पैदा करनेका प्रयत्न करेगे?

उ० — मेरा खयाल है कि अगर व्यक्तिका चरित्र-निर्माण करनेमे हम सफल हो जायेगे, तो समाज अपना काम आप सभाल लेगा। इस प्रकार जिन व्यक्तियोका विकास हो जायगा, उनके हाथोमे समाजके सगठनका काम मै खुशीसे सौप दूगा।

('रीमेकर्स ऑफ मेनकाइण्ड', लेखक — कार्ल्टन वाशबर्न, १९३२, पृ० १०४–०५)

दूसरी सस्कृतियोंका ज्ञान

मै चाहता हू कि उस भाषा (अग्रेजी) मे और इसी तरह ससारकी अन्य भाषाओमे जो ज्ञान-भडार भरा पडा है, उसे राष्ट्र अपनी ही देशी भाषाओके द्वारा प्राप्त करे। मुझे रवीन्द्रनाथकी अपूर्व रचनाओकी खूबिया जाननेके लिए बगला सीखनेकी जरूरत नही। वे मुझे अच्छे अनुवादोसे मिल जाती है। गुजराती लडको और लडकियोको टॉल्स्टॉयकी छोटी-छोटी कहानियोसे लाभ उठानेके लिए रूसी भाषा सीखनेकी आवश्यकता नही। वे तो उन्हे अच्छे अनुवादोके जरिये सीख लेते है। अग्रेजोको यह गर्व है कि ससारमे जो उत्तम साहित्य उत्पन्न होता है, वह प्रकाशित होनेके एक सप्ताहके भीतर सीधी-सादी अग्रेजीमे उस राष्ट्रके हाथोमे आ जाता है। शेक्सपीयर और मिल्टनने जो कुछ सोचा या लिखा है, उसके उत्तम भागको प्राप्त करनेके लिए मुझे अग्रेजी सीखनेकी जरूरत क्यो हो?

यह अच्छी मितव्ययिता होगी यदि हम विद्यार्थियोका एक अलग वर्ग ऐसा रख दे, जिसका काम यह हो कि ससारकी भिन्न-भिन्न भाषाओमे से सीखनेकी उत्तम बाते वह जान ले और उनके अनुवाद देशी भाषाओमे करके देता रहे।

हरिजन, ९–७–'३८

सांस्कृतिक विकास

यह बात मेरे विचारमे भी नही आ सकती कि हम कूपमडूक बन जाय या अपने चारो ओर दीवारे खडी कर ले। मगर मेरा नम्रतापूर्वक यह कथन जरूर है कि दूसरी सस्कृतियोकी समझ और कद्र स्वय अपनी सस्कृतिकी कद्र होने और उसे हजम कर लेनेके बाद होनी चाहिये, पहले हरगिज नही। मेरा दृढ मत है कि कोई सस्कृति इतने रत्न-भण्डारसे भरी हुई नही है जितनी हमारी अपनी सस्कृति है। हमने उसे जाना नही है। हमे तो उसके अध्ययनको तुच्छ मानना और उसका मूल्य कम करना सिखाया गया है। हमने उसके अनुसार जीवन बिताना छोड दिया है। उसका ज्ञान भी हो, मगर उस पर अमल न किया जाय, तो वह मसालेमे रखी हुई लाश जैसी है, जो शायद दीखनेमे सुन्दर हो, परन्तु उससे कोई प्रेरणा या पवित्रता प्राप्त नही होती। मेरा धर्म जहा यह आग्रह रखता है कि स्वय अपनी सस्कृतिको हृदयाकित करके उसके अनुसार आचरण किया जाय — क्योकि वैसा न किया जाय तो उसका परिणाम सामाजिक आत्महत्या होगा — वहा वह दूसरी सस्कृतियोको तुच्छ समझने या उनकी उपेक्षा करनेका निषेध भी करता है।

यग इडिया, १–९–'२१

भारतकी भावी सस्कृति

कोई सस्कृति जिन्दा नही रह सकती, अगर वह दूसरोका बहिष्कार करनेकी कोशिश करती है। इस समय भारतमे शुद्ध आर्य सस्कृति जैसी कोई चीज मौजूद नही है। आर्य लोग भारतके ही रहनेवाले थे या जबरन् यहा आ घुसे थे, इसमे मुझे बहुत दिलचस्पी नही है। मुझे जिस बातमे दिलचस्पी है वह यह है कि मेरे पूर्वज एक-दूसरेके साथ बडी आजादीके साथ मिल गये और मौजूदा पीढीवाले हम लोग उस मिलावटकी ही उपज है।

हरिजन, ९–५–'३६

मै नही चाहता कि मेरे घरके चारो ओर दीवारे खडी कर दी जाय और मेरी खिडकिया बन्द कर दी जाय। मै चाहता हू कि सब

देशोकी सस्कृतियोकी हवा मेरे घरके चारो ओर अधिकसे अधिक स्वतत्रताके साथ बहती रहे। मगर मै उनमे से किसीके झोकेमे उड नही जाऊगा। मै चाहूगा कि साहित्यमे रुचि रखनेवाले हमारे युवा स्त्री-पुरुष जितना चाहे अग्रेजी और ससारकी दूसरी भाषाए सीखे और फिर उनसे यह आशा रखूगा कि वे अपनी विद्वत्ताका लाभ भारत और ससारको उसी तरह दे जैसे बोस, राय या स्वय कविवर दे रहे है। लेकिन मै यह नही चाहूगा कि एक भी भारतवासी अपनी मातृभाषाको भूल जाय, उसकी उपेक्षा करे, उस पर शर्मिन्दा हो या यह अनुभव करे कि वह अपनी खुदकी देशी भाषामे विचार नही कर सकता या अपने उत्तम विचार प्रकट नही कर सकता। मेरा धर्म कैदखानेका धर्म नही है।

यग इडिया, १–६–'२१

वह उन भिन्न-भिन्न सस्कृतियोके सामजस्यकी प्रतीक है, जिनके हिन्दुस्तानमे पैर जम गये है, जिनका भारतीय जीवन पर प्रभाव पड चुका है और जो स्वय भी भारतीय जीवनसे प्रभावित हुई है। यह सामजस्य कुदरती तौर पर स्वदेशी ढगका होगा, जिसमे प्रत्येक सस्कृतिके लिए अपना उचित स्थान सुरक्षित होगा। वह अमरीकी ढगका सामजस्य नही होगा, जिसमे एक प्रमुख सस्कृति बाकीकी सस्कृतियोको हजम कर लेती है और जिसका लक्ष्य मेलकी तरफ नही है, बल्कि कृत्रिम और जबरदस्तीकी एकताकी ओर है।

यग इडिया, १७–११–'२०

६

आरोग्य और आरोग्यशास्त्र

रोगोका इलाज

जो चीज हमे सब तक पहुचानी है, सादगी उसकी खास निशानी होनी चाहिये। जिस चीजमे करोडो लोगोके लाभका हेतु हो, उसमे वहुत पाडित्यकी आवश्यकता नही होती। पाडित्य तो चन्द लोग ही प्राप्त कर सकते है और इसलिए उसका लाभ अमीरोको ही मिल सकता है। परन्तु भारतवर्ष तो अपने सात लाख गावोमे रहता है, जो अज्ञात, छोटे-छोटे और दूर-दूर बसे हुए है और जिनकी आबादी कही कही तो मुश्किलसे दो चार सौसे ज्यादा होती है और अकसर चालीस-पचास भी नही होती। यही असली हिन्दुस्तान है, यही मेरा भारत है, जिसके लिए मै जी रहा हू। इन गरीब लोगोके पास आप बडे बडे डॉक्टरोको और दवा-दारूके सामानको नही पहुचा सकते। उनकी एकमात्र आशा तो सीधे-सादे प्राकृतिक इलाज और रामनाममे है।

हरिजन, ७–४–'४६

मेरी रायमे जहा व्यक्तिगत, पारिवारिक और सार्वजनिक सफाईके नियमोका पालन किया जाता है और भोजन तथा व्यायामके मामलेमे उचित सावधानी रखी जाती है, वहा बीमारी या रोगका कोई अवसर नही आना चाहिये। जहा सपूर्ण शुद्धता, भीतरी और बाहरी दोनो तरहकी शुद्धता होती है, वहा बीमारी असभव हो जाती है।

हरिजन, २६–५–'४६

और यदि बीमारीको दूर करनेके लिए प्रकृतिके तमाम नियमोका पालन करते हुए भी बीमारी आ जाती है, तो फिर उसकी रामबाण औषधि रामनाम है। परन्तु यह रामनाम-चिकित्सा पलभरमे सार्वत्रिक नही बन सकती। रोगीको विश्वास दिलानेके लिए चिकित्सकको रामनामकी शक्तिकी

जिन्दा मिसाल बनना पडता है। तब तक प्रकृतिके पचतत्त्वोसे जो कुछ मिल जाय उसे अवश्य स्वीकार और इस्तेमाल करना चाहिये। वे तत्त्व है पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु। मेरे खयालसे यह निसर्गोपचारकी सीमा है। इसलिए उरुलीकाचनमे मेरा प्रयोग इतना ही है कि देहातियोको स्वच्छ और स्वस्थ जीवन बिताना सिखा दिया जाय और पचतत्त्वोके ठीक उपयोग द्वारा बीमारोको अच्छा करनेकी कोशिश की जाय। जरूरी हो तो स्थानीय जडी-बूटिया भी काममे ली जा सकती है। अवश्य ही लाभदायक और सतुलित आहार प्राकृतिक चिकित्साका अनिवार्य अग है।

हरिजन, ११–८–'४६

७

शराब और नशीले पदार्थोकी बुराई

इन अभागे मनुष्योको, जो इस व्यसनके गुलाम बन गये है, अपने-आपसे बचानेकी जरूरत है। उनमे से कुछ तो ऐसी मदद चाहते भी है। आप इस झूठे तर्कके धोखेमे न आइये कि भारतको जबरन् निर्व्यसनी नही बनाना चाहिये और जो शराब पीना चाहते है उन्हे पीनेकी सुविधाए अवश्य मिलनी चाहिये। राज्य अपनी प्रजाके दुर्व्यसनोके लिए इतजाम नही करता। हम वेश्यालयोका नियमन नही करते और उनके लिए परवाने नही देते। हम चोरोको अपनी चोरीकी कुटेव जारी रखनेके लिए सहूलियते मुहैया नही करते। मै शराबखोरीको चोरी और शायद व्यभिचार करनेसे भी अधिक निन्दनीय मानता हू। क्या वह अकसर इन दोनोकी जननी नही होती? मेरा अनुरोध है कि आप शराबकी आमदनीका अस्तित्व मिटा देने और शराबखानोको उठा देनेके काममे देशका साथ दे।

यग इडिया, ८–६–'२१

शराब और नशीले द्रव्य, जिन्हे उनका व्यसन है और जो उनका रोजगार करते है, दोनोको गिराते है। शराबी आदमी पत्नी माता और

बहनका भेद भूल जाता है और ऐसे गुनाह कर डालता है, जिन पर वह अपनी शान्त अवस्थामे लज्जा अनुभव करता है। जिसका मजदूरोसे कुछ भी सबध आया है, वह जानता है कि जब वे शरावके पैशाचिक प्रभावके अधीन होते है, तब उनकी क्या दशा होती है। दूसरे वर्गोके व्यक्तियो पर भी उसका प्रभाव ऐसा ही होता है। मैने एक जहाजके कप्तानको नशेकी हालतमे बेसुध होते देखा है। जहाजकी जिम्मेदारी उसकी इस हालतके कारण प्रधान अधिकारीको सौप देनी पडी थी। बैरिस्टरोको शराब पीनेके बाद नालियोमे लुढकते देखा गया है।

यग इडिया, ४–२–'२६

शराब और नशीले द्रव्य — ये शैतानके दो हाथ है, जिनके प्रहारोसे वह अपने असहाय गुलामोको बेभान और विमूढ बना डालता है।

यग इडिया, २२–४–'२६

मै मानता हू कि भूखसे पीडित स्त्री-पुरुष जो छोटी-मोटी चोरिया करते है और जिनके कारण उन पर मुकदमे चलाये जाते है और सजाये दी जाती है, उनके बनिस्बत भारतमे मद्यपान ज्यादा बडा अपराध है। प्रेमकी शक्तिकी पूरी उपलब्धि न होनेके कारण मै दण्ड-विधानकी प्रथाको उसके सयत रूपमे — अनिच्छापूर्वक और लाचारीसे — स्वीकार करता हू। और जब तक मै उसे स्वीकार करता हू तब तक मै इस बातकी हिमायत करना अपना कर्तव्य मानता हू कि जो लोग इस विनाशक पेयका निर्माण करते है और जो बार-बार चेतावनी देने पर भी उसका व्यसन छोडते नही है, उन्हे बिना लबी चौडी कार्रवाई किये तडातड सजाये दी जाय। मै अपने बच्चोको आगमे या गहरे पानीमे जानेसे जबरन् रोकनेमे कोई सकोच नही करता। शराबरूपी लाल पानीमे जा पडना धधकती भट्टी या बाढमे जा पडनेसे भी ज्यादा खतरनाक है। भट्टी या बाढ तो केवल शरीरका ही नाश करती है, लेकिन शराब शरीर और आत्मा दोनोका नाश कर डालती है।

यग इडिया, ८–८–'२९

अगर मुझे घटेभरके लिए भारतका सर्वाधिकारी बना दिया जाय, तो मै सबसे पहले तमाम शराबखाने मुआवजा दिये बिना बन्द करा दूगा और कारखानोके मालिकोको मजबूर करूगा कि वे अपने मजदूरोके लिए मानवोचित स्थितिया पैदा करे और जलपान तथा मनोरजन-घर खोले, जहा इन मजदूरोको निर्दोष पेय और उतने ही निर्दोष मनोरजन प्राप्त हो सके।

यग इडिया २५–६–'३१

खानगी कोशिशोकी जरूरत

मद्यपान-निषेधका काम मुख्यत हमीको करना होगा। सरकार इस मामलेमे अधिकसे अधिक यह कर सकती है कि ताडीके परवाने देना बन्द कर दे, परन्तु वह शराबीसे उसका दुर्व्यसन शायद ही छुडवा सकती है। कामका यह हिस्सा तो खानगी कोशिशोसे ही पूरा करना होगा।

यग इडिया, १३–९–'२८

अगर हमे अहिंसक प्रयत्नसे अपने लक्ष्य तक पहुचना है, तो जो लाखो स्त्री-पुरुष नशीली चीजोके अभिशापके शिकार बने हुए हैं, उनके भाग्यको हम भावी सरकारके भरोसे नही छोड सकते।

इस बुराईको मिटानेमे डॉक्टर लोग बहुत कारगर हाथ बटा सकते है। उन्हे मदिरा और अफीमके व्यसनियोको इस अभिशापसे मुक्त करनेके तरीके ढूढ निकालने होगे।

इस सुधारको आगे बढानेके काममे स्त्रियो और विद्यार्थियोके लिए विशेष अवसर है। प्रेमपूर्ण सेवाके अनेक कार्योसे वे व्यसनियो पर ऐसा काबू पा सकते है, जिससे इस बुरी आदतको छोड देनेकी उनकी पुकार सुननेको वे मजबूर हो जाय।

काग्रेस कमेटिया विश्राम-घर खोल सकती है, जहा थके हुए मजदूर आराम कर सकते है, उन्हे स्वास्थ्यप्रद और सस्ता जलपान तथा उपयुक्त खेल खेलनेको मिल सकते है। ये सब काम मनोहर और ऊचा उठानेवाले

है। स्वराज्यका अहिंसक तरीका नया ही तरीका है। इसमे पुराने मूल्योका स्थान नये मूल्य ले लेते है। हिंसक मार्गमे ऐसे सुधारोके लिए स्थान नही हो सकता। उस मार्गमे विश्वास रखनेवाले अधीरतामे और मै तो यह भी कहूगा कि अज्ञानमे इन चीजोको कयामतके लिए मुलतवी कर देते है। वे भूल जाते है कि स्थायी और लाभदायक मुक्ति भीतरसे अर्थात् आत्मशुद्धिसे होती है। रचनात्मक कार्यकर्ता कानून द्वारा मदिरा-निषेधका मार्ग तैयार नही करते, तो भी वे उसे आसान और सफल जरूर बनाते है।

रचनात्मक कार्यक्रम, १९४१, पृ० १०–११

जुआ

गुजरातके गावोमे जुएसे जो सत्यानाश हो रहा है उसकी दु खद कथाए सरदार और उनके स्वयसेवकोने मुझे सुनाई है। यह बीमारी आधीवाली रातके दावानलकी तरह फैल रही है। हरएकको मेहनत किये बिना धनवान बननेकी जल्दी मची हुई है। जुआरी यह तर्क करता है कि किसी न किसीने तो आजके बाजार-भावोका ठीक अनुमान लगाया ही होगा, तब मै स्वय क्यो न लगाऊ? और फिर वह अपने विनाशकी ओर दौडता है। जहा किसी समय गुजरातके घरोमे सुखका साम्राज्य था, वहा अब उनकी शान्ति नष्ट हो रही है।

इसमे शक नही कि नाम कुछ भी दीजिये, यह जुआ अनादि-कालसे चला आ रहा है, रूप और नाम भले ही बदले हो, चीज बिलकुल नही बदली है।

कानून तो इस जुएके विरुद्ध होना ही चाहिये। परन्तु यदि उसे लोकमतका समर्थन प्राप्त नही है तो उससे कुछ नही होगा। इसलिए कार्यकर्ताओके लिए वैसे ही सचेष्ट होनेकी आवश्यकता है, जैसे वे प्लेगके दिनोमे हुए थे या भूकपके कष्ट-निवारणके समय रहे है। उन्हे तब तक चैन नही लेना चाहिये, जब तक इस बुराईका उन्मूलन न हो जाय। एक तरहसे यह प्लेग या भूचालसे भी बुरी है, क्योकि यह आत्माका नाश करती है। आत्माहीन व्यक्ति पृथ्वी पर भारस्वरूप होता है। नि सन्देह

जुएके विरुद्ध लडाई इतनी सीधी-सादी चीज नही, जितनी प्लेग या भूकंपके कष्ट-निवारणकी लडाई है। इन लडाइयोमे पीडितोकी तरफसे थोडा या बहुत सहयोग मिलता है। जुएके मामलेमे तो उसके शिकार स्वय कष्ट मोल लेते है और उनसे चिपटे रहना चाहते है। जुआरीसे उसकी बदी छुडाना वैसा ही है, जैसा शराबीसे शराबकी लत छुडाना। इसलिए जुएके विरुद्ध लडना बहुत कठिन काम है। परन्तु उसे करना ही होगा।

हरिजन, १५–६–'३५

घुडदौडके बारेमे मै कुछ नही जानता। इसके साथ जो चीजे लगी हुई है उनके कारण मैंने इसे बहुत खतरनाक माना है। मुझे मालूम है कि अनेक लोग घुडदौडके मैदानमे बरबाद हो गये है।

यग इडिया, २७–४–'२१

जहा तक मै जानता हू, घुडदौडका जुआ अन्य बहुतसी चीजोकी तरह पश्चिमसे आयी हुई वस्तु है, और मेरा बस चले तो घुडदौडके जुएको कानूनका जितना सरक्षण प्राप्त है उसे भी मै वापस ले लू। मैंने यह दलील सुनी है कि घोडोकी अच्छी नस्ल पैदा करनेके लिए घुडदौड जरूरी है। इसमे सचाई हो सकती है। क्या जुएके बिना घुडदौड नही हो सकती? या जुएसे भी घोडोकी अच्छी नस्ल पैदा करनेमे सहायता मिलती है?

हरिजन, ४–९–'३७

८

स्त्रियां

स्त्रीको रिवाज और कानूनके अनुसार, जिनका निर्माण पुरुषने किया है और जिनके बनानेमे स्त्रीका कोई हाथ नही रहा, दबाकर रखा गया है। अहिसाके आधारवाली जीवन-योजनामे स्त्रीको अपने भाग्य-निर्माणका उतना ही अधिकार है जितना पुरुषको है। परन्तु चूकि अहिसक समाजमे प्रत्येक अधिकार कर्तव्य-पालनसे उत्पन्न होता है, इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक आचरणके नियम आपसके सहयोग और सलाहसे ही बनाये जाने चाहिये। वे बाहरसे हरगिज नही थोपे जा सकते। पुरुषोने स्त्रियोके प्रति अपने व्यवहारमे इस सचाईको पूरी तरह महसूस नही किया है। उन्होने अपनेको स्त्रियोके मित्र और साथी न मानकर उनके प्रभु और स्वामी समझा है। काग्रेसजनोका यह विशेषाधिकार है कि वे भारतकी महिलाओको हाथ पकडकर ऊचा उठाये। स्त्रियोकी किसी हद तक उन प्राचीन गुलामोकी-सी हालत है, जो यह नही जानते थे कि वे कभी आजाद हो सकते है या उन्हे आजाद होना है, और जब आजादी आ गई तब क्षण भरके लिए उन्हे लाचारी महसूस हुई। स्त्रियोको सिखाया गया है कि वे अपनेको पुरुषोकी दासी समझे। यह काग्रेसजनोका काम है कि वे स्त्रियोको अपना पूरा दर्जा प्राप्त कराये और उन्हे पुरुषकी बराबरीका हिस्सा अदा करने योग्य बना दे।

अगर निश्चय कर लिया जाय तो यह क्रान्ति आसान है। काग्रेसजन अपने ही घरोसे कार्यारभ कर दे। पत्नियोको गुडिया और भोगकी वस्तु न समझकर उनके प्रति सेवाकार्यके सम्मान्य साथीका बरताव करना चाहिये। इसके लिए जिन स्त्रियोको सास्कृतिक शिक्षा प्राप्त नही हुई है, उन्हे अपने पतियोसे यथासभव यह शिक्षा मिलनी चाहिये। आवश्यक परिवर्तनोके साथ यही बात माताओ और पुत्रियोके लिए भी लागू होती है।

यह बताना शायद ही जरूरी है कि मैने भारतकी स्त्रियोकी असहाय अवस्थाका इकतरफा चित्र खीचा है। मुझे यह बात अच्छी तरह मालूम

है कि देहातोमे आम तौर पर वे अपने मर्दोकी बराबरीका दर्जा रखती है और कुछ मामलोमे उन पर शासन भी करती है। परन्तु निष्पक्ष बाहरी आदमियोकी नजरमे कानून और रिवाजके अनुसार स्त्रियोका दर्जा सर्वत्र काफी खराब है और उसमे मौलिक परिवर्तनकी जरूरत है।

रचनात्मक कार्यक्रम, १९४१, पृ० १७–१८

९

साम्प्रदायिक एकता

इस एकताकी आवश्यकताके बारेमे सब सहमत है। परन्तु सबको यह मालूम नही है कि एकताका अर्थ राजनीतिक एकता नही है, जो ऊपरसे थोपी जा सकती है। उसका अर्थ है न टूटनवाली हार्दिक एकता। ऐसी एकता पैदा करनेके लिए पहली जरूरी चीज हर कांग्रेसजनके लिए यह है कि उसका धर्म कुछ भी हो, उसको अपने खुदके व्यवहारमे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी वगैराका अर्थात् प्रत्येक हिन्दू और अहिन्दूका प्रतिनिधि बन जाना चाहिये। उसे हिन्दुस्तानके करोडो निवासियोमे से प्रत्येकके साथ एकता महसूस करनी चाहिये। ऐसा अनुभव करनेके लिए प्रत्येक कांग्रेसजन अपने धर्मके सिवा दूसरे धर्मवालोके साथ व्यक्तिगत मित्रता पैदा करेगा। उसके दिलमे दूसरे धर्मोका वैसा ही आदर होना चाहिये, जैसा उसका अपने धर्मके लिए है।

रचनात्मक कार्यक्रम, १९४१, पृ० ८

१०

अस्पृश्यता-निवारण

अस्पृश्यता न सिर्फ हिन्दू धर्मका अविभाज्य अग नही है, बल्कि एक ऐसा अभिशाप है जिसके साथ युद्ध करना प्रत्येक हिन्दूका पवित्र कर्तव्य है। इसलिए ऐसे सब हिन्दुओको, जो इसे पाप समझते है, इसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसके लिए उन्हे अछूतोके साथ भाईचारा रखना चाहिये, प्रेम और सेवाकी भावनासे उनके साथ सबध स्थापित करना चाहिये, ऐसे कार्योसे अपनेको पवित्र हुआ मानना चाहिये, उनके कष्ट दूर करने चाहिये उन्हे युगोकी दासतासे उत्पन्न हुई जहालत और दूसरी बुराइयो पर विजय प्राप्त करनेमे धीरजपूर्वक मदद देनी चाहिये और दूसरे हिन्दुओको वैसा ही करनेकी प्रेरणा देनी चाहिये।

मगल-प्रभात, १९४५, पृ० ३२

अब हिन्दू धर्मके इस कलक और अभिशापको मिटानेकी आवश्यकता पर विवेचन करना गैर-जरूरी है। काग्रेसजनोने इस मामलेमे बेशक बहुत-कुछ किया है। परन्तु मुझे यह कहते दुख होता है कि बहुतसे काग्रेसजनोने इसे केवल राजनीतिक आवश्यकता ही समझा है और जहा तक हिन्दुओका सबध है उन्होने इसे हिन्दू धर्मके अस्तित्वके लिए कोई अनिवार्य चीज नही माना। अगर हिन्दू काग्रेसजन इस कार्यको शुद्ध भावसे हाथमे ले ले, तो अब तक उन्होने कथित सनातनियो पर जितना प्रभाव डाला है उससे कही व्यापक प्रभाव आइदा उनका पडेगा। उन्हे सनातनियोके पास किसी युद्धवृत्तिसे नही जाना चाहिये, परन्तु अपनी अहिसाको शोभा देनेवाले मित्रभावसे पहुचना चाहिये। और जहा तक हरिजनोका ताल्लुक है, हर हिन्दूको उनके कामको अपना ही काम समझ लेना चाहिये और उनके भयकर बहिष्कारमे उनके मित्र बन जाना चाहिये — ऐसा बहिष्कार जिसे दुनियाने भारतमे जिस राक्षसी रूपमे देखा है उस रूपमे कभी कही नही देखा। मुझे अनुभवसे

मालूम है कि यह काम कितना मुश्किल है। परन्तु यह तो स्वराज्य-भवनके निर्माण-कार्यका ही एक अग है।

रचनात्मक कार्यक्रम, १९४१, पृ० ९–१०

११

आर्थिक समानता

यह आखिरी चीज अहिसात्मक स्वाधीनताकी कुजी है। आर्थिक समानताके लिए काम करनेका अर्थ पूजी और श्रमके शाश्वत सघर्षको मिटा देना है। इसका अर्थ यह हे कि एक तरफ जिन मुट्ठीभर धनवानोके हाथोमे राष्ट्रकी अधिकाश सपत्ति इकट्ठी हो गई है उनका स्तर घटाया जाय और दूसरी ओर करोडो भूखे-नगे लोगोका स्तर बढाया जाय। जब तक धनवानो और करोडो भूखे लोगोके बीचकी चौडी खाई बनी हुई है, तब तक स्पष्ट है कि कोई अहिंसक शासन-प्रणाली कायम नही हो सकती।

मेरे सरक्षकताके सिद्धान्तकी खूब खिल्ली उडाई गई है, फिर भी मै उस पर कायम हू। यह सच है कि उसे सिद्ध करना कठिन है। अहिसाकी भी यही बात है।

यह अहिसात्मक प्रयोग अभी चल ही रहा है। प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमे अभी तक हमारे पास दिखानेको कोई खास चीज नही है। परन्तु यह निश्चित है कि धीरे-धीरे ही सही, फिर भी यह तरीका समताकी दिशामे काम करने लगा है। और चूकि अहिसा विचार-परिवर्तन करनेकी एक प्रक्रिया है, इसलिए अगर यह परिवर्तन हो गया तो वह स्थायी होगा।

वह (अहिसात्मक स्वराज्य) किसी दिन अकस्मात् स्वर्गसे टपक नही पडेगा। परन्तु उसका निर्माण हम सबको सम्मिलित प्रयत्नसे एक एक ईंट रखकर करना पडेगा। हम इस दिशामे काफी आगे बढ चुके हैं। परन्तु अभी बहुत लबा और थका देनेवाला फासला तय करना

बाकी है। तब कही हमे स्वराज्य (सर्वोदय) के गौरवमय और भव्य दर्शन होगे।

रचनात्मक कार्यक्रम, १९४१, पृ० २१–२२

हमे विचार करना चाहिये कि अहिंसाके द्वारा समान वितरण कैसे सपादन किया जा सकता है। उसकी दिशामे पहला कदम यह है कि जिस व्यक्तिने इस आदर्शको अपने जीवनका अग बना लिया है, वह अपनी निजी जिन्दगीमे उसके अनुसार जरूरी परिवर्तन करेगा। वह भारतकी दरिद्रताको ध्यानमे रखकर अपनी जरूरते कमसे कम कर लेगा। उसकी कमाईमे कही बेईमानी न होगी। वह सट्टेकी इच्छा छोड देगा। उसके रहनेका स्थान उसकी नवीन जीवन-प्रणालीके अनुरूप होगा। जीवनके हर क्षेत्रमे वह आत्म-सयम रखेगा। जब वह अपने खुदके जीवनमे जो कुछ सभव है वह सब कर लेगा, तभी इस आदर्शका अपने साथियो और पडोसियोमे उपदेश करनेकी उसकी स्थिति होगी।

हरिजन, २५–८–'४०

अहिंसाका साधन

मै अहिंसाके द्वारा, घृणाके विरुद्ध प्रेमकी शक्तिका उपयोग करके लोगोको अपने विचारका बनाकर, आर्थिक समता सम्पादन करूगा। मै तब तक ठहरा नही रहूगा जब तक सारे समाजको बदल कर अपने खयालका न बना लू। मै तो सीधे अपने जीवनसे इसकी शुरुआत कर दूगा। कहना न होगा कि अगर मै पचास मोटर गाडियो अथवा दस बीघा जमीनका भी मालिक हू, तो मै अपनी कल्पनाकी आर्थिक समानता सिद्ध करनेकी आशा नही रख सकता। इसके लिए मुझे गरीबसे गरीब आदमीके स्तर पर आ जाना पडेगा। पिछले पचास या उससे ज्यादा वर्षोसे मै यही करनेका प्रयत्न कर रहा हू।

हरिजन, ३१–३–'४६

अशुद्ध साधनोसे साध्य भी अशुद्ध हो जाता है। इसलिए राजाका सिर काट लेनेसे राव और रक बराबर नही हो जायेगे। मालिक और

मजदूर भी सिर काटनेकी इस प्रक्रियासे बराबर नही हो जायेगे। असत्यसे हम सत्यको प्राप्त नही कर सकते।

इसलिए केवल सत्यपरायण, अहिसक और शुद्ध-हृदय समाजवादी ही भारत और ससारमे समाजवादी समाज कायम कर सकेंगे।

हरिजन, १३–७–'४७

उपसंहार : हम आगे बढें

अभी तक हम पानी जैसे रोजमर्राके कामकी एक चीजके असख्य गुणोका भी पूरा पता नही लगा सके है। उसके कुछ गुणोसे हम आश्चर्य-चकित हो जाते है। इसलिए हमे अहिसा जैसी अत्यत सूक्ष्म प्रकारकी शक्तिको तुच्छ नही मानना चाहिये। हमे उसकी गुप्त शक्तिका धीरज और श्रद्धासे पता लगानेकी कोशिश करनी चाहिये। थोडेसे समयमें हमने इस शक्तिके उपयोगका एक बडा प्रयोग काफी सफलताके साथ कर लिया है। आप जानते है कि मैने इसे बहुत महत्त्व नही दिया है। बल्कि मैने तो इसे अहिसाका प्रयोग कहनेमे भी सकोच किया है। परन्तु जैसे पुराणोकी कथाके अनुसार रामके नामसे पत्थर भी तैरते थे, वैसे ही अहिंसाके नामसे किये गये आन्दोलनसे देशमे बडी जाग्रति आई हे और हमारी प्रगति हुई है। जब लोग अटल श्रद्धासे इस प्रयोगको आगे बढायेग, तब कौन कह सकता है कि इसके क्या परिणाम होगे?

हरिजन, २८–७–'४०

सर्वोदय

दूसरा भाग

विनोबा भावे और अन्य लोग

आठवां विभाग : नई क्रान्ति

१

नई क्रान्ति

लोग क्रान्तिकारी कार्यक्रम चाहते है और समझते है कि क्रान्ति रक्तपातके बिना नही हो सकती । मै आपको बता दू कि मुझे यह विचार स्वीकार नही है। जो यह समझते है कि खून बहाये बिना क्रान्ति नही हो सकती, वे सचमुच क्रान्तिकारी है ही नही । वे जैसे-थे-वादी है। उनके सामने ध्येय क्रान्तिका नही, परन्तु वर्तमान सुखी और दु खी लोगोके स्थानोकी अदला-बदली करनेका है। क्या यह क्रान्ति है? इसमे इसके सिवा क्या परिवर्तन हुआ कि जो सुखी है वे दु खी हो गये और जो दु खी है वे सुखी बन गये? क्या उन्होने दु खको सर्वथा मिटा दिया? इसीलिए मै इसे जैसे-थे-वाद कहता हू । क्रान्तिका अर्थ तो यह है कि निरपवाद रूपमे सर्वत्र सुख ही सुख हो । सर्वोदय-वादी अर्थात् सबके सुखके लिए कोशिश करनेवाला होनेके कारण मै क्रान्तिकारी होनेका दावा करता हू। जो समाजको दो वर्गोंमे बाट देना चाहते है, वे अपनेको साम्यवादी या और कुछ-वादी कह सकते है, परन्तु मेरी नम्र सम्मतिमे वे सब सम्प्रदायवादी है। जहा पाश्चात्य मस्तिष्कको अधिकसे अधिक लोगोकी अधिकसे अधिक भलाईकी दृष्टिसे सोचनेकी तालीम दी जाती है, वहा भारतीय मानसको बचपनसे ही सबके भलेका, विश्वमैत्रीका, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'का विचार करनेकी शिक्षा मिलती है। उसे सबसे प्रेम करनेकी तालीम दी जाती है, भले वह थोडेमे ही लोगोकी सेवा कर पाये। एक समय था जब मुट्ठीभर लोग बहुसख्यक जनताकी मेहनतके बल पर सुख भोगते थे। आज बहुसख्यक लोग अल्प-सख्यक लोगोको हानि पहुचाकर सुखी होना चाहते है । परन्तु भारतमे इसके बिलकुल विपरीत हमे यह सिखाया जाता है कि हम दूसरोके साथ वैसा ही बरताव करे जैसा हम अपने साथ चाहते है। गीताकी भाषामे इसे

'आत्मौपम्य' कहा जाता है। मै सारे समाजका कायापलट इसी आधार पर करना चाहता हू और इन्ही कारणोसे मेरा तरीका क्रान्तिकारी है। क्या मधुमक्खी फूलोको कुछ भी नुकसान पहुचाये बिना शहद इकट्ठा नही कर लेती है? मै भी दूसरोको बहुत कष्ट पहुचाये बिना लक्ष्यसिद्धि चाहता हू। यह तभी हो सकता है जब हृदय-परिवर्तनके सिद्धान्तके प्रति हमारी श्रद्धा हो। इसलिए मै कोई नई चीज नही कर रहा हू, परन्तु जो कुछ ऋषियोने हमे सिखाया है उसी पर अमल कर रहा हू। मुझे जरा भी सन्देह नही कि अगर अहिसात्मक क्रान्ति भारतमे नही हुई, तो वह और कही नही हो सकती।

हरिजन, १५–१२–'५१

बहुमतका शासन आजका नियम-सा बन गया है। इसकी कोई परवाह नही करता कि बहुमत विवेकशील और चरित्रवान है या नही। क्या बहुमतका राज्य केवल पशुबल नही है? आप सेनाके शासन या रुपयेके शासनमे और बहुमतके शासनमे कैसे भेद कर सकते है? वह पशुबल नही तो और क्या है?

हरिजन, १७–१–'५३

विनोबाने कहा, हम लोगोको परमेश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवान, मेरी इच्छा मुझ पर ही चले। उस इच्छाका बोझ दुनियामे और किसी पर लादा न जाय। मेरी इच्छा जिसे पसन्द आये वह उसके मुताबिक चले। वह उसकी मर्जीकी बात है, और उससे हमे सतोष होना चाहिये। लेकिन किसी भी कारणसे — भले वह कारण नैतिक ही क्यो न हो — हमारी इच्छा दूसरे किसीके सिर पर लादी न जाय, बिना समझे उसका अमल दुनियामे कही न हो। जब यह प्रार्थना हमको नही सूझती और हमको लगता है कि जल्दीसे जल्दी, चाहे लोग समझे या न समझे, फलानी चीज हो ही जानी चाहिये, तब समझ लेना चाहिये कि हमारे विचारमे हिसा भरी है और साम्राज्य-वाद भरा है। महायुद्धके बीज उसमे बोये हुए है, ऐसा समझना चाहिये।

जब कभी लोग जनताको शिक्षण देनेमे हार जाते है, तो वे कहते है कि शिक्षण देते-देते कितना समय लग जायगा? इससे बेहतर तो यह है कि एक व्यवस्था बनाओ और उसे लोगो पर कायम करो। इससे

लोग उसके अनुसार चलने लग जायेंगे, तो दूसरा शिक्षण देनेका काम हम आहिस्ता आहिस्ता कर लेंगे। तो शिक्षण देनेमें हम हार खाते हैं और उसके बदले शस्त्रास्त्र बनानेमें उत्साह रखते हैं।

व्यवस्थासे काम हो जाता है, ऐसा आभास तो होता है। लेकिन क्योंकि वह व्यवस्था लोगोंको शिक्षण देकर नहीं बनाई गई थी, इसलिए उस व्यवस्थासे लोगोंमें असंतोष पैदा होता है और लोग कहने लगते हैं कि नई व्यवस्था पैदा होनी चाहिये। यह नई व्यवस्थाकी मांग नित्य हुआ करती है। इसलिए थोड़े दिनोंमें जैसे व्यवस्था हो जाती है वैसे ही थोड़े दिनोंमें अव्यवस्थाका आरंभ हो जाता है और नई व्यवस्थाकी आवश्यकता मालूम होती है।

इसलिए बेहतर है कि ऐसे मोहमें हम न रहें और केवल व्यवस्था करके कोई चीज हमें हासिल होगी और हम शांत हो जायंगे और बादमें शिक्षण देते रहेंगे ऐसी आशा हम न करें। बल्कि शिक्षण देनेकी ही हिम्मत रखें। और जब तक लोगोंको शिक्षण मिलता है तब तक धीरज रखें। तो हमारा काम जल्दसे जल्द हो जायगा। चाहे दिखनेमें ऐसा लगे कि इसमें ५० साल लग गये, लेकिन वही कमसे कम समय होगा जो ऐसी समस्याओंको सुलझानेमें लग सकता है। मतलब इसका यह है कि किसी भी मनुष्यको कोई चीज बिना समझे-बूझे नहीं करनी है। और केवल हमारी मुरव्वतके कारण या हमारे आदरके लिए या हमारी आज्ञाके वश होकर या किसी दंडके भयके कारण या ऐसे ही किसी दबावके कारण लोग अच्छी बात भी क्यों न करें, उससे हमें खुशी नहीं होनी चाहिये। अच्छी बात भी समझ-बूझकर ही की जाय। और जैसे गीताके अन्तमें भगवानने अर्जुनसे कह दिया कि 'यथे-च्छसि तथा कुरु' — तू सोच ले और सारा सोचकर जैसा तुझे लगे वैसा आचरण कर, वैसा ही हमारा विश्वास होना चाहिये। किसी तरहके दबावमें हमारा जरा भी विश्वास नहीं होना चाहिये। तब हम वह राज्य ला सकेंगे, जो अहिंसाका राज्य होगा और जिसके आनेके बाद स्थायी शांतिकी आशा हम कर सकते हैं।

हरिजनसेवक, १४–७–'५१ **विनोबा**

नवां विभाग : आर्थिक समानता

१

आर्थिक समानता

भगी, माता, अध्यापक और इसी प्रकारके अनेक दूसरे लोगोकी सेवाओका मूल्य पैसेमे हो ही नही सकता। इसलिए नियम यह होना चाहिये जो मनुष्य समाजकी निष्ठापूर्वक सेवा करता है, वह अपनी रोजीका हकदार हो जाता है। इसी तरह अगर राष्ट्रपति, बुद्धिसे ही सही, देशकी उतने ही उत्साहसे सेवा करता है, तो उसे उसके गुजरके लायक मजदूरी मिलनी ही चाहिये। राष्ट्रपतिके वेतनका भी आधार वही होना चाहिये, जो किसान या मेहतरका है। मैंने समाजकी अध्यापक, न्यायाधीश, किसान, लेखक, सम्पादक वगैरा कई हैसियतसे सेवा की है। मगर मुझे यह कभी महसूस नही हुआ कि एक तरहका काम दूसरी तरहके कामसे कुछ ऊचा है। मैंने उन सबसे एकसा मानसिक सतोष और आनन्द अनुभव किया है। लेकिन यह सच है कि मुझे सब कामोमे एकसे शरीर-श्रमका अनुभव नही हुआ। परन्तु इससे मानसिक सतोषकी मात्रामे कोई फर्क नही पडता। जब मुझे कोई मेरी जरूरतसे ज्यादा देता है तो मै घबरा जाता हू। मै उसे स्वीकार नही कर सकता। मुझे जितने दहीकी जरूरत है उससे अधिक क्यो लेना चाहिये? और मुझे यह समझमे नही आता कि कोई देता है, सिर्फ इसीलिए मै उसे क्यो ले लू? सच्चा सिद्धान्त यह है सबको अपनी रोजकी रोटी मिल जानी चाहिये, कलके लिए भी नही मिलनी चाहिये। और प्रत्येक कामका आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य समान होना चाहिये। साम्य-योग इसी तरह कायम किया जा सकता है।

मै यह नही कहता कि खेतीके लायक कुल जमीनका सबको बराबर हिस्सा मिलना चाहिये। मुझे गणितकी समानता नही चाहिये,

मै तो न्याय चाहता हू या हाथकी पाच उगलियो जैसी समानता चाहता हू। ये पाचो उगलिया आकारमे बराबर नही है, मगर वे सब पूरे सहयोगके साथ काम करती है और मिलकर असख्य कार्य सपादन करती है। साथ ही उनकी असमानता इतनी बेहिसाब भी नही है कि एक तो एक इच लम्बी हो और दूसरी एक फुट लबी हो। इससे शिक्षा यह मिलती है कि अगर पूरी समानता नही हो सकती, तो भयकर असमानता भी नही होनी चाहिये, परन्तु तुल्यता होनी चाहिये। पाचो उगलियोकी अलग अलग क्षमता है। इसी तरह प्रत्येक मनुष्यमे क्षमता अलग अलग होती है। हरएक आदमीकी इन जन्मजात शक्तियोका विकास होना चाहिये। इसे ही पचायत धर्म कहते है।

विनोबा

(उत्तर प्रदेशीय सर्वोदय सम्मेलनमे ता० १–११–'५१ को दिये गये भाषणसे)

हरिजन, २६–१–'५२

२

न्यायपूर्ण मजदूरी

पूजीवादी अर्थशास्त्रमे श्रमको क्रय-विक्रयकी वस्तु माना गया है। इसलिए मजदूरी इस मानवीय वस्तुकी कीमतके रूपमे सामने आती है। उसमे मानवताके मूलभूत विचारोसे कोई सम्बन्ध नही होता। एक उद्योगपति जिस भावनासे फौलादकी मशीने खरीदता है, उसी भावनासे मानव-श्रमको खरीदता है। इसलिए वह कुदरती तौर पर कीमतोको घटाकर सौदेसे अधिकसे अधिक लाभ उठान पर तुला रहता है। शोषणकी यही प्रणाली है और जब तक मानव-श्रम एक जड वस्तु समझा जायगा, तब तक वह प्रणाली बदली नही जा सकती।

जहा हम मनुष्यको मनुष्य समझकर चलना चाहते है, वहा विचारका आधार सामाजिक मूल्यो पर होना चाहिये। मानव-श्रमकी जो कीमत हम चुकाना चाहते है, उसका हिसाब इस आधार पर नही लगाना चाहिये कि कोई पदार्थ उत्पन्न किया जायगा तो बाजारमे उसके क्या दाम आयेगे। उसका आधार यह होना चाहिये कि उत्पादन-कर्ताके गुजरके लिए कितने द्रव्यकी जरूरत होगी। अगर ताडका रस निकालनेवाले मजदूरको और सब मनुष्योकी तरह सतुलित आहारकी जरूरत हे और उसे हवा-पानी आदिसे बचानेवाले ऐसे घरकी भी आवश्यकता है, जिसमे वह सफाई और तदुरुस्तीकी परिस्थितियोमे रह सके और जिसमे इतनी सुख-सुविधाए हो कि वह अपने बच्चोका एक योग्य नागरिककी भाति लालन-पालन कर सके, तो उस आदमीके परिवारके लिए ऐसा ही जीवन-स्तर तय करना चाहिये। और यह स्तर उसके श्रमका न्यूनतम मूल्य होना चाहिये। मान लीजिये उसकी जरूरते आजकलकी १५० रुपये मासिक आयके बराबर है, तो हमे यह हिसाब लगाना चाहिये कि ताड-उद्योगका कुशल और ईमानदार मजदूर अपने परिश्रमसे महीने भरमे बिक्रीके लायक कितने पदार्थ पैदा करेगा और उसकी आमदनीको उन पदार्थोकी बाजारकी कीमत पर फैला देना चाहिये। यह भी कल्पना की जा सकती है कि ऐसा करके हम गुडका भाव बढाकर १।। रुपया सेर कर देगे। मगर हमारा उद्देश्य सामाजिक न्याय सिद्ध करना हो, तो हमे ऊचे भावोसे डरना नही चाहिये। सच बात यह है कि जब सरकार भाव नियत करेगी और पदार्थोकी बिक्रीका काम हाथमे ले लेगी, तो बहुतसे मध्यवर्ती लोग और बीचके कमीशन मिट जायगे। एक बार इस ढगसे भाव मुकर्रर हो जाय तो सरकारको चाहिये कि पूजीपतियो और उद्योगपतियोकी तरफसे और बाहरसे आनेवाले मालके कारणसे होनेवाली विविध स्पर्धाको बन्द कर दे। वास्तवमे इसी तरह हम अपने यहाके उत्पादकोका जीवन-स्तर कभी ऊचा करनेकी आशा रख सकते है।

इसे अव्यावहारिक सुझाव समझकर खारिज कर देनेकी जरूरत नही। रूसी सामाजिक न्यायकी प्रेरणाके असरमे रहनेवाला लगभग

एक-तिहाई ससार इन्ही विचारोके अनुसार भाव-नियत्रण करके अपने जीवन-स्तरका नियमन कर रहा है।

जे० सी० कुमारप्पा

ग्रामोद्योग पत्रिका, जुलाई १९५३, पृ० ४१

३

विवेकपूर्ण समानता

समानताका यह मतलब नही कि हरएकके पास पाच एकड भूमि होनी चाहिये और एक ही तरहके मकान और उतने ही गज कपडा होना चाहिये। हम यही चाहते है कि हवा, पानी और जमीन जैसी चीजे, जो जीवनके लिए आवश्यक है, सबको समान रूपमे उपलब्ध होनी चाहिये। जब ये चीजे सबको पर्याप्त मात्रामे मिल जाती है, तो बाकी बची हुईको कोई ज्यादा ले लेगा तो भी दूसरोको ईर्ष्या नही होगी।

हम विवेकयुक्त समानता चाहते है। मा अपने बच्चोको गणितका हिसाब लगाकर बराबर खाना नही बाटती। सबसे छोटेको वह केवल दूध देती है, उससे बडेको थोडासा दूध और थोडीसी रोटी और बडे बच्चोको सिर्फ रोटी देती है। इसी प्रकार समाजमे भी भोजन-सामग्रीका वितरण करनेमे हम विवेकसे काम लेगे और हरएककी भूखकी तीव्रता और पाचन-शक्तिका खयाल रखेगे। जहा बलात् समता सिद्ध की जाती है, वहा तो सबको मजबूरन् एक ही साचेमे ढाला जाता है। हम इस प्रकार सबको एक ही साचेमे ढालना बिलकुल पसन्द नही करते। हम विवेकके आधार पर आध्यात्मिक समानताका लक्ष्य रखते है।

हरिजन, २०–१२–'५२ विनोबा

४

समानता और दया

कुछ लोग झटसे कह देते है कि जिस दयाभावकी पुराने कवियो, धर्मों और प्राचीन गुरुओने प्रशसा की है, उसमे हमारी दिलचस्पी नही है। हम समानता चाहते है, दया नही; क्योकि दयासे अहकार उत्पन्न होता है। परन्तु मै चेतावनी देता हू कि यदि आप दयाका निषेध करके समानता स्थापित करना चाहते हो, तो आप एक महान आध्यात्मिक बलसे वचित रहेगे और अनावश्यक वैरभाव उत्पन्न करेगे। आपको समझ लेना चाहिये कि विरोध समानता और असमानतामे है, न कि समानता और दयामे। इसलिए समानताका प्रयत्न इस ढगसे होना चाहिये कि उसके लिए उन सब लोगोकी नैतिक और आध्यात्मिक शक्तिका लाभ मिल जाय, जिनमे दयाभावका विकास हुआ है। हमे दयाके विरोधमे खडे होनेकी जरूरत नही है, परन्तु यह समझनेकी आवश्यकता है कि जिस दयाका हमने अब तक पालन किया है उसके द्वारा हमे यह पता लगा है कि सच्ची दया समानताकी स्थापनामे है। असमानताकी व्यवस्थामे थोडीसी दयाका पालन करना अच्छा है, इससे आत्माको कुछ सान्त्वना मिलती है। परन्तु इतना काफी नही है; इसमे सच्ची दयामे कमी रह जाती है। सच्ची दयाका निर्माण तो समानताकी स्थापनासे ही हो सकता है। अगर यह रुख अपनाया जाय, तो दयाके विकासके लिए किये गये हमारे पूर्वजोके कठिन परिश्रमका लाभ हमे उत्तराधिकारमे मिल सकेगा और हम उसका उपयोग समानताका नया प्रयत्न निर्माण करनेमे कर सकेगे। इसलिए हमे दयाके विकासकी पुरानी परम्पराको नष्ट करके समानताके विचारकी स्थापना इस तरह करनेकी भूल नही करनी चाहिये, मानो वह कोई नई और प्राचीन परम्पराके विरुद्ध चीज है।

वर्तमान युगके लोग वास्तविक जीवनमे समानता सिद्ध करनेके लिए एक कदम आगे बढा रहे है। ऐसा करनेमे हमे अपने पूर्वजोके

महान सम्मिलित प्रयत्नका बल अपने साथ लेकर आगे बढना चाहिये, क्योकि उन्होने इस पर बडे धैर्यपूर्वक विचार किया है। हमे भी इस आदर्श पर सतत विचार करना चाहिये। हमने विकास-क्रममे एक नई मजिल शुरू की है। यह किसी पुस्तकका नया अध्याय आरभ करने जैसी बात हे। इसलिए हमे इस गुणका उतना ही सावधानीपूर्वक विकास करना चाहिये, जितनी सावधानीसे कोई लेखक अपनी पुस्तकका नया प्रकरण लिखता है। हम जानते है कि दया कैसे मिथ्या हो सकती है तथा एक तरफ अहभाव पैदा कर सकती है और दूसरी तरफ दरिद्रता और दीनताको जन्म दे सकती है। अगर हम जागरूक नही रहेगे तो यही हाल समताका हो सकता है और हम सदसद्-विवेककी शक्तिसे वचित हो सकते है। अगर समतासे विवेक-शक्ति नष्ट हो जाय, तो वह स्वय चिरस्थायी नही हो सकती और वह मिथ्या सिद्ध होगी। और अगर समता विवेक खोकर सपादित की जायगी, तो फिर विवेकको पुन. प्राप्त करनेके लिए हमे कई सदियो तक कोशिश करनी होगी। इसलिए हमे ऐसी समताका विकास करना चाहिये, जिसके साथ सदसद्-विवेक जुडा हुआ हो और उसमे पूर्ण रूपसे विकसित दयाका समावेश हो। इसके लिए सतत आत्म-निरीक्षण करने और जिस मलिनतासे मनमे अधकार पैदा होता है उसे पूरी तरह हटा देनेकी जरूरत होगी। जिस अहकारसे असमानता और ऊच-नीचकी भावना पैदा होती है, उसका लवलेश भी जडसे उखाडकर निकाल देना पडेगा। अगर हम इस कामका बीडा नम्रता और सचाईके साथ उठा ले, तो हमे यह देखकर आश्चर्य होगा कि हम सबको आदर्शके निकट पहुचनेके लिए बहुत-कुछ करना पडेगा। मेरे पास व्यक्तिगत सपत्ति नही है, इसलिए शायद यह माना जाता होगा कि मुझे, जहा तक आर्थिक समानताका सम्बन्ध है, समताके क्षेत्रमे ज्यादा कुछ नही करना पडेगा। परन्तु मुझे भी बहुत-कुछ करना बाकी दिखाई देगा। अपने मनकी गहरी परीक्षासे पता चलेगा कि मुझे भी बहुत-कुछ प्रगति करनी होगी। साथ ही ऐसी असमानताए भी होती है, जिनका कारण शारीरिक भिन्नताए होती है। उन्हे भी मिटाना ही पडेगा।

एक और बात भी है, जो किसी विचारकी सफलताके लिए महत्त्वपूर्ण है। हम समाजमे जितनी समानता लाना चाहते है, उससे सौ गुनी समानता हमे अपने व्यक्तिगत जीवनमे पैदा करनी होगी। जब तक ऐसा नही किया जायगा, तब तक सफलताकी कोई सभावना नही हो सकती। मानव-शरीर ९८ डिग्रीका तापमान इसीलिए कायम रख सकता है कि सारी गरमीके उद्‌गम अर्थात् सूर्यकी उष्णता अनत है। आप भलीभाति कल्पना कर सकते है कि अगर सूर्य मानव-शरीरसे ज्यादा गरम न हो, अर्थात् उसका तापमान ९८ डिग्री ही हो, तो हमारे शरीरोका क्या हाल होगा? इसलिए सेवकोका धर्म है कि वे इस मामलेमे समाजसे बहुत ज्यादा आगे रहे। तभी उनकी उदात्त आकाक्षाए और उनके कार्य सफल होगे।

हरिजन, ३०–६–'५१ **विनोबा**

५

साम्यवाद और सर्वोदयमे भेद

साम्यवाद और सर्वोदयमे साध्यका भेद नही, साधनोका भेद है। गाधीजी स्वय कई बार कह चुके है कि मै हिसा-रहित साम्यवादी हू। उन्होने यह कहकर इस भेदको स्पष्ट भाषामे प्रकट कर दिया है कि मै साम्यवादका प्रचार नही करता, परन्तु साम्यधर्मका प्रचार करता हू। अपने जीवनके अन्त तक उनका प्रयत्न इस धर्मका पालन करनेका रहा। उन्होने नीचेसे नीचेके वर्गके भारतीयोके साथ एकता साधकर रहनेकी कोशिश की। वे ऐसे परिवारमे पैदा हुए थे जो कुछ पीढियोसे राजकाजका ही धधा करता आ रहा था। यद्यपि वे इस कामसे न बच सके, फिर भी उन्होने राजनीतिको नही, बल्कि उससे दूसरे नम्बरकी चीज अर्थात् वकालतका पेशा अख्तियार किया। इस बीचमे उन्होने रस्किनका 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) पढा, तो उन्हे पता चला कि

अगर वकालत की जाय तो उसे अपने लिए दौलत जमा करनेका साधन बना लेना उचित नही। इसलिए उन्होने अपनी तमाम व्यक्तिगत सम्पत्तिका त्याग कर दिया। टॉल्स्टॉय और गीताका अध्ययन करने पर वे इस नतीजे पर पहुचे कि वकालतका धधा कोई 'उत्पादक' धधा नही है और उन्हे स्वय अपने ही शरीर-श्रमसे कोई चीज पैदा करके अपनी आजीविका उपार्जन करनी चाहिये। इस प्रकार वे वकालतसे जमीनकी तरफ मुडे और अपनेको किसान बताने लगे। परन्तु किसानके पास कुछ न कुछ सम्पत्ति होती है और कारीगरोसे उसकी सामाजिक और आर्थिक हैसियत ऊची होती है। इसलिए वे जुलाहा बन गये। मगर जुलाहेकी हालत खेतीके मजदूरसे बेहतर होती है और मजदूर भी भगीसे कही ऊचा होता है। क्योकि भगीके पास न तो औजार होते है, न कला-विज्ञानका कौशल होता है, न ज्ञान होता है और न समाजमे उसकी कोई प्रतिष्ठा होती है। इसलिए गाधीजी अपनेको भगी कहने लगे, उन्हीमे रहने लगे, उनके मित्र बन गये और उन्होने अपने इन गरीब भाइयोकी स्थितिको सुधारनेका प्रयत्न किया।

वे जितना ही समानताका पालन करने लगे, उतना ही यह अनुभव करने लगे कि उस पर अमल करना कितना मुश्किल है। वे यह नही कह सकते थे कि उन्हे इसमे पूरी सफलता मिल गई। इसलिए वे इस ध्येयकी प्राप्तिके लिए बडी लगनसे प्रयत्न करते रहे। लेकिन वैसा न करनेवालेके प्रति उनके मनमे कभी रोष न आया। उन्होने देखा कि मौजूदा समाज-रचनामे यह बात मनुष्यके सस्कारमे उतर गई है कि आर्थिक और सामाजिक शोषण और असमानता मानो कुदरती नियम हो। जिस तरह मनुष्य गाय-बैलका अपने फायदेके लिए उपयोग कर लेता है और उनके तथा अपने बीचकी असमानताको कुदरती मानता है, उसी तरह मनुष्य-मनुष्यके बीचके शोषण और असमानताको भी स्वयसिद्ध मानना दुनियाका पुराना सस्कार है। देशके गरीबसे गरीब नागरिकके जीमे भी पूजीवादी विचार जमा हुआ है। सभव हो तो सभी किसी दिन जमीदार या पूजीपति बनना और ऐसी स्थिति पैदा कर लेना चाहते है, जिससे उन्हे अपनी रोजीके लिए काम न करना पडे—

कमसे कम शरीर-श्रम तो न करना पडे। आरामका और शरीर-श्रम-रहित जीवन व्यतीत करनेका अवसर प्राप्त करनेकी इस आकाक्षाके कारण ही लोग एक तरफ जीवन और दर्जेकी असमानताका विरोध करना छोड देते है और दूसरी ओर उन लोगोसे ईर्ष्या करते है जिन्होने उनसे पहले यह आकाक्षा पूरी कर ली है। चूकि उनमे से किसीका भी सादे, कठोर और परिश्रमी जीवनमे विश्वास नही होता, इसलिए भले ही एकको पूजीपति और दूसरेको साम्यवादी कहा जाय, मगर दोनो ऐश-आरामकी एक ही गद्दीके प्रतिद्वद्वी दावेदार है। जब तक मनुष्य आराम और काम न करनेको जीवनकी नियामत मानता है, तब तक वह अपने उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए हिसाका आश्रय लिये बिना नही रह सकता।

अगर अहिसा और शरीर-श्रमको साम्यवादी आन्दोलनका अभिन्न अग मान लिया जाय, तो उसके साथ झगडेका कोई कारण नही रह जाता। साम्यवादके प्रति सहानुभूति होनेका परिणाम यह होना चाहिये कि सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थामे साम्यवादी लोग जो परिवर्तन हिसा द्वारा करना चाहते है, उन्हीके लिए हम उचित अहिसक उपाय ढूढे।

हरिजन, ५–६–'४९ कि० घ० मशरूवाला

दसवां विभाग : आधार रुपया नहीं, श्रम

१

श्रमका गौरव

लोगोके दिलोमे यह विचार गहरी जड पकड चुका है कि जो लोग हाथ-पैरसे काम करते है वे नीचे है। श्रमका गौरव और महत्त्व जाता रहा। ऐसी ही परिस्थितियोमे विदेशियोने हमारे देश पर विजय प्राप्त की थी।

इस परिस्थितिका अन्त करना होगा और जो लोग उत्पादनका काम करते है उन सबको देशके सच्चे नागरिक समझना होगा। उनका समाजमे आदर होना चाहिये और उन्हे सभ्य जीवनके योग्य मजदूरी मिलनी चाहिये। उनका जीवन इतना सुखी बना देना चाहिये कि दूसरे उनसे ईर्ष्या करने लगे।

विनोबा

(१८–१०–'५१ को दिल्लीमे दिये गये भाषणसे)

हरिजन, १९–१–'५२

२

मध्यमवर्गके लोगोंसे

दूसरोकी मेहनत पर निर्भर रहना पूरी तरह छोडा न जा सके तो भी उसे कम करनेका सकल्पपूर्ण प्रयत्न तुरत शुरू हो जाना चाहिये। अपना जीवन सादा बनाओ और हर काम खुद करनेकी कोशिश करो। स्त्री-पुरुष दोनोको कौटुम्बिक जीवनमे इस अप्रिय नुस्खे पर अमल करना चाहिये। इस परिवर्तनसे काफी असुविधा महसूस हो सकती है, खासकर जब वह केवल प्रतीकके रूपमे नही बल्कि पूरी लगनके साथ किया जायगा।

परन्तु ज्यो ज्यो जीवनका नया ढग आगे बढेगा त्यो त्यो ऐसे आनन्द प्रगट होगे, जिनका पहले कभी अनुभव नही हुआ था। पश्चिममे मध्यम-वर्गके लोग इस नुस्खे पर अब भी गर्व और हर्षके साथ अमल करते है। परन्तु उनके यहा श्रम बचानेवाले अनेक यत्र है, जो हमारे देशमे नही है। किसी भी बातमे हमारी और उनकी एकसी स्थितिकी आशा नही की जा सकती। लेकिन हमारे अपने देशकी अधिक बडी कठिनाई और परिस्थितियोके बावजूद हमे उनसे सबक सीखना चाहिये और सीखे हुए सिद्धान्तो पर अमल करनेकी कोशिश करनी चाहिये। साथ ही श्रम बचानेवाले यत्रोमे एक सभावना यह रहती है कि सूक्ष्म रूपमे वे हममे एक तरहकी पराधीनता पैदा करते है और उनका नतीजा भी सीधी-सादी पराधीनताकी तरह कामके ठप्प हो जानमे आ सकता है। इसलिए हमे चिन्तामे घुलते न रहकर दैनिक जीवनमे सच्ची स्वाधीनताके लिए अर्थात् दूसरो पर निर्भर न रहनेके लिए काम करना चाहिये। सच्चे सुखके लिए न राजनीतिक स्वाधीनता काफी है और न राजनीतिक लोकतत्र ही काफी है। हमे सब बातोमे समानता साधनी होगी। जब तक हम सब शारीरिक श्रम नही करेगे, तब तक हम लोकतत्रको स्थिर नही बना सकेगे। काममे दर्जोका कोई भेद नही होना चाहिये। सभी कामोको समान रूपमे ऊचे, पवित्र और गृहदेवताओको अर्पण की जानेवाली पवित्र अजलि समझना चाहिये। नही तो हमे उन लोगोका शासन स्वीकार करना पडेगा जो काम करनेको तैयार है और हमारे जीवन उनकी दया पर निर्भर रहेगे। एक नया और आवश्यक मध्यमवर्ग पैदा होगा, जिसका आधार जन्म नही होगा। वह हाथ-पैरोसे काम करनेवाले मजदूरोका सच्चा मध्यमवर्ग होगा, जिन्होने काम और विद्या द्वारा कुशलता और प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी, जो योजना बनाने, पथ-प्रदर्शन करने और शिक्षा देनेमे समर्थ होगे, जो बुद्धि, परिश्रम या परिस्थितिके अनुसार नीचे या ऊपर जाते रहेगे और जिन्हे केवल जन्मके कारण ऊचे पद नही मिलेगे।

जन्मके आधार पर बने हुए 'मध्यमवर्ग' का अब अन्त हो ही जाना चाहिये। यह काम स्वेच्छासे सम्पन्न हो सकता है, और यही ज्यादा अच्छा होगा। यह कार्य हम ऐसे कामोके द्वारा शुरू कर दे, जो तमाम

स्कूलो और कालेजोमे आडबर और मिथ्याभिमानको मौका न देनेवाले शिक्षकोकी देखरेखमे कराये जाय।

हरिजन, ९–२–'५२ च० राजगोपालाचार्य

३

उत्पादक श्रमकी आवश्यकता

हमारी समस्याओका कारण क्या है? मेरे खयालसे यह कारण शरीर-श्रमके प्रेमका अभाव है। मै नही समझता कि हमारी आबादी बडी होने पर भी इतनी बडी है, जिसका देशमे पालन न किया जा सके। खानेवाले मुह बहुत ज्यादा है, तो कमानेवाले हाथ भी बहुत ज्यादा है। परन्तु हाथ प्रेमके साथ काम नही करते, वे कामको सौभाग्य न समझकर आफत समझते है। इसलिए हाथ अधिकसे अधिक पैदा न करके उतना ही काम करते है जितना अनिवार्य हो। सब मुहके लिए अपना पूरा हिस्सा चाहते है, मगर हाथोसे अपने हिस्सेका पूरा काम नही करते। काफी पैदावार न होनेसे अधिक बडी विपत्ति इस प्रकारकी श्रमनिष्ठाका अभाव है।

मै इसे हमारा चिरकालीन दोष मानता हू। काम बन्द रखनेका बहाना ढूढनेमे हम कभी नही चूकते। रामनवमी या और कोई पर्व हो तो हमे छुट्टी चाहिये, कोई दिवाली आदि त्योहार हो, घरमे शादी हो या बालकका जन्म हुआ हो या गाधीजीका जन्मदिन हो, तो भी हम काम बन्द कर देगे। किसी घरवालेकी मौत हो जाय या गाधीजीका ही मृत्यु-दिवस हो, तो भी हम काम करना नही चाहते। घरमे कोई अतिथि या शहरमे कोई बडा नेता आ जाय, तो काम बन्द कर देनेके लिए इतना कारण काफी है। गरज यह कि अपने हाथ-पैरोको बेकार रखनेके लिए हमे कोई मौका मिल जाय, तो हम किसी भी बहानेको हाथसे नही जाने देगे।

गाधीजीने केवल खद्दर तैयार करनेके लिए ही कताई पर अत्यधिक जोर नही दिया था। कताईसे खद्दर तो तैयार होती ही, परन्तु उनका जोर उस क्रान्ति पर था, जो उत्पादक श्रमका आग्रह रखनेसे होनेवाली है। उन्होने राष्ट्रके सामने इस ढगका उत्पादक काम रखा, जो सपत्ति उत्पन्न करनेके साथ साथ ऐसा भी है, जिसे बूढे और बालक दोनो समान रूपमे कर सकते है। उत्पादक श्रम ऐसी चीज नही है, जिससे किसीको भी — जो कुछ न कुछ काम कर सकता है — मुक्त होनेकी इच्छा करनी चाहिये। जो लोग चीजोकी खपतमे हिस्सा बटाते है, उन्हे उनके उत्पादनमे भी भाग लेना चाहिये। कोई न्यायाधीश या शिक्षक यह नही कह सकता कि वह समाजकी कोई और सेवा कर रहा है। चूकि वह सिर्फ पुस्तको और कागजो पर ही गुजर नही करता, उसे भोजन भी चाहिये और दूसरे सब लोगोकी भाति कपडा भी चाहिये, इसलिए उसे उनके उत्पादनमे भी सीधा हिस्सा लेना ही चाहिये।

परन्तु दुर्भाग्यसे काग्रेस गाधीजीको नही समझ सकी और उसने सूतकी अपेक्षा चार आने देनेका अधिक महत्त्व माना। उसने सपत्ति और पैसेके बीच हमेशाका घोटाला कर दिया। यह महसूस नही किया गया कि हाथ-कते सूतके रूपमे चन्दा देनेसे नई सपत्तिका उत्पादन होता है, जो पैसे देनेसे नही होता। पैसा तो इस समय हमारे पास बहुत है, परन्तु समृद्धिको सूचित करनेवाली सपत्ति घट गई है। अगर हम पैसेकी प्रतिष्ठा बढाते है, तो श्रमकी प्रतिष्ठा अपने-आप घट जाती है। गाधीजीकी योजनामे काग्रेसको एक लाख रुपया देनेवाला व्यक्ति उसका दाता तो समझा जाता, मगर वह मत देनेका हकदार सदस्य नही माना जाता। लेकिन हाथ-कता सूत देनेवाला मतदाता बन जाता। यह एक क्रान्तिकारी विचार था, जिसे काग्रेस समझ नही सकी।

(१०–३–'४९ को दिये गये प्रार्थना-प्रवचनसे) **विनोबा**

हरिजन, १७–४–'४९

४

खादी — स्वावलम्बी श्रमका प्रतीक

खादी गाधीजीके रचनात्मक कार्यक्रमका न सिर्फ हिन्दुस्तानके ही लिए, बल्कि सारी दुनियाके लिए केन्द्र है। यह याद रखना चाहिये कि खादी रुईके कपडे तक ही सीमित नही है। हाथ-कता हाथ-बुना ऊनी और रेशमी कपडा भी खादी है। और सर्वोदयके आदर्शका पूरा विचार करने पर यह समझ लेना कठिन नही है कि जीवनकी इस आवश्यक वस्तुके बारेमे न सिर्फ भारतमे ही, बल्कि यूरोप और अमेरिकाके अत्यत यत्र-प्रधान और उद्योग-प्रधान देशोमे भी प्रत्येक घरको यथासभव स्वावलबी बनना चाहिये। वास्तवमे, जैसा श्री विनोबाने कुछ माह पहले बताया था, किसी सभ्य समाजमे मनुष्यकी सबसे पहली जरूरत रोटी नही, कपडा है। आप कुछ दिन तक भूखे रहकर तो दुनियामे कही भी घूम सकते है और आपको शरमिन्दा होनेकी जरूरत नही होगी, मगर आधुनिक सभ्य समाज आपको अपने घरके किसी भी हिस्सेमे नगे घूमनेकी इजाजत नही देता। इसलिए सभव है कि हर आदमी अपनी खुराक खुद ही पैदा न कर सके, मगर उसे कमसे कम अपना कपडा तो आप ही तैयार कर लेना चाहिये। और सौभाग्यसे खुराकके उत्पादनसे यह काम बहुत आसान और हरएकके बूतेका भी है। इसके सिवा, नैतिक दृष्टिसे देखे तो खादी खास तौरसे शान्तिपूर्ण और अहिसक व्यवस्थाकी प्रतीक है। वह परिश्रमशीलता, शरीर-श्रम, अशोषण और आत्माभिव्यक्तिकी सूचक है। पता नही यह बात सर्वोदय आन्दोलनके प्रशसक कहा तक अनुभव कर सकेगे, परन्तु जैसी श्री काकासाहब कालेलकरने साहसपूर्वक भविष्यवाणी की थी, एक दिन ऐसा आयेगा जब यह विचार शायद स्पष्ट रूपसे मान लिया जायगा और विदेश जानेवाले भारतवासी ससारके अत्यत उद्योग-प्रधान लोगोके सामने चरखा और हाथ-करघा रखनेमे सकोच नही करेगे।

हरिजन, २७–३–’४९ — कि० घ० मशरूवाला

५

शरीर-श्रम

रुपये-पैसेका कमसे कम उपयोग करनेके लिए विनोबाजी आजकल अपने परमधाम आश्रम, पवनारमें एक महान प्रयोग कर रहे हैं। उनकी रायसे लेन-देनके एकमात्र साधनके रूपमें रुपयेने ससारमे जितना नुकसान और सत्यानाश किया है, उतना और किसी चीजने नही किया। वे अपने थोडेसे साथियो-सहित इस काममें डूबे हुए हैं कि अत्यत सीधे-सादे औजारोसे और जमीन जोतनेके लिए बैलो पर भी निर्भर न रहकर जमीनकी पैदावार कैसे बढाई जा सकती है। वे यह देखना चाहते हैं कि मौजूदा परिस्थितियोमे, जब कि पम्प, मशीने और ट्रैक्टर ही खेतोके नयेसे नये और वैज्ञानिक औजार माने जाते हैं, केवल शरीर-श्रमसे खेतीमें क्या सफलता मिल सकती है।

शिवरामपल्लीमें उन्होने जब भी मौका मिला यह मत प्रतिपादित किया कि श्रमकी पवित्रता स्वीकार की जाय और उसके द्वारा सारे रचनात्मक कार्यक्रमको नयी दिशा दी जाय। आचार्य विनोबाके मतानुसार, सीधे-सादे शरीर-श्रमकी शुद्धता और वर्तमान सभ्य जीवनके सब मूल्योका इस नये मूल्यके प्रकाशमे पुनर्मूल्याकन हमारी तमाम बुराइयो और कठिनाइयोका एकमात्र रामबाण इलाज है। अगर हम रुपयेका चलन उठा दे और श्रमको नई श्रद्धा, नये उत्साह और नई पवित्रताके साथ अपना ले, तो ससारकी स्थितिमे कायापलट हो जाय। इस समय सबसे बडी आवश्यकता इस नये आदर्शके साथ निरतर पैदावार बढानेकी है। विनोबाने बार बार बताया है कि अगर हम अपने पासके सादेसे सादे औजारोकी मददसे अपने हाथोका पूरी तरह उपयोग करे, तो हमारी जरूरते आसानीसे पूरी हो जायगी। अगर हम शरीर-श्रमको इस दृष्टिकोणसे देखना सीख जाय, तो अशोषण, विकेन्द्रित समाज, सादगी, जीवनका पवित्र सौन्दर्य और आर्थिक समानता अवश्य प्राप्त हो जायगी।

हरिजन, २८-४-'५१

६
पैसेसे मुक्ति

राजघाट, दिल्लीके अपने प्रार्थना-प्रवचनमे विनोबाजीने कहा कि पैसेकी व्यवस्था उठ जानेके बाद ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था श्रमके आधार पर खडी की जानी चाहिये। कुछ लोगोकी कल्पना है कि मै फिरसे पुरानी बार्टर (वस्तुओकी अदला-बदली) पद्धति लाना चाहता हू। मेरी यह योजना कतई नही है। मै सिक्केके विरुद्ध नही हू। असलमे मै धातुके सिक्कोसे कागजके सिक्केको तरजीह देता हू। परन्तु मै तो श्रमका सिक्का चाहता हू। वह किसी शासकके हुक्मसे नासिकमे छपा हुआ नही होना चाहिये। वह सिक्का खुद गाववालोका अपने ही उपयोगके लिए स्वीकार किया हुआ होना चाहिये। इस सिक्केमे उधारका कोई सवाल नही होना चाहिये।

हरिजन, २९-१२-'५१ विनोबा

७
अपरिग्रह और संस्थाएं

कुछ लोग अपने लिए परिग्रह नही करते, परन्तु सस्थाओके लिए कर लेते है। यह उस आदमीकी-सी बात है जो अपने खातिर हिसा नही करता, मगर किसी ध्येयके नामसे या देशके लिए हिसा करता है। मेरी रायमे दोनो तरहके परिग्रह समान रूपसे बुरे है और असगति-दोष उत्पन्न करते है। उदाहरणार्थ, चरखा-सघके पास बचा हुआ रुपया होता है, जिसे वह बैकोमे जमा रखता है। यह इसलिए किया जाता है कि ब्याज मिले। स्पष्ट है कि चरखेके उद्देश्यके लिए वह जितना खर्च कर सकता है, उससे अधिक रुपया उसके पास है। परन्तु बैक ब्याज कैसे दे सकते है? वे इन रुपयोको विविध प्रकारके लाभप्रद उद्योगोमे लगाते है। अब देखिये, यह कितनी परस्पर विरोधी बात है। रुपया चरखेके कामके लिए ही दिया गया है, इसलिए चरखा-सघ उसे गोसेवाके काममे नही लगा सकता, यद्यपि वह उसी रचनात्मक कार्यक्रमका एक अग है जिसे

चरखा-सघने स्वीकार किया है। परन्तु वही रुपया बैंकोके जरिये बडे पैमानेके उद्योगोमे लगाया जा सकता है और लगाया जाता है। यह विरोध हमारे रुपया रखनेके लालचसे पैदा होता है, चाहे वह हमारी सस्थाओके नाम पर ही क्यो न हो। यही हाल कस्तूरबा कोषका है और यही गाधी स्मारक कोषका होगा। हमे इतना रुपया इकट्ठा करनेकी जरूरत क्या है? अगर इतनी रकमकी सचमुच आवश्यकता है, तो उसे एक या दो वर्षोंमे खर्च करना सभव होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नही है और किसीको दिखाई नही देता कि बैंकोमे यह रुपया रखकर कमाई करनेसे कितनी बुराई होती है। बात यह है कि हमारा लालन-पालन ऐसे समाजमे हुआ है, जिसमे ब्याज न कमाना मूर्खता माना जाता है। गीता हमसे सब प्रकारका परिग्रह छोडनेको कहती है — त्यक्त-सर्व-परिग्रह। इसमे धर्मार्थ सस्थाओका परिग्रह भी शामिल है। क्योकि अगर हम परिग्रह किसी भी रूपमे करते है, तो हमे वे सारी बुराइया करनी पडती है, जो व्यक्तिगत उद्देश्यसे किये जानेवाले परिग्रहके साथ जुडी हुई है।

हरिजन, १०–४–'४९ **विनोबा**

८

रुपयेका दान नहीं

मुझे कुछ दिनसे केवल शरीर-श्रमके आधार पर सस्थाए चलानेका पागलपन सूझा है। मेरा पक्का विश्वास है कि ऐसा किये बिना हमारी सस्थाए तेजस्वितापूर्वक काम नही कर सकती। यह उचित नही कि बापूके चले जानेके बाद लोगोसे अब भी हम दान मागे और अपना काम दानके रुपयेसे चलाये। मुझे आशा है कि गाधी स्मारक कोष गाधीजीके नाम पर एकत्रित किया गया आखिरी कोष होगा। इसके बाद अब कोई भी उनके नाम पर रुपया जमा नही कर सकता और न करना चाहिये। हमे अब श्रमका ही सगठन करना चाहिये, क्योकि लोग गाधीजीके खातिर प्रेमपूर्वक पैसे तो देगे, परन्तु इससे हमारा नाश हो जायगा।

हरिजन, ५–१–'५२ **विनोबा**

ग्यारहवां विभाग : ग्राम-सर्वोदयकी दिशामे

१

हिस्सेदारीका सिद्धान्त

हमे जीवनका समग्र रूपमे और उसके सारे विभिन्न पहलुओकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। तब खेती तथा दूसरे उद्योगो या धधोके बीच कडा विभाजन और उसके कारण होनेवाला हित-सघर्ष भी नही हो सकेगा। यह सभव होना चाहिये कि एक धधेमे काम करनेवाला आदमी दूसरे धधेमे भाग ले सके या दूसरे धधोकी कमाईमे हिस्सेदार बन सके। हमारा लक्ष्य समाजका इस ढगसे विकास करना होना चाहिये।

एक आदमी जमीनका मालिक और दूसरा काश्तकार होता है। और उनका आपसमे भूस्वामी और किसानका या मालिक और मजदूर या गुलामका सबध होता है। इस सबधमे और उसके कारण होनेवाले तरह-तरहके अन्यायोके मूलमे उपरोक्त सर्वांगी दृष्टिका अभाव है।

किसान अपनी मेहनतसे जो पैदा करता है, उसमे जमीदारका हिस्सा चिरकालसे उचित माना जाता रहा है। परन्तु किसान जमीदारको खेतीके परिश्रमसे वचाकर जो दूसरे धधे करनेका अवकाश देता है, उनसे जमीदारको होनेवाली कमाईमे किसानको कोई हिस्सा नही मिलता।

निष्क्रिय जमीदारीकी प्रथाको खतम करके इस अन्यायका अन्त करनेकी बाते सोची जाती है। यह कहा जाता है कि या तो जमीदार खुद शुद्ध किसान बनकर जमीनमे खेती करे या उस जमीनमे उसका कोई वास्ता न रहे। लेकिन यह इस बुराईके इलाजकी सही दिशा नही मालूम होती।

भारतीय ग्रामोके सम्यक् उत्थानके लिए यह महत्त्वकी बात है कि ग्रामवासीको केवल किसान, केवल चरवाहा या केवल व्यापारी नही होना चाहिये। आम तौर पर इनमे से कोई भी धधा सालके ३६५ दिन

लगातार पूरा काम नही देता। अगर इन सबका विकास इस प्रकार किया भी जा सके कि उनमे लगे हुए लोगोको पूरा काम मिल जाय, तो भी यह जरूरी है कि उन्हे अपने मुख्य धधेके साथ कोई दस्तकारीका धधा करना चाहिये। निरे किसानका अकसर पूरा बौद्धिक विकास नही होता। निरा दुकानदार या निरा कारीगर शारीरिक दुर्बलता और नैतिक कायरताका शिकार हो जाता है।

गावकी आवश्यकताओके कारण कारीगर-वर्गकी उत्पत्ति हुई। जहा स्थानीय कारीगर पैदा नही किये जा सके, वहा दूसरी जगहसे बुला लिये गये। इन्ही जरूरतोके कारण निरा किसान व्यापारीके नियत्रणमे आया। कृषक-वर्गमे से भी कुछ लोग, जो दूसरोसे ज्यादा बुद्धिशाली या चालाक थे, व्यापारका धधा करने लगे। उन्हे अपनी जमीने छोडनेकी जरूरत नही पडी। पहले वे लोग मजदूरी देकर और बादमे सालाना करार पर काश्तकारोसे खेती कराने लगे।

इस प्रकार श्रम-विभाजन तो हुआ। मगर कमाईके बटवारेमें व्यापारीने जमीनकी पैदावार और कारीगरकी मेहनत दोनोमे से हिस्सा चाहा, जब कि अपने व्यापारकी आमदनीमे से किसीको भी हिस्सा देना मजूर नही किया। इसी तरह जमीदारने मजदूरकी पसीनेकी कमाईमे से हिस्सा लिया और कारीगरको गुजरमात्रसे जरा भी अधिक न देकर उसकी कुशलताका भी अनुचित लाभ उठाया, मगर खुद उसने दूसरी जमीनो या धधोसे होनेवाली अपनी कमाईमे से मजदूर या कारीगरको कोई हिस्सा नही दिया। इस प्रकार खेतीके मजदूर और कारीगरको ज्यादासे ज्यादा मेहनत करनी पडती और कमसे कम मेहनताना मिलता।

अब जो सुधार किये जा रहे है, उनका उद्देश्य यह है कि जमीदार और 'बिचौनियो' (अर्थात् दुकानदार या दलाल) को हटा दिया जाय और कारीगरो और खेतीके मजदूरोको 'स्वतत्र' वर्ग बनाकर इस लायक बना दिया जाय कि उन्हे अपने परिश्रमके फलका उचित भाग मिलता रहे।

चूकि बडे उद्योगोको बन्द करनेका किसीका साहस नही होता, इसलिए राष्ट्रकी अर्थ-व्यवस्थामे उद्योगपतिका सम्मानपूर्ण स्थान सुरक्षित है।

सम्मिलित हिन्दू परिवारकी प्रथाका आधार रक्त-सबध था। किसी समय एक एक परिवारमे दो-दो अढाई-अढाई सौ आदमी होते थे। इस कारण खेती करना, पशुओकी देखभाल करना, भिन्न भिन्न चीजे तैयार करना, मालको बाजारमे बेचना वगैरा कामोका परिवारके अलग अलग व्यक्तियोमे विभाजन किया जा सकता था। सब एक ही कुटुम्बके आदमी थे और इसलिए सबकी कमाईमे हरएकका हिस्सा होता था। वह प्रथा तो अब मिट गई और उसी रूपमे उसे फिरसे जारी नही किया जा सकता। परन्तु उस प्रथाका यह उसूल बडा कीमती है कि सबकी कमाईमे सबका हिस्सा हो। उसका लाभ अब केवल बहुविध कामोके लिए बननेवाली सहकारी समितियो द्वारा ही उठाया जा सकता है। सारे कानून और सुधार अब ऐसी समितियोकी वृद्धिके लिए ही होने चाहिये।

काश्तकारी कानूनका भी यही उद्देश्य होना चाहिये। कथित जमीदार, किसान, काश्तकार, खेतीका मजदूर, देहाती कारीगर, दुकानदार और प्रवासी — जो थोडे समय कमाईके लिए बाहर चला जाता है, सबको एक सम्मिलित समाजमे इस प्रकार गूथ देना चाहिये कि सबको सबकी कमाईका हिस्सा मिलता रहे और कोई बेकार न रहने पाये। अवश्य ही सबको जीवन-वेतन मिलेगा। लोगोको ऐसे सामाजिक और आर्थिक जीवनका मार्ग बताया जाय और शिक्षा दी जाय, जिसका आधार इस प्रकारकी सर्वांगी सहकारी समितिया हो।

अगर जमीन-मालिक अपनी दूसरी सारी कमाईमे काश्तकार और खेती-मजदूरको हिस्सेदार बनानेके लिए तैयार हो, तो जमीनका स्वामित्व उसीके पास रहने देनेमे कोई हर्ज नही।

इसमे भी कोई आपत्ति नही कि व्यापारी अपनी बचतका रुपया जमीनमे लगा दे और उसे मजदूरो या काश्तकारोसे जुतवाकर उसकी पैदावारका हिस्सा ले, अगर वह अपनी दूसरी आमदनीमे अपने काश्तकारो और मजदूरोको हिस्सेदार बनानेके लिए तैयार हो।

किसी सम्मिलित हिन्दू परिवारका कोई साहसी नौजवान विदेश जाकर रुपया कमाता है। उसे उसमे से परिवारके दूसरे लोगोको

उसी प्रकार हिस्सा देना पडता है, जिस प्रकार उसकी अनुपस्थितिमे होनेवाली घरकी कमाईमे स्वय उसको हिस्सा मिलता है। तो फिर परिवारकी सीमाको बढाकर उसमे काश्तकार और मजदूरको, बल्कि सारे गावको शामिल क्यो न कर लिया जाय? उस सूरतमे ईर्ष्याके लिए कोई कारण नही रह जायगा, बल्कि विदेशोमे अपने साहसके लिए उसे सहायता और प्रोत्साहन मिलेगा। यह सहकारी सिद्धान्तके आधार पर ही हो सकता है। जब यह बात हो जायगी तब निष्क्रिय जमीदारी, बिना मेहनतकी कमाई और शोषण आदि शब्दोका प्रयोग ही उठ जायगा।

नि सन्देह ५० एकडके खेतोसे १०० या २०० एकडवाले बडे खेतोमे काश्त करना ज्यादा फायदेमन्द है और इसी तरह छोटे-छोटे पशु-समूहोकी अपेक्षा बडे बडे पशु-समूहोका पालन अधिक उत्पादक है। शर्त यही है कि यह काम हमेशा सहकारी पद्धतिसे किया जाय।

अगर नये काश्तकारी कानूनमे इस प्रकारकी सहकारी समितियोकी वृद्धिकी अनुकूलता नही है, तो यह खामी उचित ढगसे जरूर दूर कर ली जानी चाहिये। कानूनको इस बातका स्वागत करना और उसे प्रोत्साहन देना चाहिये कि अभी तक जमीदार माने जाते रहे लोग अपनी जमीनोमे ज्यादा दिलचस्पी ले, अपने देहातको लौट जाय, खुद खेती करने लगे, खेतीका सुधार करे और अपने गावोके उद्योगोकी उन्नति करे। मगर यह सब इस ढगसे होना चाहिये कि तमाम धधो और सारी कमाईको सम्मिलित माना जाय और काश्तकार, कारीगर और मजदूर सबको सम्मिलित कमाईका हिस्सा मिले।

किसानको अपनी जमीनसे बडा मोह होता है और उसे वह आसानीसे नही छोडेगा। वह कानूनसे बचनेकी भरसक कोशिश करेगा। इसलिए सबके हितमे बेहतर यह होगा कि उसे न्याय और सर्वोदयके मार्ग पर चलनेको राजी कर लिया जाय।

हरिजन, १७-१०-'४८ कि० घ० मशरूवाला

२

गांवकी व्यवस्था

विनोबाने समझाया कि दिल्लीमे जो सरकार स्थापित हुई है, उससे यह आशा नही रखी जा सकती कि आपके गावमे आकर वह सुखकी वर्षा कर देगी। आपके गावमे आग लग जायगी, तो हैदराबादसे आकर लोग उसे नही बुझा सकते। यह मानव-शक्तिके बाहरकी बात है कि कोई मनुष्य या मनुष्य-समूह एक जगह बैठ कर इतने बडे मुल्कके शासनकी देखभाल कर सके। इसलिए लोग प्रत्येक गावके इतजामके लिए अपनी ही कमेटी बना ले। इस कमेटीको गावकी आवश्यकताओका अध्ययन करके यथासभव गावमे ही उन्हे पूरा करनेका प्रयत्न करना चाहिये। कमेटी लोगोको शराबकी बुराईसे भी छुडाये। आपको यह भी सावधानी रखनी चाहिये कि कस्बो और शहरोमे काग्रेसियो, समाजवादियो और दूसरे दलवालोके जैसे झगडे पैदा हो गये है वैसे आपके गावमे न घुस जाय। लोग चुनावके समय जिसे चाहे मत दे सकते है। लेकिन अगर बाहर-वाले आकर गावमे राजनीतिक फूट फैलानेकी कोशिश करे, तो आपको शिष्टता किन्तु स्पष्टताके साथ उन्हे कह देना चाहिये कि हमे आपके राजनीतिक झगडो और मतोसे कोई सरोकार नही, और जहा तक हमारे कामकाजका सबध है, हम न तो काग्रेसी है और न समाजवादी या साम्य-वादी है। हम सब शुद्ध हिमायतनगरवाले ही है। मै आपको चेता देता हू कि राजनीतिक लोग आपके पास आकर गरीबोको अमीरोके खिलाफ, नौकरोको मालिकोके खिलाफ और एकको दूसरेके खिलाफ भडकायेगे। आपको उनसे कह देना चाहिये कि हमारा गाव एक है, हम सबका परिवार एक है और जैसे दूसरे लोग सारे देशकी समस्याओके बारेमे विचार करते है, वैसे हम भी गावकी समस्याओ पर विचार करना चाहते है। अगर ग्रामवासी दृढ रहकर बाहरकी बुराइयोको अपने गावमे घुसने नही देगे, तो वे अपने गावकी बुराइया एक एक करके दूर कर सकेगे।

(हैदराबादके हिमायतनगर गावमे दिये गये भाषणसे) **विनोबा**

हरिजन, २०-१०-'५१

३

सर्वोदयी शिक्षा

थोडी देर पहले मै लडकोके साथ खेल रहा था, तो मेरे मनमे प्रश्न उठा कि इन बालकोके लालन-पालनकी जिम्मेदारी उनके अपने माता-पिता पर रहनी चाहिये या सारे गाव पर? अमीरके घर पैदा हुए पुत्रमे और गरीबके यहा पैदा हुए पुत्रमे कोई फर्क नही। दोनो ही ईश्वरके समान रूप है और दोनो ही अपने घरोमे प्रकाश फैलाते है। अगर सारा गाव मिलकर माता-पिताकी भावनासे अपने यहाके छोटे बच्चोकी देखभालका भार सभाल ले, तो सारे गावकी प्रगति होगी। सामाजिक प्रगतिका यही उपाय है और मै इसे आपके विचारार्थ पेश कर रहा हू।

बच्चोकी कोई जाति नही होती और न वे गरीब और अमीरका भेद जानते है। वे सब ईश्वरकी समान प्रजा है। परन्तु धनवान आदमीने अपने ही स्वार्थका ध्यान रखा और गावके विशाल हितोकी उपेक्षा की तथा अपने लडकोको शिक्षाके लिए शहरमे भेज दिया। लडका शहरी हो गया और ग्रामीण जीवनसे घृणा करना सीखकर स्थायी तौर पर शहरमे ही बस गया। वह देहातियोका मित्र नही बन सका और न उसने गावमे काम किया। वह केवल फसलके वक्त अपना हिस्सा लेनेके लिए गावमे शकल दिखाने आ जाता था। मगर चूकि वह गावमे नही रहा और खेतीके काममे उसने ध्यान नही दिया, इसलिए जितना उसे मिलना चाहिये था या मिलता उतना वह प्राप्त नही कर सका। इससे उसमे और गाववालोमे दुर्भाव पैदा हो गया। और अगर गाववाले मिलकर उसके विरोधमे हो गये, तो उसने घबडाकर पुलिसकी मदद लेनी चाही। उसने सोचा कि लोग सब साम्यवादी बन गये है और मुझे नुकसान पहुचाने पर तुले हुए है। पुलिसका परिस्थितिसे निपटनेका अपना ही ढग होता है। वह प्रेमका ढग तो हरगिज नही होता। पुलिसका जोर अपने पासके डडेमे होता है। अन्तमे गावको बरबादी और मुसीबते देखनी पडी और देहातमे द्वेषकी राक्षसीका

बोलबाला हो गया। इसलिए अगर लोग सुखी ग्रामका निर्माण करना चाहते हो, तो उन्हे गावके तमाम बच्चोकी शिक्षाका प्रबध गावमे ही करनेका निश्चय करना चाहिये।

विनोबाने समझाया कि गावके लडके साथ-साथ बडे होगे, तो वे खेतीका काम भी मिलकर करेगे। उनमे न डर होगा, न दुर्भाव। जैसे कृष्ण अपने साथी ग्वालोको बुलाकर उन्हे अपना मक्खन और दही खिलाते थे, वैसे ही ये लडके भी अपने मित्रोके साथ प्रेमसे रहेगे और उन्हे अपनी खुशियोमे शरीक होनेको निमत्रित करेगे। ऐसा गाव गोकुल बन जायगा, पृथ्वी पर स्वर्ग हो जायगा। गोकुलमे क्या था? यही कि सब लोग मिल-कर गावकी सपत्तिका उपभोग करते थे, चाहे वह सम्पत्ति दूध-मक्खन हो, शहद या गन्नेका रस हो, या चावल और जुवार हो। जब कोई आदमी अकेला चोरकी तरह खाने बैठता है, तो उसकी खुराक पर केवल मक्खिया ही भिनभिनाती है। लेकिन अगर वह अपने मित्रोमे बैठकर प्रेमसे खाता है, तो खाना ज्यादा मीठा लगता है। आदमी अपने मित्रोसे प्रेम कर सकता है, मक्खियोसे नही कर सकता। इसलिए उसकी प्रेमकी स्वाभाविक भावना तृप्त नही होती और वह बहुतसी भद्दी बाते करने लगता है। वह कुत्ते-बिल्ली पालता है और उन पर अपना अतृप्त प्रेम बरसानेका व्यर्थ प्रयत्न करता है। इस प्रकार जहा एक बार लोग गुमराह हुए कि समस्या दिन-दिन पेचीदा होती चली जाती है। स्पष्ट है कि वह सीधी और हल तभी हो सकती है, जब लोग सम्मिलित जीवनकी कलाका अभ्यास करे अर्थात् एक ही पाठशालामे एक साथ पढे-लिखे और अध्ययन करे।

फिर विनोबा यह समझाने लगे कि गावके लिए किस तरहकी पाठ-शाला होनी चाहिये। उन्होने कहा कि मै जो पाठशाला स्थापित करूगा, उसमे सबको काम करना होगा। शिक्षक और विद्यार्थी खुशीसे किसी न किसी तरहके उत्पादक श्रममे लगेगे और कामके जरिये उनके लिए जो कुछ उपयोगी होगा वह सीखेगे। आजकल सपन्न मा-बापके लडके, जो पाठ-शाला जाते है, काम करनेकी क्षमता खो देते है। यह शिक्षाका विपर्यास है, क्योकि इसके परिणाम-स्वरूप हमारी स्वाभाविक शक्तिया घट जाती

है। इसलिए गाधीजीने कहा है कि हमारी पाठशालाओमे तरह तरहकी उपयोगी प्रवृत्तिया गूजती रहनी चाहिये। लडकोको वहा खेत जोतना चाहिये, सूत कातना चाहिये और उसका कपडा बुनना चाहिये। और कामके साथ तथा उसके द्वारा पढाई भी करनी चाहिये। अमीर और गरीब लडकोको, ब्राह्मण और शूद्र लडकोको, सबको पाठशालामे साथ-साथ काम करना चाहिये और साथ-साथ पढना चाहिये। ऐसी पाठ-शालासे एक ऐसे नये समाजका शिलान्यास होगा, जो सामाजिक और आर्थिक असमानतासे मुक्त होगा।

(२६ अप्रैल, १९५१ को तेलगानामे दिये गये एक भापणसे)

हरिजन, २–२–'५२

शिक्षासे दो बातोकी आशा रखी जाती है। विद्यार्थियोको मिलने-वाली शिक्षासे उनमे इतनी कार्यक्षमता आनी चाहिये कि वे अपनी शिक्षाका लाभ लोगोको दे सके। उन्हे जितना प्राप्त हुआ हो उससे दस गुना उन्हे लौटाना चाहिये। शिक्षा बीज बोनेकी क्रियाकी तरह है। अच्छे बीज और बोनेकी सही पद्धतिका परिणाम यह होता है कि कई गुना अधिक बीज उत्पन्न होता है। यही बात शिक्षासे होनी चाहिये। उस पर जितना रुपया और श्रम खर्च हुआ हो, उससे कई गुना फल मिलना चाहिये। शिक्षासे एक यह आशा की जाती है।

दूसरी आशा शिक्षासे यह रखी जाती है कि विद्यार्थियोको इस उम्रमे अपने विकासके लिए जितना भोजन चाहिये वह सब उसमे मिल जाय। उनके मस्तिष्कमे जो शक्तिया छुपी पडी है, उनके विकासमे शिक्षासे मदद मिलनी चाहिये। ज्ञानवान मनुष्योने हमे बता दिया है कि प्रधान सत्य हमे यह सीखना है कि हम शरीर, मन और बुद्धिसे भिन्न है। यदि शिक्षा हमे यह नही सिखाती तो वह व्यर्थ है, क्योकि वह अपना मुख्य हेतु पूरा नही करती। शिक्षाको जो मुख्य लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिये वह यह है कि उसके द्वारा विद्यार्थी यह देख सके कि वह सच्ची प्रगति कर रहा है या नही — अर्थात् वह मनुष्यको उत्तराधिकारमे मिली हुई समस्त उदात्त शक्तियोका सचमुच विकास कर रहा है या नही, अपनेको

भौतिक वातावरण तथा शरीररूपी साधनसे भिन्न समझता है या नही और उन पर अपना काबू रख सकता है या नही। उपनिषदोमे हम देखते है कि जब तक विद्यार्थी जीवन और भीतरी विकासकी दृष्टिसे शिक्षाके लक्ष्यकी पूर्ति आचरणमे नही कर लेता था, तब तक सारी विद्या प्राप्त कर लेने पर भी वह स्नातक नही माना जाता था। उसे विद्यामे ही नही, इच्छा पर सयम रखनेमे भी पारगत होना पडता था। अपने-आप पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेनेके प्रमाणस्वरूप उसमे अपने व्रतोका पालन करनेकी क्षमता आनी चाहिये। कुशल सवारकी तरह उसका अपने शरीर, बुद्धि और मन पर पूरा काबू होना चाहिये। आत्म-दमन, आत्म-नियमन और आत्मशक्तिका सदुपयोग — यह सबसे बडी कला है और यही शिक्षाका सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिये। जो इसे सिद्ध कर लेता हैं वह व्रत-स्नातक है, और जो पुस्तककी विद्यामे पारगत होता है वह केवल विद्या-स्नातक होता है।

जो विद्यार्थी इस परीक्षामे पास हो जाता है, वह अपने राष्ट्रकी सफल सेवाके लिए सचमुच योग्य बन जाता है। केवल वही अच्छा नागरिक बनता है। वह जहा कही जाता है और जो भी काम हाथमे लेता है, उसे विश्वास और साहसके साथ करता है। आजकल तो हम देखते है कि विद्यार्थीके कॉलेजसे बाहर निकलते ही उसके सामने अधकार ही अधकार छा जाता है। वह कही न कही काममे लग सकता है, मगर उसे वह काम नही मिलता जो वास्तवमे उसकी रुचिके अनुकूल है और जिसके लिए स्वाभाविक रूपमे वह योग्य है। उसने अपने सामने जो लक्ष्य रखा है उसके पास पहुचनेकी भी कोई सूरत दिखाई नही देती। परिस्थितिया उसे जिधर फेकती है उधर वह जाता है। इस तरह सारा भाग्यका खेल होता है। परन्तु जो व्रत-स्नातक अर्थात् जो विद्यार्थी व्रतोका पालन कर लेता है, जो आत्म-दमन कर लेता है और जो व्यावहारिक जीवनकी कलाओमे, खेती और बुनाई इत्यादिमे प्रवीणता प्राप्त कर लेता है, वह दुखी और उदास प्राणीकी तरह सिर नीचा किये ससारमे प्रवेश नही करता। वह छाती खोलकर और आत्म-विश्वास तथा उत्साहपूर्ण हृदयके साथ आगे बढता है।

इसका अर्थ यह नही कि वह घमडी और उद्धत बन जायगा। नम्रता तो उसमे होगी ही। क्योकि जो सचमुच ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह समझ लेता है कि ज्ञान अनन्त है और मुझे तो उसका अणुमात्र ही प्राप्त हुआ है।

परन्तु नम्रताके साथ-साथ उसमे दृढ निश्चय, आत्म-विश्वास, धैर्य और निर्भयता आदि गुण भी होगे। अर्थात् उसमे बुद्धिके साथ धृति भी अवश्य होनी चाहिये, जिससे वह जीवनमे सदाचारी वीर बन कर प्रवेश कर सके। शिक्षासे इस आत्म-विश्वासका विकास होनेकी आशा रखी जाती है। अगर यह उसमे है तो वह ससारकी सेवा कर सकेगा। वह जीवनको भार नही समझेगा। वह जो विद्या सीखता है, उससे पूरा सतोष अनुभव करेगा। भोजनकी तरह विद्यासे भी तुरन्त सतोष उत्पन्न होता है। ज्यो ही आप खाने लगते है, आपको सुख अनुभव होने लगता है। सुखके लिए दो तीन दिन ठहरना नही पडता। यही हाल ज्ञानका है। ज्यो ही मनुष्य यह महसूस करने लगता है कि मैंने सचमुच कुछ सीखा है, उसका चेहरा चमक उठता है और ज्ञानके लिए उसकी भूख बढ जाती है। उसे अपार आनन्द मालूम होता है। उसे ऐसा नही लगता कि मेरा समय नष्ट हुआ। वह उस दिनकी बाट नही देखता रहता कि कब पढाई पूरी हो और कब उससे मेरा पिंड छूटे। असलमे एक बार मनुष्य ज्ञानस्रोतका स्वाद चख लेता है, तो सतत और आजीवन उसकी ज्ञानकी चाह बनी रहती है। वह निरतर ज्ञानकी साधना करता रहता है।

उपनिषद् विद्यार्थीसे कहते है कि विद्यार्थी-जीवन समाप्त हो जानेके बाद उसे गृहस्थाश्रममे अपना ज्ञान बढाते रहना चाहिये। गृहस्थ ब्रह्मचारीसे एक कदम आगे है। जो गृहस्थ अपना ज्ञान सदा बढाता रहता है, वह न केवल भरसक प्रत्यक्ष सेवा ही करेगा, बल्कि समाजको सदाचारी और धार्मिक बनानेमे भी सहायक बनेगा। अपने घरमे उसका एक पवित्र स्थान होगा और वहा वह नियमित अध्ययन करता रहेगा — 'शुचौ देशे स्वाध्यायम् अधीयान '। इस प्रकार उपनिषदोमे स्पष्ट कल्पना की

गई है कि नियमित शिक्षाकाल पूरा होनेके बाद भी अध्ययनका क्रम जारी रहे। ज्ञानप्राप्तिका क्रम जीवनपर्यंत बना रहना चाहिये।

विनोबाजीने आगे कहा कि ज्ञानामृतका स्वाद एक बार चख लेनेके बाद मनुष्य उसे छोडनेका विचार ही नही कर सकता। उपनिषद्-कालके ऋषियोने सीखने और सिखाने ('स्वाध्याय-प्रवचने च') का धर्म अन्य सब कर्तव्यो और सदाचारोके साथ जोड दिया है। इस प्रकार उन्होने केवल ऋत, सत्य और तपकी ही सलाह नही दी है, परन्तु यह उपदेश भी दिया है कि 'सदाचारी बनो और सीखो तथा सिखाओ', 'सत्यवान बनो और सीखो तथा सिखाओ', 'ससारकी सेवा करो और सीखो तथा सिखाओ', 'यज्ञाग्निकी सेवा करो तथा सीखो और सिखाओ' इत्यादि इत्यादि। इसका सार यह है कि गृहस्थसे जीवनभर ज्ञान-प्रचारका काम जारी रखनेकी आशा की जाती है।

हमने आजादी प्राप्त कर ली है, इसलिए हम पर उसके कारण अनेक जिम्मेदारिया आ पडी है। वे तभी अच्छी तरह पूरी की जा सकती है, जब हममे हर प्रकारके विशेषज्ञ हो। हमारा देश तभी प्रगति करेगा जब हम परिश्रम और कष्ट-सहन करके ज्ञानके भिन्न-भिन्न विभागोकी खोजका काम करेगे। परन्तु मुझे भारतमे परिश्रमी और कष्ट-सहिष्णु विद्वान बहुत थोडे दिखाई देते है। इस दशाका मुख्य कारण हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली है। कारण, जब विद्यार्थी पाच छह वर्ष साधारण पाठ्यक्रममे बिता देता है, तो उसकी सारी दिलचस्पी मारी जाती है और वह शुष्क बन जाता है। उसकी मानसिक शक्तिया कुण्ठित हो जाती है, उसकी इद्रिया दुर्बल हो जाती है और सबसे बुरी बात तो यह होती है कि उसकी सारी जीवन-शक्ति नष्ट हो जाती है। उसे आत्माका कुछ भी ज्ञान नही होता, फिर शरीरसे उसकी भिन्नताका भान तो हो ही कहासे? और जब उसे अपनी इद्रियोको वशमे रखना ही नही आता तब उसकी शिक्षा किस कामकी?

(सिकन्दराबादके भाषणसे) विनोबा

हरिजन, १४–७–'५१

४

प्रौढ़-शिक्षा

हर गावमे शिक्षाप्रद साहित्य नियमित रूपसे पढा जाय। जैसे हमे जीनेके लिए रोज खाना जरूरी है, ठीक वैसे ही मस्तिष्कको भी खुराक अवश्य मिलनी चाहिये। रोटी शरीरका भोजन है और ज्ञान मस्तिष्कका भोजन है। देहातियोको चाहिये कि तुलसीकृत रामायण, गाधीजीकी आत्मकथा और गीता-प्रवचन (विनोबा-कृत) के पाठकी व्यवस्था करे। किसान दिनभर मेहनत करता है। उसे स्वय पढनेका समय नही मिलता। वह पढता है तो उसकी आखो पर असर पडता है। इसलिए प्रत्येक गावमे सार्वजनिक वाचनकी व्यवस्था होनी चाहिये। अगर लोगोको अच्छी बाते सुननेकी आदत पड जाय, तो थोडे ही समयमे उनके गावकी हालत बदल जाय।

हरिजन, २–२–'५२ **विनोबा**

५

सर्वोदयकी रूपरेखा

मित्रोकी इच्छा थी कि विनोबा सर्वोदयकी रूपरेखा बताये। इसलिए उन्होने कहा

भारतके गावोको स्वावलम्बी बन जाना चाहिये और उन्हे जहा तक सभव हो कीमतोके उतार-चढावसे बचा लेना चाहिये। जरूरी कच्चा माल गावमे ही पैदा होता हो, तो उन्हे अपने ही गावमे अपनी जरूरतका पक्का माल तैयार कर लेना चाहिये। यत्रो पर सारे समाजका अधिकार होना चाहिये। उत्पादन और अतिम वितरणके बीचमे कोई दलाल नही होने चाहिये। अहिसाके आधार पर खडा समाज बीचके दलालोके मारफत काम नही कर सकता। सबको खाना मिलना चाहिये और सबको काम करना चाहिये। राष्ट्रकी अर्थ-व्यवस्थाकी योजना सम्मिलित परिवारके ढग पर होनी चाहिये। अगर चरखेसे सबको काम

मिल सके, तो उसे काममे लेना चाहिये। अगर आप सारे राष्ट्रके लिए योजना नही बना सकते और आपको भेदभाव करना ही पडे, तो उस सूरतमे मै अपनेको साम्यवादी मानकर कहता हू कि अपनी योजना बनानेमे आपको गरीबोके पक्षमे भेदभाव करना चाहिये। सक्षेपमे सर्वोदयकी मेरी रूपरेखा यही है।

हरिजन, २–८–'५२ **विनोबा**

६

आर्थिक समताकी ओर

जमीन किसानको अस्थायी तौर पर — मिसालके तौर पर दस सालके लिए — दी जानी चाहिये। किसानने पिछली बार जितनी कृषि-सम्बन्धी योग्यता दिखाई हो, उसका खयाल करके आगेके लिए दुबारा करार किया जा सकता है, इस अर्सेके बाद फिर दस वर्षके लिए जमीन कम या ज्यादा मात्रामे दी जा सकती है। जो लोग पहले किसान थे उन सबकी छोडी हुई भूमि वापस ग्राम-समाजकी हो जानी चाहिये और नये उम्मीदवारोको ग्राम-समाज ही जमीन देगा। ग्राम-समाज गावकी फसलोकी योजना नीचे गावके किसानोसे व्यक्तिश सलाह करके और ऊपर जिला, प्रान्त और केन्द्रीय सरकारसे सलाह-मशविरा करके बनायेगा और व्यक्तिगत रूपमे प्रत्येक किसानको ग्राम-समाजकी योजनाके अनुसार चलना होगा। गावके प्राकृतिक साधनो और लोगोकी मुख्य आवश्यकताओका विचार करके सतुलित खेती करनी पडेगी। उसका लक्ष्य १५–२० गावोके प्रदेशके लिए आवश्यक पदार्थोमे स्वावलबन प्राप्त करना होगा और फाजिल चीजे ही अनेक कामोवाली सहकारी समितिके मारफत बेची जायगी। किसी चीजकी मानी हुई इकाईके उत्पादनमे कितने घटोका मनुष्य-श्रम लगता है, इसका विचार करके सहकारी समिति भिन्न-भिन्न पदार्थोकी लागत कीमत तय करेगी। इन कीमतोके आधार पर वस्तुओके विनिमयका अनुपात निश्चित करके सहकारी समितिके मारफत गावके व्यक्तियोमे चीजोकी अदला-बदली की जायगी।

गाव और प्रदेशका सारा आयात-निर्यात सिर्फ सहकारी समितिके द्वारा ही किया जायगा। यह समिति केवल रुपये-पैसे सम्बन्धी काम ही नही करेगी, परन्तु इस तरह काम करनेवाला एक सहकारी सगठन होगी, जो लोगोको विविध उद्योग और किसी उद्योगकी भिन्न-भिन्न प्रक्रियाये करनेमे प्रोत्साहन देगी और अलग-अलग तरहकी पैदावारकी बिक्री और खरीदका प्रबध करेगी। खाद तैयार किया जायगा, पाल बाधकर गावकी जमीनका कटना रोका जायगा, नदी-नालोमे बाध बाधकर उनसे आबपाशी की जायगी, देहातियोके ही उत्साह और मेहनतसे गावके भीतर सडके बनाई जायगी और सरकार सिर्फ सामानका खर्च उठायेगी। हमे भूमिहीन मजदूरोका सगठन करके उन्हे अपने अधिकारो और जिम्मेदारियोकी शिक्षा देनी होगी।

स्वदेशी धर्मके पालनके बारेमे यह बात है कि हमे स्वदेशीके पुराने विचारको पुनर्जीवित करना चाहिये। मगर यह ध्यान रखना होगा कि स्वदेशीका हमारा अर्थ यह है कि पहले तो हमारे पडोसमे पैदा हुई चीजे ली जाय और उसके वाद ही दूरकी मिलोमे बनी हुई वस्तुए ली जाय। विदेशी माल लोगोको जहा तक हो सके नही खरीदना चाहिये। यह स्वदेशीका सामान्य पालन हुआ, जिसमे विशेष कर्तृत्व नही है। सक्रिय भाग यह है कि सभी लोग अपना दिमाग लगाकर विदेशी मालकी जगह लेनेवाला देशी माल तैयार करे। काफी प्रचारके बाद ऐसी स्थिति आ सकती है जब विदेशी मालकी होली करने आदिके सक्रिय कार्यक्रम रखे जा सके। परन्तु उससे पहले हजारो आदमियोके द्वारा लोगोमे स्वदेशीके दोनो पहलुओके बारेमे व्यापक प्रचार और कार्य हो चुकना चाहिये। इस प्रकार जब भूमिका फिरसे बटवारा हो जायगा और लोगोमे स्वदेशीकी भावना आ जायगी, तब हम सबको काममे लगा सकेगे, राष्ट्रकी आयका फिरसे न्यायपूर्ण बटवारा कर सकेगे और इस प्रकार आर्थिक समानता प्राप्त कर लेगे।

जे० सी० कुमारप्पा

(सेलडोह, मध्यप्रदेश, मे एक शिविरमे दिये गये भाषणोसे)

हरिजन, २४–१–'५३

७
सर्वोदयी योजना

हम भारतके विकासकी समस्याके विषयमे सर्वोदयी दृष्टिकोणके बुनियादी उसूलोका विचार करे

(१) जीवनके प्रति आदर सर्वोदयका पहला सिद्धान्त है। इस दृष्टिकोणके अनुसार भारतके विकासका अर्थ मुख्यत यह है कि भारतके प्राणियो — मानव और पशु दोनो — के जीवन और व्यक्तित्वका स्वस्थ और सर्वागीण विकास हो। पशुओका समावेश व्यवहारमे उसी हद तक किया जायगा, जिस हद तक वे मानव-जीवनके अभिन्न अग बन गये हो। मनुष्य-समाजमे जिनका प्रवेश हो गया है, उनमे गाय सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रतीकरूप पशु है।

(२) इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्राकृतिक साधन अत्यत जरूरी है, इसलिए उनके विकासकी उपेक्षा नही की जा सकती। परन्तु जीव और प्रकृतिके बीचमे यह भेद होगा कि जीवका विकास साध्य रहे और प्रकृतिका विकास साधन हो। जीवको हानि पहुचाकर प्रकृतिका विकास नही होना चाहिये और प्रकृतिके साधनोका अपव्यय भी नही होना चाहिये। इस अर्थमे मूक और निर्जीव प्रकृतिका भी 'शोषण' — दुरुपयोग नही किया जा सकता। यद्यपि मनुष्य पर अकसर परिस्थितियोका असर पडता है और वह उनका गुलाम भी बन जाता है, फिर भी आखिर तो वह परिस्थितियोका स्वामी और स्रष्टा है, न कि उनकी उपज, इसलिए उसके विकासको गौण और प्रकृतिके विकासको प्रधान नही बनाया जा सकता। प्रकृतिका विकास मनुष्यके लिए और उसकी सहायतासे करना होगा, उसे प्रकृतिके विकासका निरा हथियार नही बनाना है।

(३) इसलिए प्रत्येक समाज और राज्यका पहला काम यह होना चाहिये कि उसकी सीमामे रहनेवाले हरएक आदमीको वह काम दे। काम हरएकको उसकी योग्यताके अनुसार और तुरत उपलब्ध साधनोके द्वारा प्राप्त होना चाहिये। उसके लिए और उसकी मददसे काम और साधनोमे उत्तरोत्तर सुधार होता रहना चाहिये। परन्तु उसका लक्ष्य व्यक्तिका विकास होगा और उसके सहयोगसे ही उसका सपादन

करना होगा। यह उन्नति उसी हद तक जरूरी और उचित है, जिस हद तक वह प्रत्येक व्यक्तिके कल्याणकी साधक हो, यानी सर्वोदयकारी हो।

(४) जीवन-स्तर और रहन-सहनके स्तरमे भेद करना चाहिये। बुनियादी वस्तु पहली है, न कि दूसरी। रहन-सहनका स्तर ऊचा हो जानेसे जीवनका स्तर नीचा भी हो सकता है। क्योकि सभव है इससे मनुष्यके शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक मापदड और शक्तिया घट जाये। इसलिए प्रकृतिका प्रगतिशील विकास रहन-सहनके स्तरके अनुरूप नही, परन्तु जीवनके स्तरकी उन्नतिके अनुरूप होना चाहिये।

(५) योजनाका काम दो उद्देश्योसे होना चाहिये मनुष्यके विकासके मार्गसे प्राकृतिक या मानव-कृत बाधाए दूर करना और उसके लिए साधन, प्रशिक्षण और पथ-प्रदर्शनकी व्यवस्था करना।

(६) मनुष्यके विकासमे आनेवाली बाधाए ये है (क) शासन-तत्र और सपत्तिके उत्पादनमे अधिक केन्द्रीकरण, (ख) जिस जमीनको वे खुद नही जोतते और इसलिए उसके निष्क्रिय जमीदार बन जाते है; उसका स्वामित्व और नियत्रण मुट्ठीभर लोगोके हाथमे अथवा सरकार या किसी कपनी जैसी यान्त्रिक सस्थाके हाथमे आ जाना, (ग) धन-प्रधान अर्थ-व्यवस्था, जिसके कारण लोग व्यापार-व्यवसाय, मुनाफा और आय वगैराके लिए काम करते है और अपनी तथा समाजकी आवश्यकताए पूरी करनेके लिए काम नही करते, इसका परिणाम यह होता है कि परोपजीवियो या मुफ्तखोरोकी एक बडी जमात पैदा हो जाती है, (घ) आधुनिक ढगकी दासत्व-प्रणाली, (ङ) ब्याजकी प्रथा और उसके साथ-साथ साहूकारो और गैर-काश्तकारोके पास कारखानोके रूपमे बडी बडी सम्पत्तियोके स्वामित्वका अधिकार आ जाना, (च) एक तरफ राज्य और समाजके उन्नत वर्गो द्वारा साधारण मनुष्योके स्वास्थ्य और शिक्षा, औजार, बीज और कच्चे मालके बारेमे नितान्त उपेक्षा-वृत्ति और दूसरी तरफ ऐसे अधिकारो और परम्पराओ पर जोर देना, ऐसे रिवाजो, आदतो, बुराइयो, फैशनो और भोग-विलासका प्रचार करना और ऐसे प्रलोभन उपस्थित करना, जिन सबके परिणामस्वरूप पीढी-दर-पीढी मनुष्यका क्रमश ह्रास होता है, और (छ) ऐसी राजनीतिक, आर्थिक-

और सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना, जिसमे मनुष्य लगभग कोई हिस्सा नही ले सकता, अपनी इच्छासे कुछ कर नही सकता, परन्तु अपनेको चारो तरफसे बुरी तरह जकडा हुआ पाता है।

(७) अगर अबाधित शोषणके लिए दूसरे राष्ट्र उपलब्ध न हो, तो प्राकृतिक साधनोका कितना ही विकास क्यो न किया जाय, परन्तु इन रुकावटोको दूर किये बिना प्रत्येककी तो क्या, बहुसख्याकी भी भलाई नही की जा सकेगी। खास तौर पर भारत जैसे पूरी आबादीवाले देशोमे। बेकारी और महगाईकी और इनके कारण रहन-सहनकी अमानुषिक स्थितिया, रोग, दारिद्रच, भूख, आम लोगोकी गुलामी, स्त्रियोके लिए अरक्षित और अशोभनीय स्थिति, डाकेजनी, लूट और शासन तथा व्यापारमे भ्रष्टाचारकी समस्याए अवश्य बनी रहेगी और बढ भी सकती है। मालकी और खाद्य-पदार्थोकी बहुतायत होते हुए भी अपर्याप्तता, अतृप्त आवश्यकताओ और अपनी योग्यताके उपयोगके लिए उचित अवसरके अभावकी बुराइया बनी रहेगी।

(८) अगर सरकार यथासभव इन बाधाओको दूर करनेके सिवा और कोई योजना न बनाये, तो भी लोग तेजीसे नही तो धीरे-धीरे ही जीवनमे उन्नति करेगे। अगर इससे आगे बढकर योजना द्वारा लोगोको रचनात्मक सहायताए भी देनी हो, तो उनके तात्कालिक उद्देश्य ये होने चाहिये

(क) खाद्य और पुष्टिकारक पदार्थोके मामलेमे पूरी तरह ही नही, बल्कि उससे भी अधिक स्वयपूर्ण होना चाहिये। अन्तमे हमारा पूर्ण स्वराज्य पौष्टिक पदार्थोकी हमारी स्वयपूर्णता पर ही निर्भर रहेगा, न कि हमारे शस्त्रास्त्रो पर। इसलिए इसे योजनाके अन्य सब अगोसे प्राथमिकता मिलनी चाहिये, (ख) अन्नकी केवल विपुलता ही नही होनी चाहिये, बल्कि वह यातायातकी अत्यधिक आवश्यकताके बिना सबको आम तौर पर सुलभ भी होना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि अधिकसे अधिक स्वयपूर्ण इकाइया हो — सामान्य इकाई एक गावको माना जाय, (ग) खुराक आम तौर पर हरएक तदुरुस्त आदमीको इज्जतके साथ, न कि दान या सदाव्रत वगैराके रूपमे, सुलभ होनी चाहिये। इसका मतलब यह है कि कोई भी स्वस्थ मनुष्य बेकार न रहे। स्वयपूर्णताके आधार पर खुराककी पैदावारके साथ-साथ काम देनेकी

व्यवस्था भी कार्यक्रमका अग होना चाहिये, (घ) योजनाका दूसरा रचनात्मक अग कुदरती तौर पर राष्ट्रके प्रशिक्षणकी व्यवस्थाका होगा और उपरोक्त उद्देश्योकी प्राप्तिकी दृष्टिसे नई तालीमके सिवा राष्ट्रकी तालीमकी और कोई प्रणाली नही हो सकती। बुनियादी शिक्षा इसीका एक भाग है, (ङ) डॉक्टरी उपचार, दवादारू, टीके और इजेक्शन आदिसे पहले सफाई, स्वास्थ्य-विज्ञान, सिंचाई तथा पीनेके स्वच्छ पानीकी व्यवस्था होनी चाहिये, (च) खेतीके औजार कर्जदारी पैदा किये बिना सुलभ होने चाहिये, (छ) सार्वजनिक उपयोगकी सेवाओ (डाक, तार, यातायात, ट्रेक्टर उधार देना, बीज मुहैया करना, नमक जैसे अत्यावश्यक पदार्थोका उत्पादन-वितरण आदि) की व्यवस्था सरकार करे या सार्वजनिक सस्थाए करे या कोई खानगी व्यापारिक संस्था करे, परन्तु वह व्यवस्था मुनाफेके लिए या बचतकी दृष्टिसे नही होनी चाहिये, (ज) शराब, नशीले पदार्थ, चाय, लेमन आदि ठडे पेय, तम्बाकू आदिकी निकम्मी और खर्चीली आदते, जुआ, पहेलिया आदि कमाईके आसान तरीके और भद्दे खेल-तमाशे तथा गीत आदि प्रलोभनोको प्रोत्साहन नही मिलना चाहिये और न आमदनीके लिए उनके परवाने दिये जाने चाहिये, (झ) जो सरकार अपनी प्रजासे यह कहती है कि जब तक आबादी घटाई नही जायगी तब तक कल्याण-राज्यकी स्थापना नही की जा सकती और सतति-नियमनके लिए कृत्रिम साधन उपलब्ध करनेकी योजना बनाती है, वह शासन करनेके लिए उतनी ही अयोग्य है जितनी कि वह सरकार, जो साम्राज्य और युद्धके हेतुसे जबरन् आबादी बढाती है। जो शिक्षा मनुष्यको अपने विकारो पर प्रभुत्व प्राप्त करनेमे असमर्थ बनाती है और आपत्तिजनक साधनो द्वारा सभोगके परिणामोसे बचनेकी सलाह देती है, वह अपनी और शासन दोनोकी असफलता प्रकट करती है। इसलिए शिक्षाकी योजनामे जडमूलसे परिवर्तन होना चाहिये।

सर्वोदयी योजनाके मूल उद्देश्योमे से कुछ यहा मैने अपनी समझके मुताबिक दिये हैं। योजना अल्पकालिक हो या दीर्घकालिक, उसका उद्देश्य इन्ही लक्ष्योकी पूर्ति होना चाहिये।

हरिजन, २७–१०–'५१ कि० घ० मशरूवाला

बारहवां विभाग : कार्यक्रम

१

पंचसूत्री कार्यक्रम

इसके साथ प्रकाशित दो आलोचनाओसे और सम्मेलनसे लौटनेवाले कुछ दर्शकोके विवरणोसे ऐसा मालूम होता है कि विनोबाजी और रचनात्मक कार्यके अन्य नेताओने राष्ट्रके सम्मुख एक पचसूत्री कार्यक्रम रखा है। विनोबाजीने इसे अपनी सूत्रशैलीमे एक श्लोकार्धमे यो पेश किया है

'अन्त शुद्धि, बहि शुद्धि, श्रम, शान्ति, समर्पणम्।'

१ अन्त शुद्धि वही चीज है जिसे हमने शुद्ध व्यवहार आन्दोलन कहा है। इसमे लोगोके लिए यह आदेश है कि वे धन कमाने या पदार्थ और सुख-सुविधाए जुटानेके अनुचित उपाय छोड दे और इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए मिलकर सामूहिक ढगसे काम करे।

२ बहि शुद्धि स्वच्छताका सर्वोदयी कार्यक्रम है। आम तौर पर हमारी यह ख्याति है कि हम व्यक्तिगत शुद्धिका बहुत आग्रह रखते है। सार्वजनिक सफाई और स्वच्छताका बोध जो लोग वैयक्तिक शुद्धिके लिए प्रसिद्ध है, उनमे भी अधिकसे अधिक अभी अकुरित ही हो रहा है। आम जनतामे यह समझ बहुत कम है, और लोगोमे बहुतसी बीमारियो और सक्रामक रोगोके सदा फूट निकलनेका यही मुख्य कारण है। सर्वोदयकी सिद्धिके लिए दूसरी जरूरी चीज यह है कि व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनो प्रकारकी बाहरी स्वच्छताका जोरदार आन्दोलन किया जाय।

३ श्रम सर्वोदयके लिए तीसरी बडी शर्त है। सदियोसे हमने श्रमके गौरव और मूल्यको नष्ट करनेके लिए सब-कुछ किया है और जो लोग पीढी-दर-पीढी कडा परिश्रम करके हमारे लिए अन्न, वस्त्र, मकान, सजावटका सामान, आभूषण और जीवनके आरामकी विविध वस्तुए पैदा करते रहे है, उनकी हमने उपेक्षा ही नही की है, बल्कि उन्हे

दबाया और अपमानित भी किया है। जिन्होने हमारे कपडे और बरतन धोये, हमारी गलिया और गोशालाये बुहारी, हमारे पाखाने और पेशाब-घर साफ किये, हमारे कपडे, बरतन और जूते वगैरा तैयार किये, वे गौरवकी हमारी कल्पनामे सबसे नीचे दर्जे पर है। हम उन्हे अनादरकी दृष्टिसे देखते है, उनके साथ गुस्ताखीसे पेश आते है और समाजमे उनका अपमान करते है, मदिरोमे भी, जहा हम प्रभुकी पूजाके लिए इकट्ठे होते है, उनके लिए या तो कोई स्थान ही नही होता या नीचा और दूरका स्थान होता है। धन, सत्ता या पोथी-पाडित्यको ही सारा सम्मान दिया जाता है। नतीजा यह है कि उत्पादन घट गया है भोग-विलासके जीवनकी इच्छा बढ गई है और मेहनत न करने पर भी सब आराम चाहते है, जो कठोर परिश्रमसे ही मिल सकता है। यह लक्ष्य असभव है। मेहनत हम अपने खाली हाथोसे करे अथवा औजारो या यत्रोकी सहायतासे करे, मेहनत हमे करनी ही चाहिये। श्रम करनेकी क्षमता और इच्छाको विकसित शरीर और सुसस्कृत मनकी निशानी समझना चाहिये।

४ शान्ति इस कार्यक्रमका चौथा अग है। शान्तिको यहा युद्ध-निवारणके सीमित अर्थमे नही समझना चाहिये। यहा युद्धके उन्मूलनका कोई निषेध नही है, परन्तु युद्ध उन छोटे-छोटे सघर्षोका बृहत् सस्करण है, जो हर छोटे समूहमे अकसर होते रहते है। अगर छोटे-छोट समूहोको आपसमे प्रेमसे रहना, छोटे-छोटे झगडोको आपसमे निपटा लेना और अपने छोटेसे ससारसे डर और ईर्ष्याको मिटा देना आ जाय, तो इससे बृहत्तर जगतमे लडाईकी जड ही कट जायगी।

५ अतिम अग समर्पणका है। यानी गाधीजीकी बरसीके दिन एक गुडी अपने काते हुए सूतकी देना है। अपने काते हुए सूतकी यह छोटीसी गुडी इस बातका चिह्न है कि समर्पण-कर्ताको गाधीजीके प्रति आदर है, सर्वोदयके आदर्श, शरीर-श्रम और व्यक्तिगत सेवामे श्रद्धा है, अहिंसक और अशोषक व्यवस्थामे श्रद्धा है और अमीर-गरीबके बराबरीके दर्जेमे श्रद्धा है।

हरिजन, २८–४–'५१ कि० घ० मशरूवाला

२

समग्र सेवा

विनोबाने कहा कि समग्र सेवाका अर्थ सब चीजोको एकसाथ हाथमे ले लेना नही है। इसका मतलब यह है कि किसी चुने हुए कार्यके आसपास धीरे-धीरे और स्वाभाविक रूपमे कार्यके दूसरे अगोकी वृद्धि और विकास होना चाहिये।

अपनी बातको अधिक समझाते हुए विनोबाको कई वर्ष पहलेकी अपनी अनन्तपुर (मध्यप्रदेश) की यात्रा याद आ गई। वहा एक कार्यकर्ता खादीका केन्द्र चलाते थे। वहाका काम बन्द हो गया था और विनोबाको उसके कारणोकी जाच करनेके लिए कहा गया था। विनोबाने ध्यानसे उस कामकी जाच की और बताया कि कामकी वृद्धिके रुक जानेका एक कारण यह था कि कार्यकर्ताने जीवनकी और सब बातोकी सर्वथा उपेक्षा करके केवल खादी पर ही सारी शक्ति केन्द्रित कर दी थी। उदाहरणार्थ, गाववाले खुलेमे शौच जाते थे, फिर भी इस घोर असभ्यताकी तरफ कार्यकर्ताका ध्यान नही गया। वह पूरी तरह खादी-कार्यमे लगा रहता था और दूसरा उसे कुछ दिखाई ही नही देता था। विनोबाने कहा कि यह एकाग्रता ऐसी है, जो सर्वतोमुखी जागरूकताके विपरीत है। असलमे यह एकाग्रता ही नही, बल्कि एक प्रकारकी एकागिता है। सकीर्णता तो वाछनीय नही है, मगर इसका यह अर्थ नही कि आप एकाग्रताको ही तिलाजलि दे दे। एकाग्रता और समग्र दृष्टि दोनो जरूरी है।

(एक भाषणके सारसे) **विनोबा**

हरिजन, २३–६–'५१

३

बहिष्कार — रचनात्मक कार्यक्रमके अंगके रूपमे

जो लोग वास्तविक नई समाज-व्यवस्थाके लिए काम करनेकी महत्त्वाकाक्षा रखते है, उन्हे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि जहा वे कोई रचनात्मक काम करे वहा उन्हे वर्तमान समाज-व्यवस्थाको खतम करनेके लिए भी अवश्य काम करना चाहिये। क्रान्तिका यह आवश्यक लक्षण है।

क्रान्तिकी पूर्वशर्तें

क्रान्ति या तो सरकार द्वारा की जा सकती है अथवा आम लोगो और सार्वजनिक कार्यकर्ताओ द्वारा। अगर इस प्रक्रियामे सरकार पहल करना चाहती है, तो उसे अनिवार्य रूपमे मशीनोका उत्पादन, भैसका सरक्षण और पुरानी शिक्षा-प्रणालीको बन्द कर देना चाहिये। अगर सरकार ऐसा करनेका निश्चय नही करती, तो जितना भी रुपया वह विकेन्द्रित उद्योगोकी उन्नतिके लिए खर्च करती है वह सब व्यर्थ है। इसके विपरीत, यदि यह क्रान्ति सार्वजनिक सस्थाओ और जनसेवकोको करनी है, तो उन्हे दोहरा कार्यक्रम अपनाना होगा — एक तरफ चरखे, ग्रामोद्योग, गोसेवा और बुनियादी तालीमकी उन्नति और दूसरी ओर यात्रिक उत्पादन, भैस-पालन और पुरानी शिक्षाका बहिष्कार। उन्हे स्वय अपने जीवनमे और अपनी सस्थाओके जीवनमे बहिष्कारके कार्यक्रमको अपनाना होगा और उस पर अमल करनेका व्रत लेना होगा। उन्हे दूसरे व्यक्तियो और सस्थाओको भी ऐसा ही करनेको समझाना चाहिये। और जब उन्हे मालूम हो जाय कि जनता काफी जाग्रत हो गई है, तब उन्हे बहिष्कारका व्यापक आन्दोलन शुरू कर देना चाहिये। अगर हम ऐसा नही कर सकते तो सामाजिक क्रान्तिकी दृष्टिसे हमारा रचनात्मक कार्य बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होगा।

अपने दौरेमे जब कभी मैंने यह विचार अपने साथियो अथवा सस्था-सचालकोके सामने रखा है, उन्होने इसे तुरन्त पसन्द किया है।

सिद्धान्तमे कोई मतभेद नही है। इसमे सब सहमत है कि यही ठीक काम है। परन्तु इस कार्यक्रम पर अमल करनेमे वे सब बडी कठिनाइया बताते है। वे कहते है कि परिस्थितिया अनुकूल नही है। अगर ऐसा है तो जब हमारी सरकार यत्रोकी पैदावार पर पाबन्दी लगानेमे असमर्थता प्रगट करती है, तब हमारे कार्यकर्ता और सस्थाए क्यो असतुष्ट होते है? चूकि सरकारके सामने भी वही मुश्किले है, इसलिए हमे उसके खिलाफ कोई शिकायत नही होनी चाहिये। हम क्रान्तिकी बात करते है, फिर भी विपरीत परिस्थितियो और कठिनाइयोसे कायर बन जाते है। तब सरकार जो रवैया अख्तियार करती है, उस पर हमे आश्चर्य नही होना चाहिये।

मुझे इस बातसे इनकार नही कि ऐसे अवसर आते है, जब परिस्थितिया अत्यधिक बाधक साबित होती है। परन्तु क्या हम ईमानदारीसे कह सकते है कि हमारे कार्यकर्ता और सस्थाए जो कुछ कर सकते है सो सब कर चुके है और अब केवल परिस्थिति ही उनके प्रयत्नोको विफल कर रही है? मेरे खयालसे ऐसी बात नही है।

जरूरत है स्पष्ट दृष्टिकी, दृढ निश्चयकी और सर्वार्पण-बुद्धिकी। पहले हमे भोजन और वस्त्रके क्षेत्रमे मशीनी मालके बहिष्कारका नारा उठाना चाहिये। बादमे हम अपने नारेका विस्तार दूसरे क्षेत्रमे कर सकते है। हम विशेष वस्तुओको चुन कर भी उन पर अपनी शक्ति केन्द्रित कर सकते है। सभव है सभी व्यक्ति और सस्थाए बराबर कारगर न हो सके, मगर प्रगति तो होगी। लेकिन अगर हमने इस दिशामे बुद्धिपूर्वक प्रयत्न नही किया, तो हमे जल्दी ही पता लग जायगा कि हम उद्देश्यहीन है और हमारे भाग्यमे असफलता लिखी है। हमारा त्याग और चरित्र हमे व्यक्तिगत आध्यात्मिक सात्वना और सतोष भले दे दे, मगर सामाजिक क्रान्तिका महान स्वप्न अधूरा ही रह जायगा।

हमने देख लिया कि स्वराज्य-सग्रामके ऐतिहासिक दिनोमे हमारा स्वदेशी आन्दोलन विफल हो जाता, अगर हमने साथ-साथ विदेशी बहिष्कार न चलाया होता। इसी तरह अगर अब हम ग्रामोद्योग आदिको लोकप्रिय बनानेके आन्दोलनके साथ-साथ मशीनी मालके बहिष्कारका

आन्दोलन नही छेड सकेंगे, तो ग्रामोद्योगोकी हमारी सारी चिल्लाहटसे कुछ जरूरतमन्द लोगोको थोडीसी मदद मिल जानेसे ज्यादा और कुछ नही हो सकेगा। अवश्य ही उससे ऐसी समाज-व्यवस्था उत्पन्न नही हो सकती, जो विकेन्द्रित, आत्म-निर्भर और शोषण-रहित हो।

मुझे पूरी आशा है कि मेरे साथी और रचनात्मक कार्यकर्ता मेरी इस अपील पर गभीर विचार करेंगे।

हरिजन, १३-१०-'५१ **धीरेन्द्र मजूमदार**

परिशिष्ट

कहानी

[निम्नलिखित कहानी ईसाकी वह कहानी है, जिससे रस्किनको अपनी पुस्तकका नाम 'अन्टु दिस लास्ट' रखनेकी प्रेरणा मिली थी और जिसका अनुवाद गाधीजीने 'सर्वोदय' नामसे किया था। --सं०]

स्वर्ग उस गृहस्थकी भाति है, जो सुबह ही सुबह अपने अगूरके बगीचेके लिए मजदूर जुटाने निकला।

उसने मजदूरोसे एक पैसा रोज मजदूरी तय कर ली और उन्हे अपने बागमे भेज दिया।

लगभग तीन घटेके बाद वह फिर निकला और कुछ अन्य लोगोको मडीमे बेकार खडे देखा।

उसने उनसे कहा तुम भी बागमे चले जाओ। जो उचित होगा तुम्हे दूगा। वे चले गये।

छठे और नवे घटेके करीब वह फिर बाहर गया और उसने ऐसा ही किया।

ग्यारहवे घटेके लगभग वह फिर निकला और उसने देखा कि दूसरे कुछ लोग बेकार खडे है। उसने उनसे कहा यहा दिनभर बेकार क्यो खडे रहते हो?

वे उससे कहने लगे क्योकि हमे किसीने मजदूरी पर नही लगाया। उसने उनसे कहा तुम भी अगूरके बागमे चले जाओ; जो उचित होगा तुम्हे मिल जायगा।

इस प्रकार जब शाम हुई तो बागके उस मालिकने अपने मुनीमसे कहा मजदूरोको यहा बुला लो और आखिरीसे शुरू करके सबसे पहले दल तकको मजदूरी चुका दो।

जब वे लोग आये, जो ग्यारहवे घटेमे रखे गये थे, तो उन्हे फी आदमी एक पैसा मिला।

जब सबसे पहले दलके लोग आये तो उन्होने सोचा कि उन्हे ज्यादा मजदूरी मिलनी चाहिये, लेकिन उन्हे भी दूसरोकी तरह फी आदमी एक पैसा ही मिला।

जब उन्हे एक पैसा मिल गया, तो वे उस भले गृहस्थके खिलाफ बडबडाने लगे।

कहने लगे इन्होने सिर्फ एक ही घटा काम किया और तुमने इन्हे भी हमारे बराबर मजदूरी दी, हमने तो दिनभर बोझा ढोया और गरमी बरदाश्त की है।

परन्तु उस गृहस्थने उनमे से एकको उत्तर दिया और कहा भाई, मैने तेरे साथ अन्याय नही किया। क्या तूने एक पैसा लेकर काम करना स्वीकार नही किया था?

जो तेरा है तू ले ले और अपने रास्ते चला जा। मै इस आखिरी आदमीको भी उतना ही दूगा जितना मैने तुझे दिया है।

मैथ्यू, २०, १–१४

सूची
